अमृत पुत्र

(ऐतिहासिक उपन्यास)

ज्ञान भारिल्ल

अनुराग प्रकाशन, अजमेर

मूल्य : बारह रुपये



अमृत पुत्र
(ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक :
श्री ज्ञान भारिल्ल

प्रथम संस्करण 1970

प्रकाशक :
वि. ल. मिश्रा, एम. ए.
अनुराग प्रकाशन
अजमेर।

मुख्य वितरक :
मिश्रा ब्रदर्स
पुरानी मण्डी, अजमेर।



मुद्रक :
श्री प्रताप सिंह लूणिया
जॉव प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी
अजमेर।

गुजरात की याद

गर्वीले गुजरात की राजधानी अणहिलपुर पाटन पर अन्धकार की ठण्डी घनी छाया उतर रही थी। साँझ के झुटपुटे में सरस्वती की धारा ऐसी दीखती थी जैसे कोई दैत्याकार चितकबरा अजगर धीरे-धीरे रेंगता चला जा रहा हो। पाटन का विशाल सुदृढ़ राजप्रासाद नदी की धार के साथ-साथ लगा, ऐसा प्रतीत होता था जैसे उस भयानक अजगर ने किसी महाबलशाली वन्य पशु को अपनी ज़बरदस्त जकड़ में कस रखा हो और अब ऐंठन देने की तैयारी में हो।

पश्चिम का आकाश अब भी लाल था। सरस्वती के दूसरे कगार पर घने वृक्षों के झुरमुटों को भेदकर कहीं-कहीं से खुले आकाश का प्रतिबिम्ब जब जल पर पड़ जाता तो, अब भी, ऐसा दिखाई पड़ता जैसे लहू में डूबी हुई तलवार की धार चमक उठी हो। अभी दिया-बत्ती हुई नहीं थी, अन्यथा इस दृश्य ने दूसरी ही शक्ल धारण कर ली होती

और, उस रेंगते हुए महाकाय मटमैले अजगर के स्थान पर, रोशनी की चंचल जिह्वा लपलपाते हुए हज़ारों तरंग-विषधर सरसराते हुए प्रतीत होते।

महाराज भीमदेव अपने प्रकोष्ठ में शैया पर पड़े-पड़े ऊब गए थे। उनकी यह ऊब कितनी अपने बुढ़ापे के कारण थी और कितनी उस गहराते हुए अंधकार के कारण, यह जानने की कोई विधि तो नहीं है लेकिन उनके विशाल किन्तु निस्तेज मस्तक पर पड़ी हुई सलवटों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे किसी गहन चिन्ता में डूबे हुए हैं।

अवश्य ही गुजरात का सोलंकी राजा बड़ा बेचैन था और अपनी शैया पर पड़ा-पड़ा जैसे छटपटा उठा था। इसीलिए वह वहाँ से उठा और प्रकोष्ठ से बाहर, चन्द्रशाला में आकर, एक किनारे खड़ा होकर नीचे गहरी सरस्वती की धारा को देखने लगा।

गर्वीले गुजरात का एकछत्र स्वामी युग-युग से प्रवाहित होते चले आए उस प्रवाह में क्या देख रहा था, यह जान सकने का भी कोई सूत्र आज नहीं है। कदाचित् वह इतना ही देख रहा हो कि काल के प्रवाह में बहते-बहते किसी ज़माने की उसकी बलिष्ठ कंचन देह आज जर्जर और खोखली हो गई है तथा अब वह चाहे तो संसार भर की शक्ति-वर्धक औषधियाँ खा-पी ले, किन्तु सूखे और गले हुए काठ में नई कोंपलें अब फूट नहीं सकेंगी।

राजा बूढ़ा हो चला था, रोगों से उसकी देह जर्जर हो गई थी, तन के साथ-साथ मन भी खंडित होकर रह गया था, अतः हो सकता है कि वह अपने आप पर ही खीझ रहा हो। किन्तु यह भी सम्भव है कि उस शूर सोलंकी के चर्म-चक्षु जितने मन्द होते चले जा रहे थे उतने ही उसके आतमचक्षु खुलने लगे हों और वह अपने प्रासाद पर उतरते हुए इस अंधकार के पार यह भी देख रहा हो कि दुर्दिन की यह

काली, ठण्डी, घनी छाया तो केवल पाटन पर ही नहीं सारे गुजरात पर उतर चली है।

कुछ ही क्षण सरस्वती की अस्पष्ट होती चली जा रही धारा और उसके पार अन्धकार में डूबते हुए जंगल की ओर अपलक देखते रहकर गुर्जर-नरेश कमर के पीछे मुट्ठियां बांधकर तेज-तेज कदमों से चन्द्रशाला में इधर से उधर चक्कर काटने लगे। उनकी इस क्रिया से अब यह स्पष्ट लगने लगा कि वे आज अधिक परेशान हैं। उनकी यह विकट अशांति केवल अपनी ही वृद्धावस्था और अशक्ति को लेकर तो नहीं हो सकती थी—निश्चय ही आज सोलंकी को अपने गुजरात की याद हो आई थी।

गुजरात की याद! गर्वीले गुजरात की चारों दिशाओं में फैली हुई सुकीर्ति का पुण्य स्मरण! वनराज मूलराज सोलंकी और सिद्धराज जयसिंह की जन्मभूमि की स्मृति! ......

हजारों बिच्छुओं ने जैसे सोलंकी को डंक मार दिए हों, ऐसे वह तड़प उठा और एकान्त में अपने आप से बोल उठा—

'गुजरात का धनी जीते जी ही मर गया बना? पाटन लुट गया, गुजरात की गर्व श्री छिन्न-भिन्न हो गई, बाहर की कौन कहे, गुजरात के छोटे-बड़े मंडलेश्वर ही आज पाटन के धनी को अपना राजा नहीं मानते! काश एक बार......एक बार मैं अपने हाथ में तलवार पकड़ सकता!'

लेकिन तलवार पकड़ना तो दूर, गुजरात का स्वामी आज तो चार कदम चल भी नहीं सकता था। इतने-से श्रम में ही उसके दिमाग की नसें फूल आई थीं और उसका ध्यान बटने लगा था। वह हतोत्साह, निर्जीव-सा भीतर आकर फिर अपनी बहुमूल्य स्वर्णखचित शैया पर धम्म से औंधा गिर पड़ा!

यह देखकर किसी अँधेरे कोने से प्रतिहारी दौड़ता हुआ आया और

राजा की शैया के समीप आकर घबराया हुआ-सा बोला—

"महाराज ! आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। वैद्यराज को बुलाऊँ ?"

कुछ क्षण महाराज भीमदेव ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल तेज़ चलती हुई उनके श्वास की अनियमित आवाज़ उस विशाल प्रकोष्ठ में मृत्यु की अस्पष्ट पगध्वनि-सी गूँजती रही। यह देखकर प्रतिहारी उलटे पाँव तेज़ी से लौट चला। वह द्वार तक पहुँचा ही होगा कि भीमदेव ने करवट ली और पुकारकर कहा—

"जोरावरसिंह, किसी वैद्य को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। अब इस ज़िन्दगी से मौत ही भली। अपनी आँखों से गुजरात की यह दुर्दशा देख रहा हूँ और जीवित हूँ, यह कैसा अभिशाप है ! मुझे चुपचाप पड़ा रहने दे—मर जाने दे !"

प्रतिहारी ने द्वार से बाहर मुँह निकालकर आवाज दी—'प्रकाश' और लौटकर वह शैया के पास महाराज के चरणों की ओर भूमि पर बैठकर बोला।

"अन्नदाता ! जी इतना छोटा क्यों करते है ? अभी गुर्जर सैनिकों का खून ठण्डा नही पड़ा है। आप थोड़ा अपना शरीर सम्हालें तो जब तक राणा लवणप्रसाद के हाथ में तलवार है……"

"आह, जोरावर ! एक वही शेर है जिसकी याद आती है तो जैसे बुझते दिये की लौ भभक-सी उठती है। लेकिन राणा अकेला पड़ गया है, मैं निकम्मा हो गया, वह करे तो क्या-क्या करे ?"

धोलका (धवलकपुर) के मंडलेश्वर वाघेला राणा लवणप्रसाद की चर्चा से महाराज भीमदेव के तन और मन में जो चैतन्य आ गया था उसका लाभ लेकर जोरावर उठा और बोला—

"मैं वैद्यराज को बुलाने की व्यवस्था करता हूँ महाराज ! आज अमावस्या है। आज तो मंडलेश्वर के पधारने की बात थी न स्वामी !

वे आते ही तो होंगे । मैं देखूँ जरा………।"

दासियों ने आकर महाराज के प्रकोष्ठ के समस्त रत्नजटित दीपाधारों में दीप जला दिए थे । प्रकोष्ठ उज्ज्वल प्रकाश में जगमगा उठा था । भीमदेव की बुझी-बुझी, बड़ी-बड़ी आँखों में भी एक चमक-सी लौट आई थी । वे थोड़ा उठकर पर्यंक पर रेशमी गाव-तकियों के सहारे अधलेटे-से होकर बैठ गए । जोरावरसिंह अपने कार्य पर चला गया ।

महाराज भीमदेव द्वितीय की नसों में वीर चौलुक्य रक्त ही प्रवाहित था । किन्तु पौष्टिक औषधि-सेवन के बहाने उनमें इतना पानी मिल चुका था कि वह अब ठण्डा पड़ गया था । उनका सारा समय अब खिजाब लगाकर सफेद बाल काले करने और नाना प्रकार की औषधियों के सेवन में ही व्यतीत हो जाता था ।

गुर्जरेश्वर की इस दयनीय अवस्था का लाभ उठाकर एक तरफ दक्षिण में देवगिरि का राजा, दूसरी ओर मारवाड़ और मालवा के शासक तथा भृगुकच्छ के पार सग्रामसिंह, अवसर की ताक में सन्नद्ध बैठे थे और किसी भी क्षण पाटन की रही-सही सत्ता का मटियामेट कर देने के लिए आतुर थे ।

और सच पूछा जाय तो इस समय पाटन की सत्ता केवल पाटन की नगर-सीमा तक ही सीमित होकर रह गई थी । स्वयं गुजरात के छोटे-बड़े मण्डलेश्वर तक गुर्जरेश्वर की आज्ञाओं की स्पष्ट अवहेलना करने लगे थे । केवल चन्द्रावती के परमार धारावर्षदेव और धोलका के राणा लवणप्रसाद ही अपने-अपने हृदय में गुजरात की गरिमा को सुरक्षित रखे बैठे थे और गुजरात के धनी के नाम पर सिर उतार कर रख देने के लिए प्रस्तुत थे ।

किन्तु केवल सिर उतारकर रख देने से साम्राज्य की रक्षा नहीं हो पाती और राष्ट्र का गौरव अखण्ड नहीं रह पाता । विरोधी शक्तियां जब प्रबल और दुर्जेय हो तब उनसे लोहा लेने के लिए वीरता के साथ-

साथ नीति की भी आवश्यकता होती है। शौर्य और नीति के इस समन्वय से ही, बिगड़ी हुई बाजियाँ सुधरा करती हैं, मिटते हुए राष्ट्र फिर से उठ खड़े होते हैं और शूरमाओं के गौरव की रक्षा हो पाती है।

बारहवीं शताब्दी में गारत होते हुए गर्वीले गुजरात को इसी समन्वय की आवश्यकता थी। वृद्ध गुर्जरेश्वर के अपने पास तो न शौर्य बचा था, न नीति। किन्तु उनके पास अभी शेष था धोलका का महा-मंडलेश्वर राणा लवणप्रसाद और, लवणप्रसाद की तलवार!

एक ही पक्ष। एक पक्ष से उड़ना होगा? कैसे? नहीं, दूसरे पक्ष के बिना, दोनों पक्षों के अभाव में उड़ना नहीं होगा। एक पक्ष से तो केवल तड़पकर गिर जाना होगा—किसी गहरे, अँधेरे गर्त्त में।

वह दूसरा पक्ष? लवणप्रसाद के भीषण खड्ग की दुधारी धार को महत्ता के शिखर पर चढ़ा सके, ऐसी नीति का वह दूसरा पक्ष?

गुजरात के धनी को आज अपना गुजरात याद आया था। काँपते हुए दीपक की लौ को एकटक, निर्निमेष देखता हुआ वृद्ध, रोगी, विवश भीमदेव यही सोचने लगा—'राणा लवणप्रसाद गुजरात का रक्षक है। वृद्धावस्था की ओर कदम बढ़ाते हुए उस नरशार्दूल की भुजाओं में अब भी इतनी शक्ति है कि दस-दस योद्धाओं को अपनी विशाल भुजाओं में कस कर ही उनका कचूमर निकाल दे। और, उसने गुर्जर-धरा के लिए क्या नही किया? कितना नही किया? आज नाम मात्र को ही सही, लेकिन गुजरात का राजा भीमदेव ही है, सो किसकी बदौलत? लवणप्रसाद न होता तो गुजरात के भीतर और बाहर के शत्रु-गिद्धों ने भीमदेव के मांस को नोंच-खसोट लिया होता, गुजरात के टुकड़े-टुकड़े बिखर गये होते! गुर्जरेश्वर की गद्दी जो आज भी सही सलामत बची हुई है, उसके पीछे राणा लवणप्रसाद की सारे जीवन की तपस्या और त्याग है। भीमदेव को पाटन का धनी बनाए रखने की धुन में, सोलंकी वंश की

मर्यादा सुरक्षित रखने की लालसा मे, उसने अपने आपको तो बरबाद ही कर लिया ....।'

राजा विचार कर रहा था—'वर्षों व्यतीत हो गए, राजधानी की खटपटो मे उलझे हुए लवणप्रसाद ने अपने हाथों अपने ही घर मे आग लगा दी। नवविवाहिता पत्नी सुन्दरी मदनराज्ञी की सुधि भी वह ठीक से नही ले सका था, और उसका परिणाम ? कितना भयकर ? कितना दर्दनाक ? महीनो और वर्षों तक जब पति के दर्शन ही दुर्लभ हो गए तब वेचारी मदनराज्ञी भी कहां तक धैर्य रखती ? वह राणा को छोड कर चली गई उसके पास, जो उसे अपने समीप रख सके !'

'और, भीतर की तो भगवान ही जाने, किन्तु गुजरात के उस भीष्म पितामह ने अपने मुख से एक आह तक नही निकाली। सारे विष को वह ऐसे चुपचाप पचा गया जैसे कुछ हुआ ही न हो। चाहता तो, राणा क्या मदनराज्ञी और उसके प्रेमी की खाल खिचवाकर, उसमे भुस भरवाकर, अपने प्रासाद के बाहर नही टाँग सकता था ? लेकिन धुन के धनी उस अडिग तपस्वी न ऐसा तो नही किया। मदनराज्ञी को उसने प्यार किया था और जब वह चली गई तो खून का एक घूँट पीकर ही वह रह गया।'

'कितने वर्ष बीत गए इस घटना को ! इसके विषय मे कुछ कहो तो राणा सुनता नही—शायद उसके मर्म म कही भयानक पीडा होती है। बात बदलकर वह इतना ही कह दता है—जो गया सो गया, राजा ! जो है उसकी चिन्ता करो न ! गुजरान का क्या होना है ?'

'गुजरात ... गुजरात गुजरात ! गुजरात का क्या होना है ?—आह, राणा आज आने वाला था न कितनी रात गई, वह अभी आया नही ?'

आज वर्षो के बाद गुजरात के धनी को अपने गुजरान की याद आई थी। जिस समय वह इस मीठी और कसकभरी स्मृति के जाल मे उलझा हुआ, अनेक प्रश्नो के उलझे हुए धागो को सुलझाने म लगा हुआ

पीड़ा का असह्य दंश सहते हुए भी यह भूल नहीं पाते कि जन्मभूमि के प्रति उनका एक कर्त्तव्य है। ऐसे महापुरुष इस धरती की वह धरोहर हुआ करते हैं जो प्रत्येक संकट के समय उसका त्राण करके ही दम लेते हैं। लवणप्रसाद गुर्जरधरा का ऐसा ही सपूत था। सो अपने हृदय की सारी निराशा, खीझ और आक्रोश को शक्ति के साथ चुपचाप एक किनारे करके उसने उत्तर दिया—

"हूँ! अच्छा देव! मैं पहले महाराज से मिल आऊँ। देर हो गई। फिर लौटकर आऊँगा तब आपसे विशेष चर्चा करूँगा। सांडनी जेहुल के पास है। उसे दाना-पानी डलवा देना और जेहुल कुछ खाए-पिये तो देख लेना।"

"आप प्रासाद तक पैदल जाएँगे? पालकी ले जाते……।"

"नहीं। राजगढ़ क्या दूर है? और फिर मैं चुपचाप जाना चाहता हूँ। आप तो जानते हैं कि पाटन में अब दिन-रात हज़ारों तरह की खटपट चलती है। ज़रा घूमता-घामता देखता-भालता ही चला जाऊँगा।"

"ठीक है बापू! सावधानी रखें। अँधेरा है, और पाटन में वाघेला राणा के शत्रु जाल बिछाए बैठे हैं।"

यह सुनकर वाघेला राणा लवणप्रसाद को बरबस हँसी आ गई। रात्रि की नीरवता में उस एकांत स्थल पर उस विकट राजपूत की वह गम्भीर किन्तु निर्द्वन्द्व हँसी सचमुच ऐसी ही लगी जैसे वनराज केशरी ने मत्त गर्जन किया हो। छोटे से दीपक के धुँधले-से प्रकाश में राणा के आधे से अधिक चेहरे को घेर कर फैली हुई खिचड़ी दाढ़ी और बिखरी मूँछों ने उनकी मुखाकृति को विकराल बना दिया था। और आँखें—जैसे दहकते हुए अंगारे!

हँसी समाप्त होने पर लवणप्रसाद ने कहा—

"कुमारदेव! चिंता नहीं करो। आपके बूढ़े बापू की यह तलवार अँधेरे में बड़ा उजाला कर लेती है।"

"बनी रहे यह तलवार और इस तलवार का धनी बापू ! मंगल करें मेरे महारुद्र !"

पगडी के छोर से अपनी घुँघराली और घनी दाढी और मुँह को ढक कर बाघेला राणा लवणप्रसाद बाघ की-सी फुरती से शिवालय के चबूतरे पर से उछाल मारकर अधकार मे शीघ्र ही विलीन हो गए।

महाराज भीमदेव की पीठ प्रकोष्ठ के द्वार की ओर थी। सामने की दीवाल पर जब एक विशाल मनुष्याकृति छाया पडी तो उस छाया के विस्तार को देखते ही वे समझ गए कि बाघ आ गया। उन्होने अपना सिर घुमाकर राणा को देखा और आतुरता से कहा—

"आओ, आओ, बाघेला ! आज कितनी देर कर दी ? मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते थक ही गया !"

महाराज भीमदेव ने हाथ बढाकर लवणप्रसाद को अपने पास ही पर्यंक पर बिठा लिया। लवणप्रसाद ने कहा—

"देर तो हुई, राजा ! लेकिन आपका स्वास्थ्य अब कैसा है ?"

इस प्रश्न के साथ ही लवणप्रसाद ने महाराज की शैया के चारो ओर फैली हुई नाना प्रकार की भस्मौषधियो की ओर एक त्वरित निगाह फेकी। भीमदेव ने यह देखा···· और लज्जित-से होते हुए उन्होने उत्तर दिया—

"मेरा स्वास्थ्य अब ठीक कहाँ रहता है राणा ? मैं तो अब चला-चली मे हूँ समझो। शरीर मे दुर्बलता बढती ही जाती है।"

जिसे महाशक्ति का स्रोत होना चाहिए, ऐसे सोलकीराज को इस प्रकार अपाहिजो सरीखा जीवन व्यतीत करते और मात्र विलास-शक्ति के वर्धन के लिए वैद्यो और हकीमो की भस्मे खाते हुए देखकर, लवणप्रसाद का सोलकी रक्त उबल रहा था। उनसे रहा नही गया और वे बोल पडे—

"तो मुझे भी छुट्टी क्यो नही दे देते महाराज ! अपने धोलके मे

में जाकर पड़ा रहूँ और निकम्मों की तरह एक दिन दम तोड़कर मर जाऊँ ? आपके शरीर को हुआ क्या है ? सोलंकीराज ! यह दुर्बलता शरीर की नहीं आपके मन की है। आपके मन की इस दुर्बलता ने ही आपके शरीर को जर्जर कर दिया है। यह दुर्बलता दूर हो तो शरीर फिर वैसा ही बने और आपको पाटन का स्वामी कहलाना शोभा दे।"

लवणप्रसाद जब भी भीमदेव से मिलते। उन्हें चौलुक्य वंश के शौर्य का स्मरण दिलाने में चूकते नहीं थे। लेकिन आज उनकी मुद्रा कुछ अधिक कड़ी थी और शब्द अधिक कठोर। लवणप्रसाद को छोड़कर गुजरात में अब कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था जो पाटन के स्वामी के सामने इस प्रकार बोलने का साहस कर सके। यह अधिकार केवल बाघेला राणा को ही था। महाराज भीमदेव जानते थे कि यह दुर्दम्य क्षत्रिय उनके गुजरात को कितना प्यार करता था। अतः कड़ी से कड़ी बात भी यदि राणा कहे तो भीमदेव मुस्कराकर सुन लेते थे।

आज भी भीमदेव ने हँसते-हँसते ही कहा—

"आज अधिक थक गए हो क्या राणा ? मैं झूठ नहीं कहता, देखो न ये हाथ कितने दुर्बल हो गए ......!"

"एक दिन चौहानों और परमारों का मानमर्दन करने वाली सोलंकी की ये भुजाएँ तलवार पकड़ने के स्थान पर शक्तिवर्धक औषधियाँ उठा-उठाकर खाएँ, उनसे पहले धरती फट जाय तो क्या बुरा हो ? वे दिन भूल गए क्या महाराज, कि जब गुर्जरसेना के आगे हाथी पर बैठकर भीमदेव सोलंकी निकलता था, तब भय के मारे शत्रुओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते थे ? याद नहीं क्या वे दिन आपको ?"

आज तो बाप बुरी तरह बिफरा है। भीमदेव ने निगाह जमाकर लवणप्रसाद की ओर देखा -गर्व, क्रोध और आशा से भरे हुए उस मुख पर तलवार के घाव का एक निशान दाहिनी कनपटी से आँख से अधिक

मस्तक को चीरता हुआ चला गया था। छोटे-बडे और भी कुछ घाव चेहरे पर थे। भीमदेव चुपचाप देखते रहे—आधे खुले शरीर पर तो घावों की गिनती कर सकना ही मुश्किल था। भीमदेव देखते रहे और सोचते रहे—सारा जनम इस उद्धत राजपूत ने लडते-लडते ही काट दिया। देह की चिन्ता नही, घर की चिन्ता नही, यहाँ तक कि हृदय पर पत्थर रखकर प्राणों से भी अधिक प्रिय पत्नी और पुत्र को भी तो उसने भुला दिया था!

और यह सब किसके लिए? अपने लिए? भीमदेव के लिए? पाटन के लिए? गुजरात के लिए?

हाँ, गुजरात के लिए, केवल अपने गर्वीले गुजरात के लिए। गुजरात की आन मे ही जैसे उसकी जान बसती है। वह आन रहे तो वह जीवित रहे, वरना लवणप्रसाद को जीवित रहना नही है······

भीमदेव तो यही सोचते रह गए। वे लवणप्रसाद के प्रश्न का उत्तर देना तक भूल गए। उन्हे अपनी ओर ऐसे चुपचाप, एकटक देखते देख कर लवणप्रसाद ने कहा—

"क्यो, बोलते क्यो नही मेरे सोलकी राज? उत्तर क्यो नही देते? बुरा लगता हो तो अपनी जीभ काट लूँ? क्रोध आता हो तो अपना सिर उतारकर दूँ?"

और सचमुच लवणप्रसाद ने अपना विशाल खडग एक ही झटके मे म्यान से बाहर निकाल लिया। अब महाराज भीमदेव का विचार-सूत्र टूटा। वे घबराकर बोले—

"अरे! करते क्या हो, राणा! पागल हो क्या? इतने बडे हो, लेकिन अभी बच्चे ही हो। बात-बात मे तलवार निकाल लेते हो········!"

"सोलकियों को तलवार से भय कबसे लगने लगा, राजा? तलवार यदि बात पर नही निकली तो कब निकलेगी? मुझसे आपके पाटन की यह हालत अब और नही देखी जाती।"

'राणा, शांत होओ। सच कहते हो, मुझसे भी क्या यह सब
ाता है ? लेकिन क्या करना है ? गज़नी के सुल्तान का
 दिल्ली का शाह कुतुबुद्दीन—लौटकर फिर से कब पाटन पर आ
ौन जानता है ?"

'देखा जाएगा सबको। शाह आए कि सुल्तान, लेकिन अपने पाटन
म्हालो महाराज ! आज पाटन की सेना में सैनिक नहीं, पाटन के
सम्पन्न श्रेष्ठि पाटन छोड़कर चले गए, पाटन के सारे मंदिर-
ज़य ध्वस्त पड़े हैं, घरों में दीपक नहीं जलते, रास्तों पर भटों
भटराजों की भीड़ नहीं मिलती—आज तो खाली वैद्य और हकीम
ढ़ के चक्कर काटने दिखाई देते हैं।"

'राणा, तलवार म्यान में रखो। और, सुनो—एक-एक अक्षर तुम
कहते हो। आज मेरा हृदय भी जल रहा है। मैं तो तुम्हारी बाट
 बैठा था। अपने गुजरात की यह दुर्दशा और अधिक देखूँ, उससे
 अब तुम मुझे उठा दो या कुछ करो। बोलो, मैं क्या करूँ ? तुम
ो मेरी सुनते नहीं हो। पाटन आकर रहो और सब सम्हालो।
 वह करूँगा। लेकिन एक बार गुजरात का गया हुआ गौरव
 दो।"

"गुजरात का धनी अगर अपने गुजरात पर छाया करे तो उसका
 कहीं गया नहीं है, राजा ! अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। सुल्तान के
ारों को नाकों चने चबवा कर हमने अपना पाटन पीछा ले लिया
अब गुजरात की इंच-इंच भूमि में से विदेशियों को निकाल बाहर
 है और जो अभिमानी मंडलेश्वर आज पाटन की सत्ता को
ार करने से इनकार कर रहे हैं, उन्हें फिर से पाटन के ध्वज के नीचे
 है। इतना ही नहीं, मुझे सिद्धराज जयसिंह का जमाना याद
 है राजा ! जब गुजरात की विजय के नगाड़ों की प्रतिध्वनि
वा की उज्जयिनी और दक्षिण के विन्ध्याचल-सतपुड़ा के पहाड़ों से
ा-टकराकर लौटती थी। वह दिन पीछा गुजरात में लाऊँ तो मेरा

"खोजूँगा महाराज ! और मिलेगा क्यों नहीं ? सच पूछो तो मेरे ध्यान में गुजरात का वह प्रतिभाशाली भावी अमात्य आज भी है, लेकिन अभी परीक्षा लेनी है। उसके बाद निश्चय करूँगा।"

"ठीक है, जैसा सोचा है वैसा ही करो। लेकिन तुम जाओ, अमात्य को खोजकर लाओ और" ... और मेरे गुजरात के गौरव को पीछा लौटा कर लाओ राणा ! तुम्हें भीमदेव की सौगन्ध है।"

"भगवान् सोमनाथ की सौगन्ध, गुजरात की सेनाओं को उज्जयिनी की क्षिप्रा और दक्षिण के विन्ध्याचल के पार न उतार दूँ तो क्षत्रिय न कहलाऊँ।"

'बस राणा अब सब ठीक है। तो तुम्हें एक बार अगर धोलका जाना हो तो जाकर आ जाओ। वहाँ की देखभाल के लिए व्यवस्था करनी होगी न ? कैसे करोगे ? कुछ सोचा है ?"

"सोचना क्या है ? पाटन सम्हलेगा तो धोलका जैसे तो सब अपने आप सम्हल जाएँगे। और राजा सारी उमर तो बीत गयी, मैंने अपने धोलके को आज तक सम्हाला ही कितना है !

'मुझे यही तो दुःख है राणा ! तुमने पाटन के लिए, गुजरात के लिए अपने आपको तो जैसे होम ही दिया है। फिर भी धोलका तुम्हारा मंडल है, तुम धोलके के महामंडलेश्वर हो और धोलका गुजरात की रीढ़ है, उसे तो सम्हाले रखना ही होगा। सुनो राणा क्रोध करना नहीं—एक बात कहूँ ?'

' गुजरात के स्वामी पर क्रोध करके मुझे जीवित भी रहना है कि नहीं ? आज्ञा करो राजा।

' देखो राणा, तुम जैसे वीर हो वैसे ही ज़िद्दी और अभिमानी भी हो, इसलिए मेरी बात मानते नहीं। लेकिन मानो तो कहता हूँ कि अपनी मदनराज्ञी को ले क्या नहीं आते !

सुनकर लवणप्रसाद राज-पर्यंक पर से उठकर खड़े हो गये। उनका मुख एक न कही जा सकने वाली पीड़ा से भरकर जैसे एकाएक मुरझा-

ना गया। लेकिन कुछ ही क्षण बाद भीमदेव की ओर बिना देखे ही उन्होंने कहा—

"मदनराज्ञी मर गई है राजा—मैं आपको कितनी बार कह चुका। यह प्रसंग मुझे सुनने में बड़ा अप्रिय लगता है।"

इसके बाद कुछ देर गुर्जर नरेश महाराज भीमदेव सोलंकी के उस विशाल प्रकोष्ठ में एकदम चुप्पी छाई रही। दोनों व्यक्तियों में से कोई कुछ भी नहीं बोला। भीमदेव जानते थे कि लवणप्रसाद ऐसी कोई बात सुनने वाला नहीं है, किन्तु एक अंतिम प्रयत्न उन्होंने कर देखा था। अपने इस प्रयत्न में जब उन्हें असफलता ही हाथ लगी तब बड़ी निराशा और दुख में डूबे हुए और भीगे-भीगे से स्वर में अन्त में, उन्होंने कहा—

"जैसी भगवान् सोमनाथ और तुम्हारी इच्छा, राणा! मैं सोचता था कि यौवन-काल की एक छोटी-सी भूल की इतनी बड़ी सजा न दी जाय तो ठीक। किन्तु तुम्हारा निश्चय तो अटल है। अच्छा, मदनराज्ञी को न सही, अपने वीरधवल को तो लाओगे?"

पत्नी और पुत्र—मदनराज्ञी और वीरधवल—वर्षों से जिसे देखा नहीं, बल्कि जिसे मृत ही मान लिया वह किसी समय की प्राणेश्वरी पत्नी और वर्षों से जिसे दुलारपूर्वक एक बार भी गोद में नहीं खिला सका वह अभागा पुत्र? इस कड़वी स्मृति से मंडलेश्वर का हृदय टूट जाने को हुआ किन्तु देश और जाति के इतिहासों का निर्माण करने वाले व्यक्ति इतनी आसानी से कहाँ टूट पाते हैं?

महाराज भीमदेव के प्रश्न का उत्तर मंडलेश्वर ने इस प्रकार दिया—

"वीरधवल मेरा पुत्र है और उसका कोई दोष नहीं। मैं अपने वीरु को ले आऊँगा राजा! अब बस, कि और कोई आज्ञा है?"

मंडलेश्वर राणा लवणप्रसाद अपने पुत्र को ले आएँगे इस स्वीकृति से ही महाराज भीमदेव को पर्याप्त प्रसन्नता हुई। गुजरात के पुनरुत्थान के प्रयास में एक नर शार्दूल और सहयोगी बन सकेगा।—शेर के

बच्चे को शेर तो होना ही है न !

महाराज भीमदेव की आधी अस्वस्थता दूर हो चुकी थी । प्रसन्नता से भरकर वे अपनी शैया से इस फुर्ती से उठ खडे हुए, जैसे वे पच्चीस वर्ष के नौजवान हो । उठकर इस बार उन्होने राणा को अपनी भुजाओ मे प्रेम और हर्ष से भरकर कस लिया और बोले—

"राणा ! सोलकियो का दीपक बुझेगा नही, वह जलेगा और अपनी दीप्ति से सारे गुजरात मे प्रकाश करेगा । तुम्हारा वीरधवल मेरी आशा का केन्द्र है, इस चौलुक्य वश की आशा है । मेरे बाद तुम और तुम्हारे बाद वीरधवल सोलकियो की इस गद्दी को सुशोभित करेगा । भगवान् सोमनाथ आज प्रसन्न है । मेरे देश का वे मगल करें।"

आँसू भरी आँखो से मुस्कराते हुए गुजरात का भीष्म-पितामह महामडलेश्वर राणा लवणप्रसाद सोलकी महाराज भीमदेव से विदा लेकर बाघ जैसी चपल गति से चल पडा ।

उसके चले जाने के बाद उत्साह भरे हृदय से महाराज भीमदेव ने पुकारा—

"जोरावरसिंह !"

वर्षो बाद अचानक उस कडकदार स्वर को सुनकर जोरावरसिंह के हाथ से भाला छूटकर झन्न से फर्श पर गिर पडा । कुछ क्षण तो वह भौंचक्का-सा रह गया, किन्तु वह भी समझ गया कि गुजरात के धनी को आज अपने गुजरात की याद आई है और सोया हुआ सोलकी सिंह जाग गया है । इससे वह एक बार खुशी से नाच उठा और मूँछो को मरोड देकर महाराज की सेवा के लिए प्रकोष्ठ मे प्रविष्ट हुआ ।

***

बाघ झपटा

पाटन के नगर पथों और गलियों में अर्धरात्रि का सन्नाटा खिंचा हुआ था। केवल राजपथ और अन्य मुख्य रास्तों पर दीपस्तम्भों के इर्द-गिर्द प्रकाश पर लुब्ध, प्रेम की प्यास के मारे कुछ अभागे पतंगे भनभना रहे थे। हाँ, कभी-कभी कोई इक्का-दुक्का नागरिक, अपने विलम्ब से पूरे हुए किसी कार्य की समाप्ति पर, अब कोई हलकी-फुलकी धुन गुनगुनाता हुआ तेज़-तेज़ क़दमों से अपने घर की ओर जाता हुआ अवश्य दीख जाता था। इसके अतिरिक्त सारा वातावरण शांत था।

मंडलेश्वर लवणप्रसाद ने महाराज भीमदेव से विदा लेकर राजगढ़ से वाहर आने पर फिर से अपनी पगड़ी के छोर से अपने मुख को ढक लिया था और वे तेज़ी से सहस्रलिंग के तीर पर वटुकेश्वर के शिवालय की ओर जा रहे थे। एक अँधेरी गली में से निकलकर ज्योंही वे

मुख्य मार्ग पर आने को थे कि उन्होने कुछ दूर से आते हुए, किन्तु अर्ध-रात्रि की निस्तब्धता के कारण साफ-साफ सुनाई पड़ने वाले, शब्द सुने––

"कुच्छ नही होने का इस मडलेश्वर से······मैं कहता हूँ, अबे देखता नही······मैं कहता हूँ कि हमारे मडलेश्वर ने सारी तैयारी कर ली है भला ! तू······तू किसी से कहना नही, मेरे दोस्त······तू मेरा दोस्त है न ! इसीलिए मैं कहता हूँ—कुच्छ नही होने का मडलेश्वर लवणप्रसाद से······।"

"धीरे······धीरे······धीरे, मेरे भाई, जरा धीरे बोलो भटराज ! ये पाटन है भला ! भूलना नही, किसी ने सुन लिया और मडल······मडलेश्वर से कह दिया तो खाल खिंच जायगी भला !"

आवाज सुनकर मडलेश्वर गली के मोड पर अधकार मे ही मूर्ति की तरह स्थिर होकर खडे हो गए। बातचीत आगे आती रही—

"अरे जा, जा, कायर ! देख लिए खाल खिचवाने वाले······अकेला चना क्या भाड फोडेगा······?"

"चने का नाम मत लो भटराज ! सारा मजा किरकिरा हो जाएगा। असल मे तुम भी एक ही गधे हो भटराज······खा-पीकर मस्त हुए और लगे चने की बात करने······।"

"कौन करता है चने की बात ? साले, मैंने तो चने की बात अपनी सारी जिन्दगी मे आज तक कभी नही की। एक दिन तेरी भटराजिन ने चने की बात की थी सो, ससाली को वो धप जमाए तेरे भटराज ने कि······।"

"अच्छा, अच्छा, बडे सूरमा हो। अब चुपचाप चले चलो, कोई राजसेवक गश्त लगाता निकल आया तो मुसीबत हो जायगी।"

"मुसीबत ? कौन साला मुसीबत से डरता है ? मुसीबत से डरते तो ठेठ पाटन मे आकर मडलेश्वर लवणप्रसाद से टक्कर लेने की नही सोचते······।"

"देखो जी भटराज के बच्चे, वैसे तो मैं तुम्हारा दोस्त हूँ और तुम्हारे साथ भी हूँ। लेकिन राणा लवणप्रसाद के बारे में अपनी जुबान पर तुम ताला ही लगाए रखो। वरना मैं फिर कहता हूँ कि यह जुबान माधवी और मांस का स्वाद चखने के लिए तुम्हारे मुँह में नहीं बचेगी।"

"तू स्साला जनम का कायर है। बाघेला राणा से ऐसा डरता है जैसे वह सचमुच ही कोई बाघ हो और अभी अँधेरे में से झपट पड़ेगा। अरे मुरदार, राणा तो अब कहने भर को ही बाघेला राणा है। असली राणा होता तो उसकी घरवाली को वह देवराज......।"

बोलने वाले व्यक्ति के कंठ में बीचोंबीच राणा लवणप्रसाद की लम्बी तलवार की नोक आधा इंच भीतर धँस गई। आगे के शब्द उस अभागे के कंठ में ही अटक गए। मंडलेश्वर ने उन व्यक्तियों के सामने प्रकाश में आकर कहा—

"हाँ भटराज, अब कहो, राणा लवणप्रसाद यदि असली राणा होता तो क्या होता ?"

मंडलेश्वर ने अपना मुख ढक रखा था और वे दोनों मद्यप अभी-अभी किसी मदिरालय से आकंठ माधवी का पान करके आए थे। अतः एकाएक यह क्या हुआ और क्या नहीं, तथा सामने कौन व्यक्ति था, यह उन दोनों में से कोई समझ ही न सका। किन्तु राणा लवण-प्रसाद की देह की भव्य आकृति, उनका गर्जन भरा स्वर और उनकी तलवार की तीक्ष्णता से सारा गुजरात परिचित था। कुछ ही क्षण हक्का-बक्का सा रहने के बाद जब मदिरा के मद में उन्मत्त भटराज को वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसकी आँखें मृत्यु के भय से फटी रह गईं।

भटराज ने राणा लवणप्रसाद को पहिचान लिया था।

और इस ज्ञान के साथ ही उसके होश उड़ भी गए और मदिरा के

नशे मे उडे हुए होश ठिकाने भी आ गए। हाथ जोडकर वह भरभराकर मंडलेश्वर के चरणो मे गिर पड़ा और किसी प्रकार बोलने लगा—

"बा······बा······बापू !······मंडलेश्वर ! मैं तो आपका कुत्ता हूँ महाराज ! मेरी जान बक्शो बापू·········बापू·········मैं तो आपका······।"

"कुत्ता समझो या गुलाम, वह तो तुम अपने स्वामी के हो भटराज ! लेकिन क्या तुम्हारी ज़बान भी अपने वश मे नही है ? मरने से पहले कुछ और कहना चाहते हो ?"

"क्षमा, अन्नदाता ! क्षमा बापू ! आप बड़े हो, हम तो गँवार-गुलाम है, कुत्ते है बापू ! मेरी जान लेकर आपको क्या मिलेगा बापू ! भटराजिन रो-रोकर मर जाएगी। क्षमा बापू······।"

सच ही तो है। उस नाली के कीडे की जान लेकर गुजरात के प्रचड मडलेश्वर राणा लवणप्रसाद को क्या मिल जायगा ? ये अबोध, अविवेकी, विवश सिपाही है। अपने स्वामी का रुख देखकर बात करते है, व्यवहार करते है। उनका दोष नही है। दण्ड देना ही है तो उन वास्तविक अपराधियो को देना होगा जो इस प्रकार के क्षुद्र षडयन्त्रो के सूत्रधार है।

मडलेश्वर ने अपनी तलवार भटराज के गले से हटाली और उसे एक लात मारकर कहा —

"तुम्हारे स्वामी को जानता हूँ। कहना उसे कि राणा आता है। फिर न कहे कि सावधान किया नही। भाग यहाँ से।"

भटराज बेचारे भागते तो कैसे भागते ? राणा के पैर की ठोकर खाकर वे पाँच कदम दूर जा गिरे थे और उनकी रीढ की हड्डी जैसे टूट-सी गई थी। जैसे-तैसे वे उठे और अपने साथी के कधे का सहारा लेकर लडखडाते कदमो से आगे बढने लगे। जाने से पहले भटराज ने कहा—

"जुग-जुग जिओ बापू ! आप जैसे वीर हो, वैसे ही दयालु भी।

आपने आज भटराजिन की जान बचादी, वह आपको आसीस देगी बापू।"

भटराज को इस हालत में भी अपनी भटराजिन का इतना खयाल था, यह देखकर लवणप्रसाद को हँसी आने को हुई लेकिन वे हँस नहीं सके.......

राणा की पहुँच से बहुत दूर जा पहुँचने के बाद जुगल-जोड़ी के मुख से बोल फूटे। भटराज के साथी ने ही कहा—

"हाँ भटराज ! अब बोलो, राणा लवणप्रसाद असली राणा होते तो क्या होता ?"

"अबे, चुप रह हरामी ! राणा लवणप्रसाद असली राणा न होते तो तू और मैं अब तक नरक में होते। वह तो मंडलेश्वर ही थे कि इतना होने के बाद भी उन्होंने तेरी जान बख्श दी.......।"

"हाँ जी, मंडलेश्वर ने हमारी ही जान बख्शी है। आपका तो वे बिगाड़ ही क्या सकते थे ? लेकिन सूरमा जी, अब होश ठिकाने हैं कि नहीं ?"

"कंठ में जलन हो रही है भाई, इस राणा की तलवार से तो भगवान् सोमनाथ ही बचाएँ।"

"बस ? एक ही झपाटे में आ गए चित्त ?"

"चित्त आने की क्या बात है हरामी ! तू भी कुछ देखता-समझता नहीं। अबे झपाटा किसका था, सो नहीं दीखता तेरी आँखों में ?"

"हूँ, दीखता तो है, बाघ का झपाटा था—अँधेरे में से ऐसे कूदकर आया जैसे नरसिंह अवतार हो।"

"अबे, चुप भी रह, जल्दी-जल्दी चल। भटराजिन को फिकर लग रही होगी।"

"यूँ कहो न कि प्राण काँप रहे हैं—कहीं बाघ फिर से झपट न पड़े !"

"जैसा चाहे, वैसा समझ। लेकिन चल बाबा, जल्दी चल, घर

से सहज रूप से विश्वास कर लेने वाली। ऐसी सरल, निश्छल, अबोध युवती के मन में पाप की छाया तो दूर से भी नहीं पड़ सकती थी—अवश्य इस देवराज ने उस अबोध बाला को बहला-फुसलाकर अपना उल्लू सीधा किया है। दोष इसमें मंडलेश्वर की मदन का ज़रा भी नहीं हो सकता—दोष देवराज का है।

और मदन को राणा के प्रासाद में क्या कमी थी भला? रानी थी वह, राजसी ठाठ से रहती थी, सेवा के लिए सैंकड़ों दास-दासियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। पत्ता तोड़ने का कष्ट भी उसे नहीं होता था। तब वह धोलके के राज-प्रासादों को छोड़कर, अपने मानी मंडलेश्वर को छोड़कर ऐसे कैसे चली जाती? उसे कोई कष्ट होता, कोई कमी होती, कोई लोभ होता तो जाती किसी शाह या सम्राट् के पास—मगर, वह गई तो गुजरात के एक मामूली-से किसान के घर—देवराज पटेल के साथ—अवश्य इस देवराज ने बेचारी सरलमना मदन को पट्टी पढ़ाकर विवश कर दिया। दोष इसमें उसकी मदन का तनिक भी नहीं हो सकता—दोष देवराज का है।

देवराज······देवराज······देवराज! तेरा काल आ गया लगता है। मंडलेश्वर का क्रोध भड़क उठा है, उनकी मुट्ठियाँ भिंच गई हैं, उनके दाँत उनके नीचे के ओठों को काट रहे हैं, एक अजीब-सी संकल्प की चमक उनकी आँखों में भर गई है—अभागे देवराज, तेरा काल आ गया लगता है। सावधान!

अब मंडलेश्वर की विचारधारा इधर या उधर न भटककर एक किनारे लग गई थी और वे फिर से लम्बे-लम्बे डग भरते हुए शीघ्र ही बटुकेश्वर के शिवालय में जा पहुँचे।

आश्रमवासी शिष्य सब सो चुके थे। अपनी कुटिया में राजगुरु कुमारदेव ध्यानमग्न-से बैठे लवणप्रसाद की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके हाथ में रुद्राक्ष की एक माला थी जिसके मनके उनके अंगूठे,

अनाभिका और मध्यमा की धीमी गति के साथ ऊपर से नीचे सरक रहे थे।

जेहुल कुटिया के बाहर ही एक छप्पर के नीचे खटिया पर बैठा चिलम पी रहा था और साडनी उसके समीप ही आराम से बैठी जुगाली कर रही थी। दूर से अपने स्वामी की गंध पाकर उसने अपनी लम्बी गर्दन ऊँची की और अपनी बड़ी-बड़ी काली आँखों से कुटिया तक आने वाले मार्ग की ओर देखने लगी। उसके लहरदार, चिकने बदन पर जो एक झुरझुरी-सी आई, उसे देखकर जेहुल भी जान गया कि स्वामी लौट आए है।

कुछ ही क्षण बाद मंडलेश्वर वहाँ आ पहुँचे। जेहुल को बैठा देख कर बोले—

"अरे तू बैठा ही है अभी। सो क्यों नहीं गया?" और यह कह कर वे अपनी साडनी के पास गए। साडनी अपनी चिकनी लम्बी गर्दन अपने स्वामी के शरीर से रगड़-रगड़ कर अपना प्यार और कृतज्ञता प्रदर्शित करने लगी। लवणप्रसाद ने अपना हाथ उसकी गर्दन और शरीर पर फेरा और उसे थपथपाते हुए कहा—

"तैयार हो जा, राणकी, दौड़ करनी है।"

अपने स्वामी का संकेत और भाषा समझकर राणकी तुरन्त उठ खड़ी हुई। यह देखकर लवणप्रसाद ने कहा—"अरे इतनी उतावली मत हो, ज़रा मैं भी तो सुस्तालूँ। तेरे पैरों में तो बिजली भरी है। बैठ-बैठ, अभी रुक ज़रा।"

उसके बाद लवणप्रसाद ने जेहुल से फिर पूछा—"तूने कुछ खाया-पिया कि नहीं? मैं थोड़ा कुमारदेव से बात करलूँ, फिर चलना है भला! आज की रात तुझे विश्राम मिलने का नहीं।"

जेहुल ने उत्तर दिया—

"मै तो तैयार बैठा हूँ, स्वामी! लेकिन आप थके हो, भीतर पधारो, राजगुरु आपकी प्रतीक्षा में जाग रहे है।"

लवणप्रसाद का स्वर सुनकर कुमारदेव कुटिया के द्वार पर आ खड़े हुए थे। उन्हें लेकर वे फिर भीतर चले गए।

कुछ फल और भोजन एक सादी थाली में सजे रखे थे। साफ-सुथरे लोटे और एक बड़े-से कांसे के कटोरे में जल भरा था। कुमारदेव ने लवणप्रसाद के हाथ मुँह धुलाए और थाली उनके सामने करके कहा—

"भोजन कर लो बापू !"

चुपचाप ही लवणप्रसाद ने जल्दी-जल्दी खा-पी लिया। इस क्रिया से फुरसत पाकर आचमन करके वे फिर अपने आसन पर आ बैठे। इस बीच कुमारदेव ने स्थान को स्वच्छ कर दिया था।

स्वस्थ होकर बैठ जाने के बाद कुमारदेव ने मन्द पड़ गये दीपक की लौ को ज़रा-सा उकसाया और पूछा—

"राजगढ़ से क्या समाचार लाए बापू ! महाराज का स्वास्थ्य तो ठीक है न ? आप कुछ उत्तेजित दिखाई देते हो ?"

"हूँ......हाँ देव ! बात ऐसी ही है। सोलंकी को जगाकर आया हूँ आज। और सोलंकी जागा है तो लवणप्रसाद का झमेला भी बढ़ गया है ?"

"सो कैसे बापू ! यह अनहोनी कैसी सुना रहे हैं आप—महाराज अपने भोग-विलास को छोड़ सकेंगे ?"

"नहीं छोड़ेंगे कैसे ? आखिर किसका रक्त है उनकी नसों में ? वनराज, मूलराज और सिद्धराज जयसिंह के चौलुक्य वंश का ही न ! नहीं, देव, आज सोलंकी की आँख खुल गई है। अब गुजरात का स्वरूप बदलकर रहेगा। लेकिन मैंने कहा, मेरा झमेला बढ़ गया न ! महाराज का कहना है कि मैं पाटन आकर ही रहूँ और पाटन की सारी सत्ता अपने हाथ में लूँ—मुझसे यह सारी झँझट भला होगी ?"

"क्या कहते हो बापू ! इसमें झँझट क्या है ? अब भी तो दिन-रात आप खटते-खपते हो, लेकिन महाराज का ध्यान नहीं है तो परिश्रम

व्यर्थ जाता है। अब आप कहते हो कि महाराज को गुजरात याद आया है तो मेरे भोले महारुद्र की कृपा गुजरात पर हुई लगती है। सब ठीक हो जाएगा राणा, यह तो शुभ है, सारे लक्षण आज शुभ की ओर संकेत करते दीखते है। लेकिन धोलके की क्या व्यवस्था करोगे बापू ?"

"यही तो कहता हूँ कि मेरी झँझट बढ गई है। महाराज का कहना है, पाटन की गद्दी का स्वामी अब वीरधवल है। मैं और महाराज तो जब तक हैं सो हैं, किसी भी दिन चल पड़ेंगे। अब कैसे करूँ और कैसे न करूँ ....?"

पाटन के शुभ दिन लौट रहे है यह जानकर वृद्ध राजगुरु का हृदय आह्लाद से भर उठा था और उनके दाहिने हाथ मे अब भी थमी हुई रुद्राक्ष की माला के मनके तेजी से फिरने लगे थे। उत्साह भरे स्वर से उन्होने कहा –

"अपने वीरधवल को अब ले आओ, बापू ! अब तो वह बडा हो गया होगा। जब वह बहुत छोटा था तब मैंने उसे एक बार देखा था— बिलकुल अपने बाप पर गया है। उस सिंह के बच्चे को धोलका सम्हला देना बापू, और आप पाटन आकर रहना। तब सब ठीक हो जायगा।"

वीरधवल और उसके साथ मदनराज्ञी की याद राणा लवणप्रसाद को आज बराबर बनी हुई थी। बार-बार उनकी आँखो के आगे वर्षो पूर्व देखी मदन का मुस्कान भरा चेहरा झूम-झूम जाता था। और उसके साथ ही एक तीखा शूल उनके कलेजे मे गडता-सा प्रतीत होता था। शूल भी कोई सामान्य नही, विष-बुझा। उस विष-बुझे शूल की चुभन से राणा लवणप्रसाद के सारे शरीर मे एक असह्य पीडा झनझना रही थी। किन्तु उस मर्मान्तिक पीडा को मौन ही रहकर वे सहे जा रहे थे। मदनराज्ञी के लिए शिकायत का एक भी शब्द अपने मुख से निकालने में उन्हे अपने प्रेम का गौरव खडित होता प्रतीत होता था। और

राणा लवणप्रसाद जैसे कर्मयोगी तिल-तिल जल जाना भले ही स्वीकार कर सकते हैं किन्तु अपने गौरव को खंडित होते देखने के लिए वे जीवित नहीं रहते।

देखा न जा सके इस प्रकार धीरे-से अपने ओठ को काटकर राणा ने राजगुरु की बात का उत्तर दिया—

"हाँ देव ! वीरु को तो अब लाना ही होगा। लेकिन पता नहीं उस लड़के में कोई तमीज़ नाम की भी कोई चीज आई होगी कि नहीं।"

"पहली बात तो यह है कि शेर के बच्चों को गीदड़ों का शिकार करना सिखाना नहीं पड़ता और दूसरी बात यह कि वीरधवल को थोड़े दिन मेरे पास भेज देना।"

राणा का मन प्रसन्न हो गया। उन्हें जैसे किसी बड़ी भारी समस्या का समाधान एकाएक मिल गया। कुमारदेव केवल परम विद्वान् ही नहीं, शस्त्र-विद्या में भी बेजोड़ थे। लवणप्रसाद तो कभी-कभी मौज में आते तो उन्हें द्रोणाचार्य ही कहा करते थे। वीरधवल को कुछ दिन कुमारदेव के पास भेज देने की बात न जाने क्यों उनके दिमाग में अब तक नहीं आई थी शायद उनका मस्तिष्क किन्हीं अन्य विचारों में इतना उलझा हुआ था कि इस छोटी-सी किन्तु महत्वपूर्ण सूझ बेचारी को उसमें प्रविष्ट होने का अवसर ही नहीं मिल पाया था। अब वे एक बालक की भाँति प्रसन्न होते हुए बोले —

"समझ गया, देव ! अब मैं समझ गया। वीरु को सबसे पहले आपके पास ही ला दूँगा। आप उसे ठोक-पीटकर देख लेना। फिर उसे मेरे पास भेजना, इससे पहले नहीं।"

राणा लवणप्रसाद अपने हृदय में उठते हुए तूफान को कितनी भी शक्ति और कुशलता से दबाएँ और छिपाएँ, लेकिन वयोवृद्ध कुमारदेव की तीक्ष्ण दृष्टि से उनके मन का एक भी भाव, तन की एक भी सिहरन छिप नहीं सकती थी। वे जानते ही थे कि वीरधवल और उससे

सम्बन्धित मदनराज्ञी का प्रसंग राणा के लिए कितना कोमल होता है। अतः इस प्रसग को उन्होंने यही पर समाप्त करते हुए दूसरा प्रसग छेडा—

"यह सब तो ठीक हुआ बापू, लेकिन आपसे और महाराज से पाटन सम्हल जायगा क्या ?"

यह सुनकर राणा हँस पड़े और बोले—

"महाराज है अस्वस्थ, और मैं हूँ अक्खड राजपूत। देव ! हमारे वस का नही कि पाटन के तन्त्र को सम्हाल सकें। मेरी चले तो मैं तो तलवार उठाकर कल ही निकलूँ और गुजरात के शत्रुओ के सिर काट कर, लाकर, सरस्वती मे डूबो दूँ या अपना सिर कटाकर चैन से सोऊँ। लेकिन आप कहते हो कि ऐसे राज्य का तन्त्र नही चलता, सो उसका उपाय तो आपको करना है। वह बात तो मैं आपसे करने को था। कोई है आपकी दृष्टि मे ?"

"हाँ, है, बापू ! लेकिन बुलाना पडेगा—वह आए तो।"

"आएगा क्यो नही भला ?"

"आज्ञा देकर बुलाओगे बापू ?—तब वह नही आएगा। तलवार दिखाओगे तब भी वह नही आएगा।"

"आज्ञा क्यो दूँगा ? तलवार क्यो दिखाऊँगा ? गुजरात की धरती ने उसे जाया होगा तो गुजरात की सेवा के लिए वह खुद आएगा।"

"हाँ बापू ! आप समझे, ऐसे ही वह आयेगा।"

"पर है कौन ? वही छोकरा जिसकी आप बडी प्रशसा करते थे··· क्या नाम था उसका अच्छा सा ··· ।"

"अब वह छोकरा नही रहा बापू ! बुद्धि मे बृहस्पति के समान और बल मे इन्द्र के समान प्रतापी युवक हो गया है। आपने तो उसे बहुत समय से नही देखा—नाम है उसका वस्तुपाल।

"अरे हाँ, वस्तुपाल। छोकरा दिखाई तो तेज देता था फिर आपने जिस तलवार को धार पर चढा दिया हो देव, उसकी काट का क्या

कहना !—उसका एक भाई भी था न आपके आश्रम में ? वह बड़ा खटपटिया था।"

"हाँ बापू ! वह खटपटिया तेजपाल, अर्जुन जैसा धनुर्धर और सिद्धराज जैसा खड्गधारी हो गया है भला ! उसे अब छोकरा जानना नहीं।"

"जाओ, जाओ देव ! देखता हूँ आपको भी अपने शिष्यों की प्रशंसा करने का मोह बना ही हुआ है। बित्ते-बित्ते भरके वे छोकरे आज बृहस्पति और इन्द्र, अर्जुन और सिद्धराज जैसे योद्धा हो गए ?"

"परीक्षा करनी है ?"

"वह तो करनी ही होगी। पाटन का आमात्य बिना जाँच-परख के आएगा भला ?"

"ठीक। बापू ! परीक्षा ले लेना। खरे न उतरें तो कहना, कुमार-देव झूठा था।"

"अरे देव, सो नहीं। मुझे भरोसा है। लेकिन देख लूँगा।"

"विलक्षण युवक है वह वस्तुपाल, बापू ! कहता हूँ मुझे उसे कुछ सिखाना नहीं पड़ा। ढली-ढलाई तलवार हाथ लग गई थी, केवल सान पर चढ़ाकर धार में तीक्ष्णता मैंने ला दी है। मैं तो उसकी बुद्धि की प्रखरता को देखकर विस्मित ही रह गया हूँ। क्या काव्य, क्या दर्शन, क्या नीति और क्या कोई भी शास्त्र—वह पारंगत है, उसमें जन्मजात प्रतिभा है। और शौर्य तो उसकी नस-नस में ढला है। सच बापू, ऐसा ही तेजपाल भी। वह जरा अक्खड़ है, ठीक आप जैसा। शास्त्र-वास्त्र में उसे अधिक रुचि नहीं, उसे तो शस्त्र ही प्रिय है।"

"अर्थात् लवणप्रसाद को एक साथ गुजरात का महामात्य और महासेनापति दोनों ही मिल गए हैं, क्यों न देव !"

"दो अमूल्य रत्न राणा लवणप्रसाद के हाथ लगे हैं, ऐसा मानो बापू ! अधिक क्या कहूँ, आज मेरे महारुद्र प्रसन्न हैं। वे दोनों रत्न पाटन आएँगे तो आपको पता पड़ेगा।"

"अच्छा देव, तो चलूँ। शुभ कार्य में देर क्या करनी? जाऊँ, आपके रत्नों की खोज मे निकलूँ।"

"अभी? अभी कैसे जाना होगा? अब तो विश्राम करो बापू! प्रातःकाल जैसा समझो वैसा करना।"

"नही देव! जाऊँगा तो अभी। काम है। फिर दर्शन शीघ्र ही तो करूँगा। अभी तो आज्ञा दें।"

"विस्मय है! लेकिन आपने जाना तय किया है तो अब रुकोगे नही यह जानता हूँ। जैसी आपकी इच्छा। पर शीघ्र पाटन लौट आना बापू, वीरधवल के साथ। आजकल यहाँ खंभात (स्तम्भतीर्थ) के अरब और दूसरे यवन खूब चक्कर लगा रहे हैं, आपने तो देखा होगा।"

"हाँ, देखा है। राजगढ गया था तब खभात के सिद्दीक सेठ को महल मे जाते देखा था। देखकर मेरा माथा ठनका था। लेकिन परवाह नही, अब लौटकर आता हूँ तो इन सबको देख लूँगा।"

"खभात के सिद्दीक सेठ को कच्चा समझना नही बापू! वह बूढा भेडिया है।"

"और उसके दाँत कैसे तोडना, वह मैं जानता हूँ, देव! लेकिन पहले वीरधवल को एक बार आपके सुपुर्द कर दूँ और पाटन के महामात्य को पाटन मे ले आऊँ तब बात करूँ।"

"ठीक है, तब सावधानी रखना राणा! अमावस्या का अंधकार है।"

"चिन्ता नही।"

इतना छोटा-सा उत्तर देकर राणा लवणप्रसाद फुर्ती से उठे और जेहुल को पुकार कर कहा—

"जेहुल, साडनी तैयार कर।"

स्वामी के स्वर और इच्छा को जानने वाली राणा की साडनी तुरत उठकर खडी हो गई। जेहुल ने उसे खोलकर बाहर किया और लवणप्रसाद कुमारदेव से विदा लेकर अंधकार में विलीन हो गए।

***

मदनराज्ञी

अपनी पीठ पर जेहुल कोठिया और राणा लवणप्रसाद को लिये हुए जब राणकी तेज पवन की गति से धोलका पार करके आगे उड़ी जा रही थी तब सूर्य की किरणें पृथ्वी पर तिरछी पड़ने लगी थीं। खुले मैदानों में अब भी माघ महीने की, देह को प्रिय लगने वाली उजली-उजली धूप फैली हुई थी, लेकिन जहां घने जंगल आ जाते वहां ठंडक का अनुभव होता था और सांडनी सवारों के शरीर में शीत की फुरहरी-सी दौड़ जाती थी।

जेहुल सांडनी को हांक रहा था। लवणप्रसाद पीछे रेशमी गद्दी पर आराम से बैठे थे। अवश्य उनका शरीर राणकी की सधी पीठ पर बड़े आराम से था और उसकी तेज चाल से एक हल्का-सा भी झटका उन्हें नहीं लगने पाता था, किंतु उनके हृदय में जो तूफान गई रात से ही गरज रहा था उससे वे अत्यंत क्षुब्ध दिखाई देते थे।

माघ महीने की ठंडी सन्ध्या और गुजरात के एक छोटे से गाँव का मार्ग राणकी बड़ी तेज़ी से काट रही थी। फिर भी उस दूरस्थ ग्राम में पहुँचते-पहुँचते गोधूली वेला आ पहुँची थी। गायों के पैर की ठोकर से उड़ी हुई धूल, कुछ धुन्ध और आकाश से उतर कर जंगलों की ओर से गाँव की तरफ बढ़ते हुए हलके अन्धकार ने मिल-जुलकर एक अजीब-से तिलस्म की सृष्टि करदी थी।

गाँव की कांकड़ को पार कर लेने पर लवणप्रसाद ने जेहुल से कहा—

"यह स्थान ठीक है। घास खूब फैली है। तू राणकी को लेकर यहाँ रुक, इसे चरा लेना। मैं बस, अभी आता हूँ।"

जेहुल ने संकेत किया और सांडनी रुक कर, पैर सिकोड कर बैठ गई। दोनों सवार उस पर से नीचे उतर गए। जाने से पहले लवणप्रसाद कुछ देर तक गाँव की ओर देखते रहे जो कि उजड़ा-उजड़ा दीख रहा था। अन्धकार में डूबा हुआ। गज़नी के सुलतान ने सचमुच सारे गुजरात को अपने अरबी घोड़ों के मज़बूत खुरों से रौंद डाला था और उसे वीरान बना दिया था। उसने सोमनाथ को तो भ्रष्ट और नष्ट किया ही था, कोई नगर, कोई ग्राम तक उसके अन्धे प्रकोप से बच नहीं सका था। वर्षों पूर्व कभी लवणप्रसाद ने इस गाँव को देखा था। तब और अब में कितना अन्तर आ गया था? अब तो वह पहचान में ही जैसे नहीं आता था और एक बार तो राणा को भी यह भ्रम हुआ कि वे ठीक स्थान पर ही पहुँचे हैं कि नहीं, यह वही ग्राम है भी कि नहीं?

जेहुल ने कहा—

"जल्दी आना बापू! मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करता हूँ या आप कहो तो मैं भी चलूँ?"

"तू क्या करेगा मेरे साथ? करना है सो मैं अकेला ही किये आता हूँ।"—उसके बाद कुछ सोचकर लवणप्रसाद ने कहा—

"या ऐसा कर जेहुल, तू जाकर उस देवराज को यहीं बुला ला, कहना, तेरा काल आया है, तलवार बाँध कर चल। वहाँ गाँव में व्यर्थ हल्ला होगा।"

"जैसी बापू की आज्ञा।"—कह कर जेहुल चलने को हुआ किन्तु इतने ही में फिर राणा ने कुछ विचार कर लिया और उसे रोकते हुए बोले—"रुक, रुक जेहुल! मैं ही जाता हूँ, तू यहाँ रह।"

और यह कहकर लवणप्रसाद ने अपनी तलवार और कटार आदि शस्त्रों को अपने कपड़ों से अच्छी तरह ढक लिया, राजसी कपड़ों को अव्यवस्थित कर लिया, घुँघराली दाढ़ी को बीच में से दो हिस्से कर कानों से बाँध लिया और इस प्रकार एक मामूली-से किसान का रूप बना कर वे गाँव में प्रविष्ट हो गए।

कुछ अँधेरे के कारण और कुछ गाँव की शक्ल ही बदल जाने के कारण राणा को देवराज पटेल का घर खोजने में बड़ी असुविधा हुई। इसलिए एक-आध स्थान पर किसी ग्वाले से उन्होंने पूछा—

"भाई, देवराज पटेल का घर किधर है भला?"

"वो सीधा रास्ता जाकर उल्टे हाथ मुड़ जाना, किनारे पर ही तो है।"

अपने को मानो स्वयं से ही छिपाते-बचाते लवणप्रसाद देवराज पटेल के घर के बाहर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर गुजरात के उस अद्वितीय योद्धा का हृदय भीतर ही भीतर ऐसे थर-थर करने लगा जैसे पीपल का पत्ता हवा में काँप रहा हो।—कहीं मदनराज्ञी सामने पड़ गई तो?

अपनी मदन को देखकर भी क्या वे अपने हृदय को इसी भाँति कठोर बनाए रख सकेंगे और अपने भयानक संकल्प को पूरा कर सकेंगे? मदनराज्ञी यदि राणा को दीख गई तो क्या वे उसकी ओर से घृणा से मुँह फेर सकेंगे? क्यों नहीं? मदन से उनका अब सम्बन्ध ही क्या है?. मदन उनकी कौन है? लवणप्रसाद के लिये तो वह मर

चुकी है।—केवल देवराज से हिसाव चुकता करना है और अपने वीरधवल को ले आना है। वस, इतना करके उन्हे तुरन्त लौट आना है।—मदनराज्ञी से उन्हे कोई सरोकार नही है।

सैकडो योद्धाओ के प्रहारों को एक साथ अडिग रहकर झेलने वाले वाघेला राणा लवणप्रसाद के मन की स्थिति इस समय विचित्र ही हो रही थी। उनका मन कहता था कि वे सब कुछ कर सकते हैं लेकिन अपनी मदन का सामना नही कर सकते। और फिर दूसरे क्षण वे अपने कमज़ोर मन को धिक्कारते और कहते—तू इतना कायर, इतना कोमल, इतना भावुक कब से हो गया राणा? यह कमज़ोरी तुझे शोभा नही देती। एक राजपूत को चट्टान की तरह मजबूत होना चाहिए और उसे अपने मन को भी पत्थर बना लेना चाहिए।

जैसे किसी हिंडोले मे झूल रहे हो इस प्रकार इधर-उधर होते हुए राणा देवराज के मकान के बाहर दीवार की आड में अँधेरे मे खडे थे। देवराज का गोधन चरागाहो से लौट कर घर मे प्रविष्ट हो रहा था। कुछ सोचकर लवणप्रसाद उनके ही साथ सबकी दृष्टि बचा कर मकान के आँगन मे चले गए।

भीतर रसोई घर से बर्तनो की खटर-पटर की आवाज़ बाहर आ रही थी—अवश्य यह मदन ही है, रोटी बना रही है। दोलायमान मन लिये राणा कुछ देर चुपचाप एक छोटी-सी खिडकी के पास खडे होकर अपने आपको आगे की घटनाओ के लिए प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते रहे। अनजाने ही उन्होने अपने ओठ को दाँतो से तेज़ी से काट लिया और उसमें से खून निकल आया। उसे उन्होने धीरे-से एक तरफ थूक दिया। अपनी तलवार उन्होने म्यान से बाहर कर ली और सिर को एक झटका देकर वे सीधे तन कर खड़े हो गए।

घर के बाहर के दरवाजे पर घोडे के खुरो की टाप सुनाई दी। देवराज पटेल अपने खेत से लौट आया था। घोड़े की लगाम थामे वह

भीतर आया और उसे एक खूंटे से बांध कर मकान के भीतर जाने के लिये आगे बढ़ा।

अन्धकार में छिपे खड़े राणा ने एक बार सोचा—किस्सा खत्म करूं? एक ही वार में वारा-न्यारा कर डालूं? झमेला बढ़ाने से क्या फायदा! इसे समाप्त तो करना ही है। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें स्वयं अपने इस विचार पर लज्जा का अनुभव हुआ—ऐसे हत्यारों की तरह आचरण करेगा राणा लवणप्रसाद क्या? नहीं, सावधान करके ही निपटारा करूंगा। अभी खेत से थका हुआ लौटकर आया है—मदन भी तो उसकी राह देखती बैठी है। एक बार मिल तो लेने दूं, देखूं मैं भी कि वह उस पर-पुरुष के साथ कैसे रहती है……।

देवराज भीतर चला गया।

लवणप्रसाद के कदम स्वयं ही उन्हें उस खिड़की के समीप ले गए, जहां से भीतर का दृश्य साफ दिखाई देता था।

मदनराज्ञी रसोई में बैठी रोटियां पका रही थी। हां, लवणप्रसाद ने यह देखा और अपने स्थान से वे हिल नहीं सके—देखते ही रहे। मदनराज्ञी……मदन, उनकी अपनी विवाहिता प्राणेश्वरी मदन, कैसी [illegible] रही है, [illegible] में आग और धुंए के सामने बैठ कर रोटियां [illegible]? उसका [illegible] क्यों कैसा [illegible] जैसा हो गया है? और [illegible] कोमल [illegible] [illegible]

[illegible]

उड गया हो'' • •

मदनराज्ञी ने अपनी बडी-बडी, काली आँखें देवराज की पगध्वनि सुनकर रसोई के द्वार पर बिछा दी थी।—हाँ, लवणप्रसाद ने यह भी देखा और देखकर उनका कलेजा उनकी छाती को चीर कर बाहर आने को हुआ—आँखो मे अब भी तो वही जादू है। उस आकाश मे अब भी वही नीलिमा है, वही स्वच्छता है, वही गुलाबी डोरे है।

"आ गए तुम ? हाथ मुँह धो लो, गरम-गरम रोटिया तैयार है। मै पानी-पाटला लगा देती हूँ।"

मदनराज्ञी का स्वर • इस स्वर मे वही मिठास है, वही विष है ••• मेरे भगवान ! मेरे भोले महादेव ! तूने अपने कठ का सारा कालकूट मेरे ही लिए सहेज कर रखा था क्या ?

मदनराज्ञी ने उठकर देवराज के मुँह हाथ धुलाए और आसन पाटा लगा दिया। वह आकर आसन पर बैठ गया। मदनराज्ञी थाली परोसने लगी तो देवराज ने पूछा—

"वीरू कहाँ है ?"

"भटकता फिरता होगा बाहर। वह टिकता है क्या घर म ? ना बाबा, उसे एक पल चैन नही। ठीक अपने • " कहते-कहते मदनराज्ञी रुक गई। सुनकर लवणप्रसाद का हृदय फिर ज़ोर से धडक उठा—ठीक ही तो कह रही थी वह ठीक अपने बाप जैसा अस्थिर है। यही न ! एक पल को चैन नही आह ! मेरे शम्भू ! आह मेरे भगवान् !

वाक्य अधूरा छोड कर मदनराज्ञी ने आगे कहा—"उसने अभी शाम को खाना खाया है। भूख नही होगी। भूख लगगी तब आ जाएगा मेर पास। तुम खा लो ।'

"कहती क्या हो, मै खालूँ ? आजतक, इतने बरस हुए मैंने वीरू के बिना खाना खाया ही नही, आदत ही पड गई है, अब अकेले मेरे गले के नीचे रोटी उतरेगी, पागल ! जा, जा, यही कही खेलता होगा

वुला ला उसे। मैं तव तक वैठा हूँ।"

जिसका नाम सुनकर ही शत्रु काँपने लगते हैं वह वाघेला राणा लवणप्रसाद यह सुन कर सन्न रह गया था। उसके पैर काँपने लगे थे और नंगी तलवार थामे हुए दाहिना हाथ थर-थर कर रहा था। धीरे से, तनिक भी आवाज़ न हो इस प्रकार धीरे से, उसने अपनी तलवार को म्यान में रख दिया।—इसी देवराज को मारने आया हूँ जो मेरे वीरू को इतना प्यार करता है? वह साथ में खाना न खाए तो उसके गले के नीचे रोटी नहीं उतरती? मैंने तो सोचा था अपने वच्चों के प्यार में वह वीरू की उपेक्षा करता होगा। वीरधवल देवराज की अपनी सन्तानों के वीच एक गुलाम की ज़िन्दगी विता रहा होगा—हे मेरे पिनाकपाणि! हे मेरे रुद्र! यह मैं क्या देख रहा हूँ? अब क्या करूँ मैं भोलेनाथ?

मदनराज्ञी ने देखा कि वीरधवल को वुलाए विना रास्ता नहीं। सो वह उठी और कहती गई—

"ये वच्चे यहाँ रसोई में खेल रहे हैं, इनका ध्यान रखना। मैं अभी आई उसे लेकर—जाने कहाँ घूम रहा होगा वह शैतान?"

मदनराज्ञी तो वाहर गई, लेकिन उसकी दृष्टि कहीं न पड़ जाय यह सोच कर ज़रा और एक तरफ हट जाने के लिये ज्योंही राणा मुड़े कि भीतर दीवाल पर उनकी पूरी छाया पड़ गई। देवराज ने वह छाया देखी और विस्मय और भय से वह स्तंम्भित रह गया। लवण-प्रसाद ने देख लिया कि देवराज ने जान लिया है कि कोई व्यक्ति यहाँ है तव वे द्वार की ओर वढ़ कर भीतर आ गए और वोले—

"डरने या हल्ला मचाने की जरुरत नहीं है देवराज! यह मैं हूँ। पहचाना नहीं मुझे?"

"क······क······कौन?······वाघेला राणा?"

"हाँ, लवणप्रसाद! वहुत वदल गया न मैं? सैंकड़ों युद्धों के

घाव मेरे शरीर और मुख पर हो गए है—पहिचान कठिन हो गई, है न ?"

"आप ...... राणा ...... यहा ?"

"क्यो ? अब डर लगता है ? मदन को ले आए थे तब डर नही लगा था ?"

"बापू ......।"

"डरो नही देवराज ! आया तो था एक और युद्ध करने। लेकिन अब तलवार म्यान मे रख दी है। मैने देख लिया है कि मदन तुम्हे प्यार करती है और तुम मेरे वीरू को सहेज कर रखे हो—उसके बिना भोजन तक नही करते। मेरे लिए इतना ही बहुत है। तुम सुखी रहो, मदन सुखी रहे। मेरे वीरू को दे दो, उसे लेने आया हूँ। कांकड मे साडनी खडी है, उसे खाना खिला कर ले आना। अच्छा, अब चलता हूँ।"

"राणा ! ऐसे कैसे जाना होगा ? साथ बैठकर दो ग्रास नही खाओगे। मेरे मन की बात नही सुनोगे ? मदन से भेंट भी नही करोगे क्या बापू ? आठ वर्ष पूर्व ......।"

"वह सब समाप्त हो गया देवराज ! उसकी बात करना अब व्यर्थ है। अच्छा, तुम्हार साथ बैठकर भोजन कर लूँगा, लेकिन एक शर्त है।"

"आज्ञा करो बापू !"

"मदन को मालूम नही होने देना है कि तुम्हारा मेहमान कौन है। उधर बाहर औसारे मे थाली मँगा लो।"

"ऐसा ही सही। तब पधारो बापू।"

देवराज उठ कर आगे-आगे चला। पीछे-पीछे लवणप्रसाद गए। देवराज ने दरी बिछा कर तकिया रख दिया और राणा के बैठ जाने पर वह भी वही बैठ गया। औसारे मे हल्का अँधेरा था इसलिए वहाँ कौन-कौन बैठे है, यह जानना मुश्किल था। लवणप्रसाद के कहने पर

बुला ला उसे। मैं तव तक बैठा हूँ।"

जिसका नाम सुनकर ही शत्रु काँपने लगते हैं वह वाघेला राणा लवणप्रसाद यह सुन कर सन्न रह गया था। उसके पैर काँपने लगे थे और नंगी तलवार थामे हुए दाहिना हाथ थर-थर कर रहा था। धीरे से, तनिक भी आवाज़ न हो इस प्रकार धीरे से, उसने अपनी तलवार को म्यान में रख दिया।—इसी देवराज को मारने आया हूँ जो मेरे वीरू को इतना प्यार करता है? वह साथ में खाना न खाए तो उसके गले के नीचे रोटी नहीं उतरती? मैंने तो सोचा था अपने बच्चों के प्यार में वह वीरू की उपेक्षा करता होगा। वीरधवल देवराज की अपनी सन्तानों के बीच एक गुलाम की ज़िन्दगी बिता रहा होगा—हे मेरे पिनाकपाणि! हे मेरे रुद्र! यह मैं क्या देख रहा हूँ? अब क्या करूँ मैं भोलेनाथ?

मदनराज्ञी ने देखा कि वीरधवल को बुलाए बिना रास्ता नहीं। सो वह उठी और कहती गई—

"ये बच्चे यहाँ रसोई में खेल रहे हैं, इनका ध्यान रखना। मैं अभी आई उसे लेकर—जाने कहाँ घूम रहा होगा वह शैतान?"

मदनराज्ञी तो बाहर गई, लेकिन उसकी दृष्टि कहीं न पड़ जाय यह सोच कर ज़रा और एक तरफ हट जाने के लिये ज्योंही राणा मुड़े कि भीतर दीवाल पर उनकी पूरी छाया पड़ गई। देवराज ने वह छाया देखी और विस्मय और भय से वह स्तंम्भित रह गया। लवणप्रसाद ने देख लिया कि देवराज ने जान लिया है कि कोई व्यक्ति यहाँ है तब वे द्वार की ओर बढ़ कर भीतर आ गए और बोले—

"डरने या हल्ला मचाने की जरुरत नहीं है देवराज! यह मैं हूँ। पहचाना नहीं मुझे?"

"क······क······कौन?······वाघेला राणा?"

"हाँ, लवणप्रसाद! बहुत बदल गया न मैं? सैंकड़ों युद्धों के

घाव मेरे शरीर और मुख पर हो गए है—पहिचान कठिन हो गई, है न ?"

"आप·· ····राणा ·······यहा ?"

"क्यों ? अब डर लगता है ? मदन को ले आए थे तब डर नही लगा था ?"

"बापू·· ···!"

"डरो नही देवराज ! आया तो था एक और युद्ध करने। लेकिन अब तलवार म्यान मे रख दी है। मैंने देख लिया है कि मदन तुम्हे प्यार करती है और तुम मेरे बीरू को सहेज कर रखे हो—उसके बिना भोजन तक नही करते। मेरे लिए इतना ही बहुत है। तुम सुखी रहो, मदन सुखी रहे। मेरे बीरू को दे दो, उसे लेने आया हूँ। कांकड़ मे साडनी खडी है, उसे खाना खिला कर ले आना। अच्छा, अब चलता हूँ।"

"राणा ! ऐसे कैसे जाना होगा ? साथ बैठकर दो ग्रास नही खाओगे। मेरे मन की बात नही सुनोगे ? मदन से भेंट भी नही करोगे क्या बापू ? आठ वर्ष पूर्व ·····।"

"वह सब समाप्त हो गया देवराज ! उसकी बात करना अब व्यर्थ है। अच्छा, तुम्हारे साथ बैठकर भोजन कर लूँगा, लेकिन एक शर्त है।"

"आज्ञा करो बापू !"

"मदन को मालूम नही होने देना है कि तुम्हारा मेहमान कौन है। उधर बाहर औसारे मे थाली मँगा लो।"

"ऐसा ही सही। तब पधारो बापू।"

देवराज उठ कर आगे-आगे चला। पीछे-पीछे लवणप्रसाद गए। देवराज ने दरी बिछा कर तकिया रख दिया और राणा के बैठ जाने पर वह भी वही बैठ गया। औसारे मे हल्का अँधेरा था इसलिए वहाँ कौन-कौन बैठे है, यह जानना मुश्किल था। लवणप्रसाद के कहने पर

देवराज वहाँ रखने के लिए कोई दीपक नहीं लाया।

थोड़ी ही देर वे दोनों वहाँ चुपचाप बैठे थे कि बाहर से एक दस-बारह वर्ष के बालक को बड़ी कठिनाई से गोद में लिये हुए मदनराज्ञी लौटी। भीतर आते-आते वह कह रही थी—

"हे भगवान! यह लड़का है कि तूफान? बस में ही नहीं आता! इसे बस में कर सके ऐसा तो ……।"

एक बार फिर मदनराज्ञी का वाक्य अधूरा ही छूट गया। आज जाने क्या बात है, उसने अपने मन में सोचा, बार-बार इस लड़के को लेकर उसके पिता की याद उसे क्यों आ रही है? शाम से ही उसकी बायीं आँख भी तो फड़क रही है, ये कैसे लक्षण हैं आज? क्या उसका राणा………उफ! व्यर्थ है अब। आठ वर्ष हो गए, निर्दयी ने एक बार भी तो सुध नहीं ली—पूछा तक नहीं कि जीती हूँ कि मर गई—क्रोध करके ही आता, मुझे ज़हर देने, मेरा गला घोंट कर मार डालने के लिए ही एक बार आता तो मेरा जीवन धन्य हो जाता। मगर उस निर्मोही ने तो मान लिया होगा कि मदन मर गई……

मदनराज्ञी की इस विचार-धारा को खंडित करते हुए देवराज ने कहा—

"थाली यहीं भेज देना।"

"क्यों?"

"मेहमान हैं।"

"अच्छा।"—कहकर मदनराज्ञी वीरधवल को देवराज के पास छोड़ कर भीतर चली गई।

देवराज ने वीरधवल को लवणप्रसाद की गोद में दे दिया। इतने नज़दीक से आदमी का चेहरा कुछ-कुछ दीखता था। वीरधवल इस नए व्यक्ति को अपनी बड़ी-बड़ी, काली आँखों से देखता रहा और कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। फिर वह राणा की बिखरी हुई कड़ी मूँछों को खींचता हुआ बोला—

"अरे बापा रे ! मूँछें कैसी है जैसे बाघ की पूँछ। अरे बापा रे !"

राणा लवणप्रसाद के मन मे इस समय क्या हो रहा था, इसका वर्णन कर सकना विधाता के वश की भी बात नही है। वे धीरे-धीरे बालक के मस्तक पर स्नेह से हाथ फेर रहे थे और मजे से अपनी मूँछें खिचवा रहे थे। धीरे-धीरे उनकी आँखों के कोरो पर आँसू की दो बडी-बडी बूँदें छलक आईं और टप् से वीरधवल के मस्तक पर गिर गईं।

बालक चौक पडा। उसने देखा कि वह व्यक्ति तो रो रहा था। इतना बडा, इतना बलिष्ठ दीखने वाला व्यक्ति रो भी सकता है यह बात उस भोले बालक को इतनी विचित्र और विस्मय की प्रतीत हुई कि वह ऐसी मजेदार बात अपनी माँ को बताने के लिए उछल कर राणा की गोद से छूट भागा।

राणा लवणप्रसाद ने अपनी तर्जनी से अपनी आँखों की कोरो को चुपचाप पोछ लिया।

भीतर जाकर वीरधवल ने मदनराज्ञी से कहा—

"माँ, माँ, ओ माँ ! देख तो सही..... ।"

"अब क्या दिखा रहा है इस समय बाबा ! जरा तो शात बैठ ! देखता नही ओसारे मे मेहमान बैठे है।"

"अरे माँ, मेहमान की ही तो बात कहता हूँ—देख माँ, इतना बडा मेहमान रोता है। और माँ, उसकी मूँछें इत्ती कडी हैं जैसे बाघ की पूँछ।"

—मेहमान रोता है ? इत्ता बडा आदमी। उसकी मूँछें ऐसी हैं जैसे बाघ की पूँछ !—हे भगवान, और मेरी बायीं आँख आज शाम से ही फडक रही है और मेरे मुँह से आज बार-बार ऐसी मूँछो और ऐसे शरीर वाला आदमी तो गुजरात मे एक के अलावा दूसरा नही " तो क्या ......तो क्या राणा आया है ?

लेकिन वह रोता है—राणा, और उसकी आँखों में आँसू ? असंभव। कोई और होगा। होगा कोई। मदनराज्ञी ने सोचा और अपने काम में लगी रही।—लेकिन उसका मन फिर उचाट हुआ और वह सोचने लगी—लेकिन मुझे लगता है कि हो न हो ··· ··

देवराज ने भीतर आकर पूछा—

"थाल परोसा ? ला, मैं ले जाऊँ बाहर। चल वीरू, चल तो भला।"

आगे-आगे दौड़ता हुआ वीरधवल फिर से औसारे में जाकर लवण-प्रसाद की गोद में बैठ गया। किसी भी नए आदमी से चौंकने वाला वह बालक लवणप्रसाद की मूँछों और उनकी विशाल गोद से इतना आकर्षित हुआ कि तनिक भी हिचक दिखाए बिना उसने उन्हें अपना ही कोई मान लिया था और उन्मुक्त हो कर उनके साथ खेलने लगा था।

मदनराज्ञी रसोई में बैठी-बैठी विचारों में डूबी हुई थी। विगत काल की कुछ मधुर स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर ठंडे बादलों की छाया कर रही थीं। इस छाया ने उसके मन में आनन्द और विषाद की एक आँख-मिचौनी का खेल आरम्भ कर दिया था। वह सोच रही थी कि हो न हो, अवश्य राणा आया है।

आखिर उससे सब्र नहीं किया गया। वह धीरे-से उठी और हलके कदम रखती हुई, मन ही मन काँपती हुई, औसारे के दरवाज़े के पीछे जाकर खड़ी हो गई और झाँककर भीतर देख ही लिया।—अँधेरे में भी उसने एक विशालाकृति अतिथि को भोजन करते हुए देखा और देखा कि वीरधवल बड़ा शांत होकर उसकी गोद में बैठा उसी के हाथ से खाना खा रहा है। इतना ही पर्याप्त था, क्षण भर में ही यह देख कर उसने उस व्यक्ति को पहचान लिया—हाय ! वही है·······उसका वाघेला राणा, उसका मानी राणा लवणप्रसाद।

झर-झर आँसू झरते रहे। बड़ी-बड़ी आँखों से बड़ी-बड़ी मोती

की लडियाँ टूट-टूट कर कच्चे आँगन मे गिर-गिर कर सूखती रही। एक उखडी हुई आँधी की तरह मदनराज्ञी का हृदय हाहाकार करता रहा और वह न हिल सकी न डुल सकी ''''''विवश, ठगी, खोई-सी अतीत और वर्तमान की भूल-भुलैया मे विलीन हो गई।

न जाने कितनी देर तक मदनराज्ञी यूँ ही खडी रही, देखती रही और रोती रही ! वे कुछ क्षण उसे ऐसे लगे कि जैसे युग-युग बीत गए, काल के प्रवाह के कल्प-कल्प व्यतीत हो गए। एक अनजान पीडा मे उसका हृदय बिंध-सा भी गया था और उसे ऐसा भी लग रहा था कि काल रुक जाय तो अच्छा रहे—वह अतिथि ''''''हाँ अतिथि ही तो !—ऐसे ही बैठा रहे, और वह द्वार के पीछे खडी-खडी ऐसे ही रोती रहे ''' ''''रोती रहे · रोती रहे—सारा जनम, जन्म-जन्मान्तर।

भोजन समाप्त होने पर देवराज लवणप्रसाद के मुँह हाथ धुलाने के लिए उठा तब स्मृति और विस्मृति के दश से विमूर्छित मदनराज्ञी एकाएक सजग, सचेष्ट हुई और लडखडाते कदमो से रसोई की तरफ चली गई। वहाँ जाकर वह अपने घुटनों के बीच मे सिर रख कर सिसक उठी—मर क्यो नही गई मै अभागिन ! मर क्यो नही जाती मैं ? मेरे पाप का कोई प्रायश्चित भी है क्या, हे भगवान !

देवराज ने भीतर आकर देखा कि मदनराज्ञी रो रही है तो विस्मय मे डूबा रह गया। बोला—

"अरे, क्या हुआ मदन ? रोती क्यो है ? हुआ क्या तुझे बैठे-बैठे ? तबियत खराब है क्या ? तो उठ, आराम कर, चूल्हे के सामने बैठी क्यो झुलस रही है ? उठ, उठ—देखूँ तो, बुखार तो नही चढ आया ?"

देवराज ने मदनराज्ञी के मस्तक पर हाथ लगाकर देखा, मस्तक जल रहा था। घबराकर उसने कहा—

"अरे बाप रे ! तुझे तो ज्वर चढ आया और तूने बताया भी नही ? कमाल करती है तू भी। चल उठ अब जल्दी, बिस्तर पर लेट

जा ज़रा। मैं लवण ...... मेहमान को विदा कर दूँ तो दौड़कर वैद्य से से तेरे लिये दवा ले आता हूँ।"

"मुझे कुछ नहीं हुआ। जाओ, वीरधवल को तैयार करके अपने मेहमान के साथ भेज दो।"— कहकर उसने हृदय में उमड़कर आती हुई रुलाई को बलात् रोक लिया। आखिर वह एक सच्ची राजपूत स्त्री थी। अपने सामने ही अपना सर्वस्व लुटता हुआ देखकर भी मुस्करा सकती थी—बल्कि हँसते-हँसते अपने सर्वस्व को स्वयं लुटा भी सकती थी।

किन्तु मदनराज्ञी की बात सुनकर देवराज तो भौंचक्का रह गया—वीरधवल को मेहमान के साथ भेजने की बात मदन ने कैसे कही ? क्या उसने उनकी बातचीत सुन ली ? क्या उसने राणा को पहचान लिया ? या किसी नैसर्गिक संकेत से ही वह जान गई कि उसका राणा आया है और वीरधवल को लेने आया है ?

प्रकट में वह इतना ही कह सका—"तुझे कैसे मालूम कि कोई वीरधवल को लेने आया है ? हाँ, राणा लवणप्रसाद ने अपना आदमी भेजा है। बाप ने अपने बेटे को बुलाया है। भेजना ही होगा। हम भला उसके माँ-बाप थोड़े ही हैं ? हमारा उस पर अधिकार ही क्या है—वह हमारा लड़का थोड़े ही है—जिस का अधिकार है वह उसे माँग रहा है............।"

कहते-कहते देवराज को रुलाई आ गई। वीरू के बिना उसके गले से कौर नहीं उतरता—अब वह क्या करेगा ? मदन क्या करेगी ?

किन्तु राजपूतनी ने अपने हृदय को पत्थर बना लिया था। वह बोली—

"ऐसे जी छोटा करने से कैसे चलेगा ? रोओ नहीं। एक धरोहर थी किसी की, सो वह माँगने आया है...... उसने मँगाई है तो उसे तो लौटाना ही होगा। चलो, मैं वीरू को तैयार किये देती हूँ ....।"

वीरू तो असमंजस में पड़ा-सा राणा के साथ, हाँ, अपने पिता के साथ चला गया। उसे पाटन जाने का उत्साह था और लवणप्रसाद की

मूँछें और उनकी गोद उसे कितनी अच्छी लगती थी !

विदा से पूर्व देवराज ने भरे गले मे राणा से कहा—

"वापू ! वीरू को सहेजना। कभी-कभी उसे मेरे पास भी .... ।"

"तुम धोलके आना देवराज ! वीरू को अब धोलका सम्हालना है और गुजरात को खडा करना है। अच्छा अब चलूँ।"

और वह निर्मोही एक वार भी घर के भीतर आँगन की ओर दृष्टि फेंके विना, तीर की तरह अन्धकार मे खो गया।

घर के भीतर आँगन मे झर-झर वडी-वडी मोतियो की लडियाँ टूट-टूटकर विखरती रही और कच्चे आँगन मे टप्-टप् कर टपकती और विलीन होती रही।

***

आचार्य का भविष्य-कथन

पाशविक शक्ति के विद्रूप प्रतीक अत्याचारी गजनी के सुलतान की अग्नि और विनाश बरसाने वाली तलवार के समक्ष पराजित और पतित हो गए गुर्जर राष्ट्र को फिर से उठा कर खड़ा कर सके और उसे देवत्व का गौरव प्रदान कर सके, ऐसे जिस महामात्य की खोज गुजरात के धनी और धोलका के राणा लवणप्रसाद को थी वह था कहाँ ? कौन था वह ? किस वंश में, किन परिस्थितियों में जन्म लेकर उसने गुजरात की शिराओं में नवीन रक्त का संचार किया था ?

एक बार तो चाणक्य की याद भी भुला दे ऐसे उस धुरन्धर आमात्य के जन्म की कथा जाने बगैर इतिहास अपूर्ण ही रह जाएगा—

गुजरात के एक छोटे से गांव मालासन के पनघट पर सहेलियाँ ठिठोली कर रही थीं। कुए से पानी खींच-खींच कर घड़ों में भरती जातीं, मौज में आने पर पूरी की पूरी भरी डोली एक-दूसरे पर

उछाल देती और ऐसे खिलखिला पडती जैसे सैकडो घुँघरू झमक उठे हो।

उन सहेलियो मे एक युवती बाला अपनी वेशभूषा, अपने सौदर्य और अपने सुसस्कृत व्यवहार से बिलकुल अलग ही दीखती थी—जैसे अनेको कोकिलाओ के बीच मे कोई राजहसिनी। उसे कोई घडा नही भरना था, वह तो अपने मन की तरग मे आकर सहेलियो के साहचर्य का सुख कुछ समय लेने के लिए यूँ ही चली आई थी।

वह कुमारदेवी थी। पाटन के दडपति श्रीमन आभूशाह की एक मात्र लाडली सतान। पीढियो से कोटि-कोटि धनराशि आभूशाह के कोश मे जमा होती चली आई थी, और अब वे पाटन छोडकर कुछ समय से मालासन मे ही आकर रहने लगे थे। वे जैसे श्रीमन्त थे वैसे ही विचारवान भी। और उनके घर को शोभित कर सके ऐसी ही उनकी पत्नी थी लक्ष्मी। यह कुमारदेवी उन्ही श्रेष्ठि आभूशाह और लक्ष्मी की पुत्री थी। उसे कौन सा घडा भरना था? विधि ने घडो से भर-भर कर स्वर्ण और रत्न-राशि उसके पिता के घर मे स्वय ही उलीच दी थी।

सहेलियाँ पानी भर भी रही थी और उछाल भी रही थी, काम भी चल रहा था, क्रीडा भी।

उसी समय मुक्त विचरण करते हुए एक मुनि उधर से निकले। सीधे भूमि की ओर ही सावधानी से देखते हुए और राह मे पड जाने वाले जीव-जन्तुओ को अपने पैर के नीचे कुचल जाने से बचाते हुए वे मुनि शात मुद्रा मे गाँव की ओर बढे चले जा रहे थे। सम्भव था कि वे मुनिवर रास्ते के किनारे पनघट पर ठिठोली करती हुई स्त्रियो को न देखते और न ही उनकी आवाज ही सुनते—वीतरागी साधु-सन्तो को ससार के आमोद प्रमोदो मे रुचि नही होती।

किन्तु मुनि की एकाग्रता टूटी और उन्होने सिर उठाकर ऊपर

उनकी सेविकाएँ थीं। उस दिन अर्ध रात्रि तक उन्होंने अपने सामुद्रिक ज्ञान का उपयोग करके गणना की थी और उस गणना से उन्होंने एक निर्णय निकाला था।

प्रातःकाल उनका प्रवचन सुनने के लिए लोग एकत्रित हुए थे। धार्मिक रुचि वाले दंडपति आभूशाह भी सपरिवार मुनि की सेवा में उपस्थित थे। लोगों की भीड़ के पीछे एक अन्य व्यक्ति भी चुपचाप बैठा आचार्य का प्रवचन सुन रहा था। आचार्य ने उपस्थित जन-समुदाय को जीवन-व्यवहार के उत्तम सूत्र बताए जिन्हें सुनकर मन को शान्ति मिलती है।

इस प्रवचन के दौरान सबसे पीछे बैठे हुए अश्वराज ने बड़ी बारीकी से देखा कि आचार्य की तीव्र दृष्टि अनेक बार महिलाओं के समाज में बैठी हुई कुमारदेवी के चेहरे की ओर गड़ जाती थी। यह देख-देख कर उस युवक को जाने कैसा-कैसा लगता था! वह सोच रहा था कि तपस्या और संयम का ढोंग करने वाले इन आचार्य के इन बहुमूल्य प्रवचनों का कोई मूल्य नहीं। उपदेश देना सरल है, पर स्वयं उन बातों पर आचरण करके दिखाना कठिन। यदि ऐसा न होता तो कल ये आचार्य कुमारदेवी कि ओर इस तरह क्या देख रहे थे? और कल ही नहीं, आज इतने सारे समाज में उनके चंचल मन की कुचेष्टा चाहे और सब लोगों की दृष्टि से छिप जाय, मेरी दृष्टि से नहीं छिप सक रही है। देखूँगा, एकान्त मिलने दो, मैं पूछकर रहूँगा इस ढोंगी से कि क्या यही इसका साधुत्व है? यही इसका संयम है? यही इसकी तपस्या है—जिसका झूठा उपदेश यह चिल्ला-चिल्लाकर सारे संसार को दे रहा है?

प्रवचन समाप्त होने पर सब लोग एक-एक कर आचार्य को वन्दना कर विदा हो गए। उपाश्रय में एकान्त हो जाने पर अश्वराज आचार्य के समीप गया और बोला—

"क्षमा करें मुनिराज ! मैं आपको नमस्कार नहीं कर सकूँगा, क्योंकि नमन साधुत्व को किया जाता है, वासना को नहीं। आप जिसका उपदेश दुनिया को दे रहे हैं, उसके एक अंश का भी आचरण आप करते तो आपका यह मुनि वेश सार्थक होता। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि ।'

"आचार्य मन्द मन्द मुस्करा रहे थे, बोले—

'कल से अब तक यही सोच रहे हो अश्वराज !"

उद्धत युवक के शरीर में जैसे काटो तो खून नहीं। मुनि उसे जानते हैं ? उसका नाम तक जानते हैं ? और यह भी जानते हैं कि मैं कल से अब तक क्या देख रहा हूँ, क्या सोच रहा हूँ ? वह कुछ क्षण हतप्रभ-सा खड़ा रह गया। आचार्य के प्रभावान मुखमंडल पर वैसी ही शान्ति और माधुर्य फैला हुआ था।

किसी प्रकार साहस बटोर कर अश्वराज ने फिर कहा—

'आश्चर्य है आप मेरा नाम कैसे जानते हैं और यह कैसे जानते हैं कि मैं कल से आज तक क्या सोच रहा हूँ ? किन्तु होगा, आप यह कहें कि आप संयम का, साधुत्व का उपदेश हम लोगों को तो देते हैं किन्तु स्वयं आप श्रेष्ठि पुत्री कुमारदेवी की ओर इस प्रकार वासना भरी दृष्टि गड़ा गड़ाकर क्या देख रहे थे ?'

'जिनके हृदय में वासना का विष फैला होता है उन्हें सबकी दृष्टि में वही विष दिखाई देना स्वाभाविक है युवक ! उसमें तुम्हारा दोष नहीं। और दोष है भी तो इतना ही कि तुम अपनी वासना को भीतर ही भीतर पाल रहे हो। किन्तु अब वह वासना मथित होकर तप कर शुद्ध प्रेम का स्थान लेगी, यह मैं देख रहा हूँ। क्या कहना चाहते हो संकोच त्याग कर कहो अश्वराज !

'मुनिराज आचार्य ! क्षमा करें किन्तु मैं समझ नहीं सका कि आप कुमारदेवी की ओर इस तरह गौर से क्या और क्या देख रहे थे ?"

"कुमारदेवी से प्रेम करते हो न ! प्रेम स्वर्ग का वरदान है। और कुमारदेवी की नियति भी अश्वराज के साथ जुड़ी हुई है।"

अश्वराज विस्मित था। किसी प्रकार उसने आगे पूछा—

"आचार्य, मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा कि आप क्या कह रहे हैं ! आप रहस्य में बोल रहे हैं........।"

"रहस्य कुछ होता नहीं अश्वराज ! ज्ञान का नेत्र खुले तो जो रहस्य दीखता था वह सत्य बन जाता है।"

"अर्थात्.......?"

"मैंने कुमारदेवी के मस्तक की रेखाओं को ध्यान से देखा है। उनका अध्ययन कर लिया है और गणना की है। अश्वराज ! जो भावी है वह कहता हूँ—"इस कुमारदेवी की पुण्य कुक्षि से इस गुर्जरधरा को दो नर-रत्नों की प्राप्ति होगी। यह नियति है और अटल है।"

"कहते क्या हैं आप आचार्यवर ? कुमारदेवी तो विधवा है...!"

"अश्वराज को उस देवी को पुनः सधवा करने का पुण्य तथा गुजरात को फिर से उठाकर खड़ा करने वाले दो नर-रत्नों को जन्म देने का गौरव देवी को प्राप्त होगा।"

युवक अश्वराज जड़वत् खड़ा सुनता और सोचता रह गया—क्या यह संभव है ? हे जिनदेव ! यदि यह सम्भव है तो क्या अश्वराज के दिन फिर से फिरेंगे ? उसके उच्च कुल का विगत गौरव फिर से लौट सकेगा ?

कुछ समय बाद वह चुपचाप आचार्य को नमस्कार करके लौट गया।

अश्वराज गुर्जरपति सिद्धराज जयसिंह के कोषाध्यक्ष सोममंत्री का सुयोग्य पुत्र था। सोममंत्री के पिता चंद्रप्रसाद तथा उनके भी पिता चंद्र भी सोलंकियों के कोषाध्यक्ष रह चुके थे। किन्तु समय ने पलटा

खाया था और महाराज भीमदेव के समय मे अश्वराज मत्री को पाटन छोड कर मालासन मे आकर आभूशाह के यहाँ लिपिक का कार्य स्वीकार करना पडा था। अश्वराज की पीढियो से सचित सारी सपत्ति विनष्ट हो चुकी थी। और इस विनाश के लिए उत्तरदायी था खभात का अरब सिद्दीक। अश्वराज के अनेक माल से भरे जहाज उसने इस कुशलता से लूट लिये थे कि कोई कुछ कर नही सका। पाटन की इस समय जो स्थिति थी, उसमे अश्वराज के लिए दडपति आभूशाह की सेवा मे आकर रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही था।

किन्तु आभूशाह अश्वराज का उचित सम्मान करते थे। वे उसके उच्च कुल को भूले नही थे और अश्वराज के सस्कारी चरित्र तथा योग्यता से भी वे प्रभावित थे। अत. ऊपर से देखने पर अश्वराज के दिन ठीक ही व्यतीत हो रहे थे।

अश्वराज कुमारदेवी स मन ही मन प्रेम करता था। किन्तु समय व्यतीत होता गया था, और एक बार भी उसने अपन इस प्रेम को प्रकट करने की धृष्टता नही की थी—हाँ, एक विधवा के प्रति अपना प्रेम प्रकट करना किसी सस्कारी व्यक्ति के लिए धृष्टता ही तो होती!

लेकिन अब क्या होना है? ईश्वर को क्या इच्छा है? आचार्य निमित्तज्ञानी है उनका वचन असत्य नहीं हो सकता, अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आचार्य असत्य वचन अपने मुँह से निकाल ही नहीं सकते। तो निश्चय है कि कुमारदवी का विवाह अश्वराज के साथ होगा। लेकिन कैसे? क्या दडपति इस स्वीकार करेंगे? क्या कुमारदेवी की माता इसे स्वीकार करेंगी? क्या स्वय कुमारदेवी इसके लिए प्रस्तुत हागी? क्या वह कुमारदवी स इस विषय मे बात करे? उसमे यह साहस कहाँ से आएगा? आज तक अश्वराज ने कुमारदेवी के समक्ष आँख उठाकर भी नही देखा, बातचीत की ता कौन कहे? आने को अनेक प्रसग ऐसे आए जब वह कुमारदेवी से वार्तालाप कर

सकता था, किन्तु ऐसा उसने कभी नहीं किया। स्वयं कुमारदेवी भी इस युवक के प्रति स्नेह और कोमलता का भाव रखती थी, किन्तु सीमा त्यागकर उसने भी आजतक एक भी वार उसका न तो सामना ही किया था न कोई वार्त्तालाप।

तव अब आचार्य हरिभद्रसूरि का भावी कथन कैसे सिद्ध होगा ?

वर्षों पूर्व की यह घटना है। उस समय जेहुल कोडिया राणा लवणप्रसाद के यहाँ नहीं पहुँचा था, आभूशाह की सांडनियाँ हाँका करता था। अश्वराज के सज्जन स्वभाव से आकृष्ट होकर वह कभी-कभी खाली समय में उसके पास जा बैठता था और अश्वराज भी यदि फुरसत में होता तो वह जेहुल से सुख-दुख की वातें कर लिया करता था।

उपाश्रय वाली घटना के बाद दो-तीन दिन तक अश्वराज खोया-खोया-सा भटकता रहा। उसे कुछ सूझ नहीं पा रहा था कि वह क्या करे। आभूशाह से या कुमारदेवी से कुछ कहने का उसका साहस इसलिए नहीं होता था कि कुमारदेवी विधवा थी। बचपन में ही उसका विवाह हो गया था और पति का मुख देखे विना ही वह दुदैववश अपनी मांग का सिन्दूर खो चुकी थी।

इसलिए उन दिनों अश्वराज मन ही मन बड़ा पीड़ित था। अपने मन की इस पीड़ा को बाहर निकालने का उसे आखिर एक ही मार्ग सूझा और वह था जेहुल कोडिया से सारी बात कह डालना। एक दिन उसने जेहुल से कहा—

"कोडिया ! क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। तू ही कोई रास्ता बता सकता हो तो बता।"

"बात क्या है मंत्री जी ! देख रहा हूँ कि दो-तीन दिन से अनमने-अनमने-से बने रहते हो ?"

तब अश्वराज ने आरम्भ से अन्त तक की सारी बात जेहुल को ज्यों की त्यों बता दी। सुनकर जेहुल को प्रसन्नता भी हुई और विस्मय

भी। प्रसन्नता का कारण यह था कि वह भी हृदय से चाहता था कि उसके स्वामी की पुत्री व्यर्थ ही वैधव्य का दारुण दुःख भोग रही थी। यदि आचार्य की वाणी सत्य सिद्ध हो और उसकी स्वामी-पुत्री को अश्वराज मन्त्री जैसा सुयोग्य वर प्राप्त हो जाय तो कहना ही क्या है? और विस्मय तो उसे होना स्वाभाविक था ही।

अतः बात सुनकर जेहुल कोडिया ने बड़े विचारपूर्वक कहा—

"मन्त्रीजी! समस्या तो विकट है। लेकिन मेरा मन कहता है कि कोई न कोई रास्ता निकलेगा। जब सूरि जी ने कहा है कि देवी सधवा होगी तब उनका वचन तो टल नहीं सकता।"

"अरे, सो तो ठीक है जेहुल! लेकिन करना क्या है? क्या सोचते-सोचते ही सारी आयु बिता देनी होगी?"

"धीरज धरें मन्त्री जी! आज आपने बात बताई है तो कुछ सोचने का अवसर मुझे भी दो।"

"ठीक है जल्दी से कुछ उपाय कर कोडिया! अब तो मुझसे किसी भी प्रकार बर्दाश्त होता नहीं है।"

एक-दो दिन बाद कुमारदेवी ने अचानक जेहुल से पूछा—

"अरे जेहुल! देखती हूँ आजकल अश्वराज जी कुछ उदास से दिखाई देते है। उनका स्वास्थ्य तो ठीक है? उन्ह श्रेष्ठि आभूशाह के घर कोई तकलीफ तो नहीं है?"

कुमारदेवी सभी का ख्याल रखती थी। स्वभाव से वह सरल और करुण थी। अतः जब उसने दो-तीन दिन तक अश्वराज को अपने घर पर कार्य मे व्यस्त रहते अथवा आचार्य के प्रवचन के समय देखा तो उसके उतरे हुए चेहरे को देखकर उसे सहज चिन्ता हुई थी और इसीलिए उसने यह प्रश्न जेहुल से पूछ लिया था, क्योंकि वह यह जानती थी कि अश्वराज कभी यदि थोडा खुलकर भी बात करता है तो वह जेहुल ही से। बाकी समय तो जैसे उसके मुँह पर ताला ही लगा रहता है।

जेहुल ने कुमारदेवी के प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दे दिया था—

"वहिन ! अश्वराज कुछ अस्वस्थ हैं। वैसे कोई विशेप वात तो नहीं।"

"अस्वस्थ हैं, और विशेप वात नहीं ? तू भी पागल है कोडिया। अरे, अस्वस्थ हैं तो विश्राम करना चाहिए न ! दिन-रात ऐसे काम में खटने की जरूरत ?"

"अच्छा, कहूँगा उनसे वहिन !"

"हाँ, कह देना, शरीर तो ठीक रहना चाहिए न, तभी मन भी स्वस्थ रहता है।"

जेहुल को कुमारदेवी की इस वात में से आशा की एक किरण दिखाई दी। उसने सोचा, यदि भगवान को मंजूर हो तो कुमारदेवी और अश्वराज की जोड़ी सूरज और चाँद जैसी लगेगी। उसने आकर यह वात अश्वराज को वताई। सुनकर अश्वराज भीतर ही भीतर धन्य-सा हो आया—इतना विचार करती है कुमारदेवी उसका ?

दूसरे दिन अश्वराज ने जेहुल को वुलाकर कहा—

"जेहुल ! मुझे तो एक ही मार्ग सूझता है।"

"कौन सा मार्ग मंत्रीजी ?"

"पहले तू वता कि मेरी सहायता करेगा कि नहीं ? और जो कुछ मैं कहूँ, उसे किसी और को वताएगा तो नहीं ?"

"नहीं कहूँगा। और जो कुछ मेरे वश में हुआ वह आपकी और कुमारदेवी की प्रसन्नता के लिए अवश्य करूँगा।"

"तव देख, जेहुल, आज आधी रात के समय कुमारदेवी की अटारी के नीचे एक तेज़ सांडनी तैयार रखना। मैं कुमारदेवी को लेकर चला जाऊँगा। तू हमें छोड़कर आना।"

सुनकर एक वार तो जेहुल को कँपकँपी आ गई। फिर उसने कहा—

"कहोगे वह करूँगा, लेकिन अश्वराज मंत्री ! खूव सोच-समझ

लिया है न ? कहीं कुमारदेवी ने स्वीकार नहीं किया तो ?"

"ऐसा नहीं हो सकता जेहुल ! आचार्य हरिभद्रसूरि का कथन मिथ्या नहीं हो सकता । उनकी भविष्य-वाणी है कि कुमारदेवी सधवा होगी । तो वह सच होकर ही रहेगी । और फिर जेहुल, मान लो कि वह स्वीकार न करे तब भी फिर अश्वराज को जीवित नहीं रहना है । तू जहाँ जगह मिले चले जाना—मेरी तो शरण फिर मृत्यु की गोद ही होगी ।"

"इसके अतिरिक्त मंत्री जी, देवी के प्रकोष्ठ में आपको इतना समय और सुविधा कैसे मिलेगी कि आप उन्हें सारी वस्तुस्थिति से अवगत करा सकें ? यदि शोर-गुल हुआ तो घर के अन्य लोगों के जाग जाने की तथा अपने कार्य में बाधा आने की संभावना है ।"

"हाँ, यह तो ठीक है । तब क्या किया जाय ?—अच्छा जेहुल, ऐसा कर कि तू कहीं से मुझे कोई ऐसी वस्तु ला दे जिसके प्रयोग से देवी को कुछ समय के लिये मूर्छित किया जा सके अथवा इतनी गहरी निद्रा में वे डूब जाएँ कि कुछ समय तक उन्हें होश ही न रहे ।"

जेहुल ने इस प्रस्ताव पर विचार किया और कहा—

"अच्छी बात है । वैद्यराज पंडित हरिप्रसाद मेरे मित्र हैं । बड़े कुशल और ज्ञानी हैं । वे अनेक जड़ी-बूटियों का शोध और प्रयोग करते ही रहते हैं । मैं उनसे कोई ऐसी जड़ी-बूटी लाकर आपको दे दूँगा जिसे सूँघ कर कोई भी व्यक्ति घड़ी-दो घड़ी के लिए प्रगाढ निद्रा में खो जाय । आप वह जड़ी देवी को सुँघा दीजियेगा ।"

"बिलकुल ठीक, भूलना नहीं । आज शाम से पहले ही यह कार्य तू कर डालना ।"

अश्वराज के अटल निश्चय को देखकर जेहुल ने कहा—

"ठीक है । निश्चय रहा । आप जैसा ठीक समझो वह करो मंत्री जी ! मैं आधी रात के ठीक बाद साँडनी तैयार रखूँगा ।"

अर्धरात्रि की निस्तब्धता में जब अश्वराज कुमारदेवी के प्रकोष्ठ के द्वार पर जा खड़ा हुआ तब उसका आशंकित हृदय धड़क-धड़क कर रहा था। बड़ी कठिनाई से अपने धड़कते हुए हृदय को मजबूत करके वह अपने जीवन का पहला और आखिरी दाँव लगाने के लिये प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हो गया।

कुमारदेवी कोमल, रेशमी शैया पर लेटी हुई प्रगाढ़ निद्रा में डूबी हुई थी। उसका अत्यन्त सुन्दर मुख देखकर अश्वराज को ऐसा लगा जैसे स्वप्न-लोक की कोई देवी उड़ते-उड़ते थककर तनिक विश्राम करने के लिए पृथ्वी पर उतर आई हो और उसकी आखें मुँद गई हों।

निःशब्द, दृढ़ निश्चयपूर्वक अश्वराज कुमारदेवी की शैया के समीप जा पहुँचा और वैद्यराज पंडित हरिप्रसाद की दी हुई जड़ी उसने कुमारदेवी को सुँघा दी। कुछ ही क्षणों में सोई हुई कुमारदेवी इतनी प्रगाढ़ निद्रा में डूब गई जैसे कि वह मूर्छित हो। तब सोई हुई कुमारदेवी को आहिस्ते से अपने दोनों बाहुओं में फूल की तरह उठाकर अश्वराज तेज़ी से प्रकोष्ठ से बाहर निकल आया। कुमारदेवी की निर्द्वन्द्व प्रगाढ़ निद्रा में तनिक भी भंग नहीं हुआ।

जेहुल और उसकी सांडनी तैयार थी। सांडनी पर पालकी कसी हुई थी। अश्वराज ने कुमारदेवी को पालकी में कोमल शैया पर धीरे से सुला दिया और स्वयं पालकी के पीछे जा बैठा।

जेहुल कोडिया ने आगे वाहक के स्थान पर बैठ कर सांडनी हाँक दी।

अश्वराज ने इस प्रकार कुमारदेवी का हरण कर तो लिया किन्तु उसका हृदय आशा और निराशा के हिण्डोले में झूल रहा था। उसे आशा थी कि कुमारदेवी उसकी पत्नी बनना स्वीकार कर लेगी, क्योंकि आचार्य का वचन था—स्वयं शासन देवी ने आचार्य के समक्ष प्रकट होकर भावी कथन किया था।

साथ ही शका और सदेह भी उसके मस्तिष्क मे उमड आते और वह निराशा के कगार से विनाश के अतल गर्त मे गिर जाने को होने लगता, क्योंकि कुमारदेवी सभ्रात परिवार की धार्मिक आचार-विचार वाली सुसस्कृता नारी थी। क्या आश्चर्य कि वह अपने वैधव्य को कर्मों का फल मानकर अश्वराज के सग जाने से इनकार ही कर बैठे।

एक घडी व्यतीत हो गई। साडनी तेजी से दक्षिण दिशा मे उडी चली जा रही थी। गाँव से बहुत दूर आने पर अचानक कुमारदेवी की निद्रा टूटी। कुछ समय तक तो वह जान ही नही पाई कि वह है कहाँ? फिर जब उसे स्थिति का ज्ञान हुआ तब वह क्रोध मे भरी सिहनी के समान भयकर बन गई और कटार निकालकर उसने जेहुल की गर्दन पर तान दी—

"क्यो रे हरामी कोडिया! तेरी यह मजाल? तेरी मृत्यु आ गई ऐसा लगता है।"

जेहुल ने शातिपूर्वक उत्तर दिया—

"बहिन! थोडा विचार से काम लो, यदि तुम्हे इस प्रकार यहाँ ले आना अपराध ही हो, तो वह अपराधी मैं नही हूँ। तुम्हारा वास्तविक अपराधी तो डोली के पीछे बैठा है।"

कुमारदेवी ने मुडकर, डोली का परदा पीछे से हटाकर देखा—अश्वराज! वह विस्मित होकर उसे देखती और सोचती रह गई—इतना सीधा, सरल और शिष्ट दीखने वाला यह अश्वराज इतना चालाक और अशिष्ट निकला? आखिर इसे हुआ क्या है? इसका यह साहस क्यो कर हुआ?

वह कुछ बोल सके या अपनी कटार का वार अश्वराज की छाती पर कर सके इसके पूर्व ही अश्वराज ने कहा—

"देवि! यदि मेरे प्राण लेना अभीष्ट हो तो प्रस्तुत हूँ, प्रतिकार के लिये एक उँगली तक नही उठाऊँगा। किन्तु सुन तो लो, आचार्य

हरिभद्रसूरि ने भविष्य कथन किया है। उन्होंने मुझे बताया है कि तुम्हारी कुक्षि से, गिरे हुए गुजरात को उठाकर खड़े करने वाले दो नर-रत्न उत्पन्न होंगे। और देवि, सूर्य और चन्द्र की तरह अपने यश का प्रकाश दसों दिशाओं में फैलाने वाले उन नर-शार्दूलों का पिता बनने का गौरव मुझे प्राप्त होगा······

"देवि ! आचार्य की सिद्धि पर मुझे विश्वास है। आप भी उनकी उपासिका हैं। मैंने जो आपका हरण कर ले आने की धृष्टता की वह इसी विश्वास के कारण और सदिच्छा से। बस, मुझे इतना ही कहना है। अब यदि आप चाहें तो इस कटार से मेरी छाती को चीर सकती हैं। आपके बिना अश्वराज को तो जीवित रहना नहीं है।"

यह सुनकर कुमारदेवी आश्चर्य में डूबी रह गई—असंदिग्ध है कि आचार्य हरिभद्रसूरि सिद्ध मुनि हैं। उनका निमित्त ज्ञान उन्हें अतीत और अनागत की घटनाओं का ज्ञान कराता है—और सचमुच जब पहली बार आचार्य ने कुमारदेवी को गाँव के पनघट पर देखा था तभी से उन्होंने बार-बार उसके चेहरे पर अपनी अन्तर्भेदी दृष्टि गड़ा कर जाने क्या-क्या तो देखा-सोचा है। तब क्या आचार्य का कथन सत्य है ? क्या उसकी नियति अश्वराज के साथ सचमुच ही बंधी हुई है ? क्या उसका वैधव्य समाप्त होगा ? क्या उसकी कुक्षि से दो अद्वितीय पुरुषों का जन्म होगा ······ ओह, यदि यह सच है तो······!

धीरे-धीरे कुमारदेवी का कृपाण साधे हुए दाहिना हाथ नीचे उसकी गोद में गिर पड़ा। जिनका वर्णन और विश्लेषण सम्भव नहीं, ऐसी कुछ भावनाओं से भर कर उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। माता-पिता की आज्ञा लिये बिना इस प्रकार हरण कर ली जाकर चले आने की पीड़ा। किन्तु आचार्य के कथन के अनुसार दो अमूल्य नर-रत्नों को उत्पन्न करके अपने नारी जीवन को धन्य कर सकने की आशा का सुख !

भरे हुए कंठ से आखिर कुमारदेवी ने कहा—

"विधि का विधान विचित्र और अटल है अश्व स्वामी ! उसे स्वीकार करना ही है। किन्तु अब मेरी एक विनय है, जहुल को सांडनी लेकर घर लौटा दीजिये और माता पिता को सूचना भिजवा दीजिये। जा, जेहुल ! तू लौट जा, मेरा भाग्य मुझे आगे ले जा रहा है, सो मैं चली। तू माता पिता से कहना कि अपनी बेटी पर क्रोध न करें। नियति के समक्ष मनुष्य का वश ही क्या ? उनसे यह भी कहना कि जब तक आचार्य हरिभद्रसूरि गाँव में विराजते हैं, वे प्रतिदिन उनके दर्शन के लिए जाएँ, उन्हें शान्ति मिलेगी। वैसे मुझे विश्वास है आचार्य स्वयं ही मेरे माता पिता को बोध देंगे। वे अन्तर्ज्ञानी हैं।"

'लेकिन सांडनी लौटा दोगी तो आगे चलोगी कैसे, देवि ! पैदल चलने में तुम्हें कष्ट होगा।"

'अब क्या कष्ट होगा, स्वामी ! आपको पा लिया है, अपना लिया है तो जीवन के सब अभाव भर गए है। नहीं मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। नियति की एक डोर से बँध कर हम आगे चल चलेंगे— जहाँ भी वह ले जाय। जा जहुल देर न कर, माता पिता को चिन्ता होगी।"

'जैसा तुम चाहो देवि ! जहुल, साडनी ले जा।'

साडनी से उतरकर कुमारदेवी और अश्वराज तारों के प्रकाश में भूमि पर खड़े हो गए। आंसू भरी आँखों से मौन विदा लेकर जहुल साडनी को वापस हाँक ले गया। उसके दृष्टि से ओझल हो जाने पर कुमारदेवी ने कहा—

'तो ऐसे सीधे निकले तुम क्या ? कहाँ तो एक दृष्टि तक ऊपर न उठती थी और कहाँ इस प्रकार भरे घर में से एक विधवा का हरण कर लाए ?'

अब वह अशुभ शब्द अपने मुख पर न लाओ कुमार ! अब हमारा

जीवन आकाश के इन नक्षत्रों की साक्षी में मिलकर एक हो गया है। अमर हो यह मिलन !"

"बड़े साधु हो ?"—एक तिरछी निगाह कुमारदेवी ने अश्वराज पर डाली जैसे अन्धकार में सहसा बिजली कौंध उठी हो—"चलो, यह तो हुआ, लेकिन अब जाना कहाँ है ? कहीं ठौर-ठिकाना भी करना है कि अपने आचार्य की तरह खुली दिशाओं में मुक्त विचरण ही करते रहना है ?"

यह कह कर कुमारदेवी मधुर-मधुर हँस पड़ी। उस हँसी में अश्वराज के हृदय का असीम आह्लाद भी मिल गया और उसने उत्तर दिया—

"मैं क्या जानूँ, कहाँ जाना है कहाँ नहीं ? जानें भविष्यवक्ता आचार्य हरिभद्रसूरि या उनकी उपासिका अश्वराज की नियति-नियन्ता श्रेष्ठिपुत्री कुमारदेवी !"

इस उत्तर को सुनकर आकाश के तारे खिलखिला कर हँस पड़े।

***

कुमारदेव के आश्रम तक

प्रेम के अटूट सूत्र मे बँधे हुए अश्वराज और कुमारदेवी चलते-चलते दक्षिण मे सिहालक नामक नगर मे जा पहुँचे और वही रहने लगे। बचपन से ही ऐश्वर्य और वैभव मे पली हुई दडपति श्रेष्ठि आभूशाह की पुत्री ने इतने लम्बे मार्ग मे आने वाले अनेक कष्टो को किस प्रकार सहन कर लिया, यह प्रेम की अद्भुत शक्ति को पहिचानने वाला कोई व्यक्ति ही जान सकता है या बता सकता है। कमल-पत्र के समान कोमल पैरो मे चलते-चलते छाले भी पडे धूप और तीखी ठण्डी हवा ने कभी शरीर को झुलसा दिया और कभी जैसे नश्तर भी चुभाए। भूख और प्यास ने कभी-कभी प्राणो पर भी सकट ला दिया। किन्तु कुमारदेवी के मुँह मे शिकायत का एक स्वर भी सुनाई नही दिया। सारे सकटो का सामना उसने बडी दृढता से एक वीर नारी की तरह किया। अवश्य ही दो परम प्रचड पुरुष रत्नो को जन्म देने वाली नारी के योग्य ही कुमारदेवी का व्यवहार था।

हाँ, उसे अपने माता-पिता की याद प्रायः अवश्य आती और तब कुछ समय के लिए वह उदास हो जाती थी। उसे विचार आता था कि सम्भवतः उन्हें कुमारदेवी के इस प्रकार चले आने से पीड़ा हुई होगी। और जब उसे यह विचार आता तो वह आगे सोचने लगती—क्या मैं अपने माता-पिता से सारी बात कहकर नहीं आ सकती थी? किन्तु हाय, मैं कैसे उनसे कह सकती थी? उनके सामने क्या मेरे मुँह से इस विषय में एक बोल भी फूट सकता था? इस बारे में उनसे कुछ कहते समय क्या मैं लज्जा से भूमि में न गड़ जाती? नहीं, यह तो असम्भव था, चाहे मैं मर जाती, आचार्य का कथन सिद्ध होता अथवा नहीं, किन्तु मैं माता-पिता से इस विषय में तो कदापि कुछ नहीं कह सकती थी·········

लेकिन क्या मेरे स्वामी स्वयं मेरे पिता से इस विषय में बात नहीं कर सकते थे? मान लिया कि मेरे पिता से कहने में वे हिचकिचा सकते थे, लेकिन मेरी माता तो कितनी ममतामयी, कितनी कोमल-मना हैं? वे मेरे स्वामी से भी कितना प्रेम से व्यवहार करती थीं—ठीक जैसे कोई अपने पुत्र या दामाद से करता हो! तब उन्होंने इस प्रकार मेरा हरण क्यों किया? मेरी माता से साफ-साफ क्यों नहीं कहा?

विचारसूत्र इस बिन्दु तक पहुँच जाने पर कुमारदेवी कुछ अनमनी-सी हो जाती किन्तु फिर सूत्र आगे चलता—मगर मेरे स्वामी और कर भी क्या सकते थे? सामाजिक नियम और उन नियमों के बन्धन कभी-कभी बड़े कड़े सिद्ध होते हैं। यह जानते और अनुभव करते हुए भी कि शताब्दियों या पीढ़ियों से चली आती हुई कोई रीति या परंपरा इतनी रूढ़ हो चुकी है कि वह जीवन के वास्तविक स्पर्श से अलग-थलग पड़ गई है, हम उसकी उपेक्षा करने का साहस नहीं बटोर पाते। और इस तरह जीवन घुटता रह जाता है और परम्परा पुष्ट होती चलती है। यह तो कोई संगत बात नहीं है। सामाजिक मर्यादाएँ, या धार्मिक नियम-संयम कुछ भी लीजिए, उनका निर्माण आखिर मनुष्य ने, समाज

ने ही तो किया है ? और इसलिए किया है कि उससे मनुष्य का, समाज का जीवन आगे बढ़े, ऊँचा उठे, सुखी बने, स्वस्थ बने । किन्तु जब कोई भी परम्परा या नियम जीवन के यथार्थ से कटकर जड हो चुकी हो तो उसकी लकीर को पीटते रहना तो कोई विवेक नही है······

मैं विधवा थी । हाँ, यद्यपि मैंने अपने पति का मुख भी कभी नही देखा, किन्तु थी तो मैं विधवा ही । सामाजिक मर्यादा के अनुसार एक विधवा को पुनर्विवाह के लिए प्रस्तुत होकर अपने माता-पिता का कुल छोड़कर चली जाना कितना बडा अपराध है, कितना भीषण पाप है ? लेकिन क्या मैंने सचमुच कोई पाप किया है ?

नही, नही, नहीं । अपने स्वामी के अथाह प्रेम को देखती हूँ तो उसमें डूबकर मैं अपने सारे जीवन की धन्यता, सार्थकता को प्राप्त कर लेती हूँ । एक पल भी क्या उन्हे मेरे बिना चैन पडता है ? मैं जब उनका यह अद्भुत प्रेम पाती हूँ तो मुझे अनुभव होता है कि प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही परमात्मा है । उस परमात्मा को छोडकर अब मैं कौन सी सामाजिक मर्यादा की रक्षा के लिए चिन्तित बनूँ ?

कुछ नही, जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ । ऐसा होना ही था । यही विधान था—मनुष्य जीवन का यही विधान है, मानवता की यही सर्वोत्तम परम्परा है—प्रेम······प्रेम·····प्रेम !

कुमारदेवी के मस्तिष्क मे चलता हुआ विचारसूत्र ढाई अक्षरो के इस छोटे से शब्द 'प्रेम' पर आकर टूट जाता अथवा यह कहा जाय कि वह विचार भृंखला उस सर्वोच्च कडी तक पहुँचकर सम्पूर्ण हो जाती ।

और तब वह मौज मे आ जाती तथा यदि उस समय अश्वराज उसके समीप होते तो वह अपनी प्रेमभरी, चपल चितवन से उन्हे निहारकर कहती—

"निमित्तज्ञानी आचार्य हरिभद्रसूरि के अनन्य, एकनिष्ठ उपासक आर्य अश्वराज को दासी कुमारदेवी का प्रणाम ! आर्यपुत्र ! घर में

आटा-दाल आज सन्ध्या तक के लिए पर्याप्त है, आश्वस्त रहें। रही कल की बात, सो तो……।"

"देवि, कल की चिन्ता करके सामान्य मानवों की तरह दुर्बलता का प्रदर्शन न करें। सेवक अश्वराज अभी जाकर कोई न कोई प्रबन्ध कर लाता है।"

गम्भीरतापूर्वक यह उत्तर देकर अश्वराज उठकर जाने को होता और कुमारदेवी अपनी कोमल बाँहों के घेरे में उसे लेकर हँसती हुई फिर कहती—

"अब लगे भागने, मौका पाकर? इतनी आसानी से छोड़ देने वाली नहीं हूँ, समझ रखना। बैठो अभी, चले जाना, दो जनों का पेट भरने के लिए दुनियाँ भर की चिन्ता क्यों करनी?"

तब अश्वराज बाँह छुड़ाकर जा नहीं पाता। कुमारदेवी का प्रेम उस उद्धत 'अश्वराज' के लिए वह लचीली चाबुक बन गया था जिसने उसके सारे जीवन और गति को नियंत्रित कर दिया था।

× × × ×

समय की धारा बहती रही। एक-एक कर अश्वराज और कुमारदेवी के तीन पुत्र और आठ पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। सबसे बड़ा पुत्र मल्लदेव अत्यन्त शांत और गम्भीर प्रकृति का जीव था और अपने जन्मकाल से ही वह अस्वस्थ रहता था। कुछ बड़ा होकर, छात्रावस्था में ही वह इस असार संसार को छोड़कर विदा हो गया।

दूसरा पुत्र था वस्तुपाल और तीसरा तेजपाल। कहते हैं होनहार बिरवानों के पात चिकने होते हैं और भविष्य दूर से ही दिखाई देने लगता है। उन दोनों बालकों को जिन लोगों ने उनकी बाल्यावस्था में देखा होगा वे लोग इस कहावत के मर्म को पूरी तरह समझ सके होंगे और अवश्य ही वे आश्चर्य में भरकर कह उठते होंगे—"सुनते थे

सतयुग मे भगवान् राम ने अवतार लिया था, लेकिन क्या इस कलियुग मे भी वे फिर से आए हैं ? राम और लक्ष्मण जैसे उन दोनो भाइयो को जन्म देकर किस सौभाग्यवती माता की कुक्षि धन्य हुई है ?"

वस्तुपाल वचपन मे ही अद्भुत प्रतिभा का धनी दिखाई देता था और उसका शान्त वीरत्व उसकी भरी-भरी वाल-देही मे जैसे समाता ही न था। जब वह केवल पाँच-सात वर्ष का ही था तभी से वह अपनी माता की गोद मे बैठा-बैठा सस्कृत के अनेको कवियो के श्लोक याद कर-करके सुनाया करता और कभी-कभी स्वय भी अपनी जोडा-जोडी किया करता। बालक की माता यह सब देखती और उसके स्तनो से सुधा की धाराएँ प्रवाहित हो उठती।

तेजपाल दुर्धर्ष था। किसी के वस का नही था। चार-छह वर्ष का वह बालक दस-पन्द्रह वर्ष के किशोरो को तो गेंद की तरह उछालकर रख देता था। माता के पास उलाहने आते ही रहते और वह वेचारी अडोसी-पडोसियो से दिन भर क्षमा याचना किया करती। कभी-कभी अपने क्रोधी लक्ष्मण को गहरी डाँट लगाती और कहती—

"राम जाने तू कैसा लडका है तेजू ! मै तो तुझसे हैरान हो गई। दिन-भर मार-पीट के अलावा तुझे और कुछ सूझता है क्या ? देख, तेरा भाई वस्तुग तो किसी से लडता झगडता नही, सबमे हिलमिल कर रहता है। तू भी ऐसे क्यो नही रहता भला ?"

तेजपाल खिलखिलाकर हँस पडता और उत्तर देता—

"वडा भाई तो कायर है, कायर, माँ ! यह लडना क्या जाने ?"

और तव वस्तुपाल झुँझलाकर तेजपाल की कलाई पकड लेता और कहता—"नही जानता मैं लडना ? तो ले, दम हो तो छुडाले देखूँ ?"

उफ ! कलाई की वह पकड ! फौलादी शिकजो की जकड भी क्या उतनी कठोर हो सकती थी ? तेजपाल वहुत जोर लगाता, उछलता, कूदता किन्तु वस्तुपाल की पकड़ से छूट पाना उसके लिए असम्भव

होता। तब वह कुछ लज्जित होता हुआ कहता—

"माँ, देख ना, बड़ा भाई तंग करता है। अभी मैंने उसे कुछ कहा था क्या ?"

ममतामयी माँ बालकों की इस निश्छल क्रीड़ा को देखकर निहाल हो जाती। कहती—

"अरे छोड़ दे उसका हाथ वस्तुग ! तू तो बड़ा है, छोटे भाई को हैरान नहीं करते।"

"हैरान मैं करता हूँ कि ये ? गाँवभर के लड़कों को पीटता रहता है तब भी तो यह छोटा रहता है ? अब क्या हो गया ?"

फिर वह अपनी जकड़ तेजपाल की कलाई से हटा लेता। कलाई लाल-नीली पड़ चुकी होती। माँ यह देखती और घबराकर कहती—

"हे भगवान् ! तू भी वस्तुग दीखता तो सीधा है किन्तु है दुष्ट ! बेचारे की कलाई नीली पड़ गई, देख तो ज़रा !"

"तो इससे कहदे माँ कि मुझे आगे कभी कायर न कहे। मुझे यह गाली बिल्कुल पसन्द नहीं। जो मुझे कायर कहेगा मैं उसकी कलाई तो क्या, मुँह तोड़ दूँगा।"

यह था गर्वीले गुजरात का भावी महामात्य वस्तुपाल !

× × × ×

बालक जब तक कुछ और बड़े हुए तब तक अश्वराज ने अपने इस जीवन की अन्तिम श्वास ले ली। कुमारदेवी फिर से विधवा हो गई। लेकिन इस वैधव्य में उसे सहारा था, अपने पुत्रों का।

सिंहालक नगर छोड़कर कुमारदेवी अपने बच्चों के साथ धोलका के समीप मांडल ग्राम (मंडली ग्राम) में आकर रहने लगी। उसने अपने पुत्रों को विद्याध्ययन के लिए किसी उपयुक्त स्थान पर भेजने का निश्चय किया। विचार करते-करते उसे राजगुरु कुमारदेव का आश्रम

ही सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रतीत हुआ। अवश्य ही पाटन में तीनों पुत्रों को पढ़ने के लिए भेजना एक असहाय विधवा के लिए कुछ कठिन कार्य था, किन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा। अपने पुत्रों को उसने कहा—

"बेटा! गुजरात में इस समय राजगुरु कुमारदेव से अधिक ज्ञानी और सुयोग्य कोई आचार्य नहीं! वे शास्त्र तथा शस्त्र सभी विद्याओं में पारगत हैं! तुम उनकी शाला में पढ़ने जाना चाहो तो जा सकते हो! मैं यहाँ तुम्हारी बहिनों की देखभाल कर लूँगी, चिन्ता न करना। लेकिन तुम मन लगाकर आचार्य से सभी विद्याएँ सीखना। तुम तीनों प्रतिभा सम्पन्न हो, थोड़ा-सा परिश्रम करोगे तो देखते-देखते ही सभी विद्याओं को ग्रहण कर लोगे। और देख वस्तुग, तू बड़े भाई मल्लदेव और तेजू दोनों का ध्यान रखना। मल्लदेव का स्वास्थ्य पूरा ठीक नहीं है, लेकिन तू ध्यान रखेगा तो ठीक रहेगा और तेजू, तू भी वहाँ जाकर शरारत नहीं करना भला! बड़े भाइयों की आज्ञा मानना। तुझे पाटन भेजते हुए मुझे डर लगता है ··· ।"

"तू डर मत माँ! मैं सबको देख लूँगा पाटन में······।"

"धत्तेरे की, मैं तेरी इसी तेजी से तो डरती हूँ। अरे बेटा, तू विद्याध्ययन के लिए गुरु की शाला में जा रहा है। वहाँ सबसे मिल-जुलकर रहना। लड़ाई झगड़ा बिल्कुल करना नहीं। तुझे शस्त्रविद्या सीखने का अधिक चाव है तो वही सीखना, लेकिन बेटा, किसी से लड़ना नहीं······ ·· अभी तो तेरी लम्बी उमर पड़ी है—बड़ा होकर गुजरात के शत्रुओं से लड़कर उन्हें तू बताना कि वीरता किसे कहते हैं। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करती बैठी हूँ। अभी तो तू चुपचाप अपने ज्ञान और योग्यता को बढ़ा। समझा न?"

"समझ गया माँ! तू चिन्ता न कर, मैं बेमतलब किसी से नहीं लड़ूँगा! और फिर बड़ा भाई तो रहेगा मुझे सम्हालने को ··· ।"

"सो तो रहूँगा ही", वस्तुपाल ने कहा, "मगर तू ऐसी नौबत ही क्या आने दे कि मुझे सम्हालना पड़े?"

"हाँ बेटा, यह ठीक है। अब तुम कोई छोटे बच्चे तो हो नहीं। सब बातों का ध्यान रखना और दोनों भाई अपने सबसे बड़े भाई का खूब-खूब ध्यान रखना भला ! भूलना नहीं।"

"माँ तू ज़रा भी चिन्ता न कर", वस्तुपाल ने गंभीरता से कहा—"हम तीनों जल्दी ही पढ़-लिखकर तेरे पास लौट आएँगे।"

"ठीक है, तो अब अपनी तैयारी कर लो। मैं तब तक राजगुरु को पत्र लिख देती हूँ।"

कुमारदेवी ने राजगुरु को पत्र लिखा—

पूज्य आचार्य,

कुमारदेवी का प्रणाम स्वीकार करें।

अपने तीनों बालकों को आपकी पुनीत सेवा में भेज रही हूँ। उन्हें कुछ ज्ञान-दान देने की कृपा करें। आपकी कृपा होगी तो इन अबोध बालकों में ज्ञान की ज्योति जाग जाएगी। आचार्य प्रवर, मल्लदेव कुछ अस्वस्थ रहता है उसके स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखें। वस्तुपाल की मुझे चिन्ता नहीं है। हाँ, मेरा तेजू जरा चपल है। कभी कोई धृष्टता कर ही बैठे तो मुझ अभागिन विधवा की ओर देखकर ही उसे क्षमा करदें।

—कुमारदेवी।

माँ का पत्र तथा सहस्र-सहस्र आशीर्वाद लेकर तीनों भाई पाटन की दिशा में चल पड़े।

× × × ×

मार्ग में इन तीनों बालकों को एक स्थान पर एक सांडनी सवार मिल गया। उसके वस्त्र राजसी थे, चेहरा रौबीला, मूँछें बिखरी और कड़ी तथा दाढ़ी घुँघराली और खिचड़ी रंग की। गुजरात में इस व्यक्ति को सभी जानते थे, किन्तु उन बालकों को यह ज्ञान कैसे होता कि वह कौन है ?

सांडनी-सवार जब उन बालकों के बिल्कुल समीप आ गया तब उसने सांडनी-वाहक को आदेश दिया—

"ज़रा धीरे चल, जेहुल ! इन बालकों से बात करूँगा।"

सांडनी एकदम धीमी पड़ गई। पैदल चलते हुए बालकों के साथ वह चलने लगी। सांडनी-सवार ने इन बालकों से पूछा—

"कौन हो भाई तुम लोग ? कहाँ जा रहे हो ?"

"नमस्कार ! राजगुरु कुमारदेव के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए पाटन जा रहे हैं—हम तीनों भाई। और आपका परिचय ?"—वस्तुपाल ने प्रश्न का उत्तर दिया और प्रति-प्रश्न पूछा।

सांडनी-सवार बालक की शिष्टता तथा कुशलता से कुछ प्रभावित हुआ और उसने कहा—

"मेरा नाम तो लवणप्रसाद है भाई ! धोलका में रहता हूँ। पाटन जा रहा हूँ मैं भी।"

"जी !"—वस्तुपाल ने कहा।

लवणप्रसाद ने फिर पूछा—"तुम किसके पुत्र हो ? तुम्हारी माता का नाम क्या है ?"

"पिताजी स्वर्गस्थ हो चुके। माता का नाम कुमारदेवी है।"

"कुमारदेवी ? तो क्या तुम अश्वराज मंत्री के पुत्र हो ?"

"जी हाँ, है"—इस बार चपल तेजपाल बीच में ही बोल पड़ा—"लेकिन आपको मतलब ?"

लवणप्रसाद सुनकर हँस पड़ा—बालक दोनों तेज मालूम होते हैं। पहला धीर-गम्भीर है, शिष्ट है, पर यह दूसरा ज़रा टेढ़ा लगता है। ज़रा देखूँ तो अश्वराज और कुमारदेवी के पुत्रों की धार को—यह सोचकर उसने हँसते-हँसते ही कहा—

"तो तुम जैन हो ? जैनी तो अहिंसक होते हैं। राजगुरु की पाठशाला में काव्यशास्त्र और दूसरा साहित्य पढ़ने जा रहे होंगे। ठीक

है, ठीक है। देखना भला, कुमारदेव शस्त्रों का संचालन भी सिखाते हैं—तलवार है, भाला है, धनुष-कटारी है, मुदगर-पटा है—यह सब चलाना सीख मत लेना। पाप लगेगा।"

"क्यों ? पाप क्यों लगेगा ? शस्त्रों का उपयोग सीखना तो कोई बुरी बात नहीं है लवणप्रसादजी ! आजकल के ज़माने में यह बहुत ज़रूरी है। आप तो बड़े हैं, देख नहीं रहे हैं गुजरात की हालत......?"

वस्तुपाल यह उत्तर दे रहा था और लवणप्रसाद का हृदय इस उत्तर को सुनकर भीतर ही भीतर आनन्द से भर रहा था—तो क्या जो कुछ मैंने सुना है वह सच है ? इन बालकों के लिए सूरिजी ने जो भविष्यवाणी की थी वह क्या सचमुच खरी उतरेगी ? ओ मेरे महारुद्र ! इन बालकों की रक्षा करना ! ये बालक गुजरात की थाती हैं ऐसा लगता है।

प्रगट में उन्होंने कहा—

"बालको ! गुजरात की बात क्या करते हो, अभी बच्चे हो। लेकिन तुम्हें अपना धर्म तो नहीं छोड़ना चाहिए न !"

"आपके पास समय हो तो कृपया धर्म किसे कहते हैं सो बता दीजिए न !" वस्तुपाल ने विनयपूर्वक कहा—"हमारी माता ने जिस धर्म की हमें शिक्षा दी है वह तो यही कहता है कि देश के शत्रुओं का समूल नाश करना ही हमारा परम धर्म है। गुजरात ही हमारी वास्तविक माता है, उस माता का ऋण जो हम पर है वह केवल काव्यशास्त्र के अध्ययन से पूरा चुकने का नहीं लवणप्रसाद जी !"

सुनकर लवणप्रसाद मज़े में आ गए। जेहुल को अपनी तलवार से टोंचकर बोले—"सुनता है जेहुल ! इस बालक की बात सुनता है तू ?"

"सुन रहा हूँ बापू ! सब सुन रहा हूँ। वर्षों-पूर्व एक दिन इनके पिता और माता को मैं ही अपनी साँडनी पर बैठाकर ले गया था। आज मुझे वह दिन याद आ रहा है। मैं इनके माता और पिता दोनों

को अच्छी तरह जानता हूँ, राणा !"

राणा ! धोलके रहता है—तो क्या ये धोलके के राणा लवणप्रसाद हैं ? जिनके नाम से गुजरात काँपता है ?—वस्तुपाल और तेजपाल ने सोचा। और तब तेजपाल मे कुछ अधिक तेजी आ गई। जेहुल की ओर देखता हुआ वह बोला—

"तू जानता है हमारे माता-पिता को तो अच्छी बात है। लेकिन तेरे स्वामी नही जानते हैं तो उन्हे भी अच्छी तरह बता देना और कह देना कि हमे बालक समझकर हमारी हँसी करने की जरूरत नही है........।"

"तू चुप तो रह तेजू !" वस्तुपाल ने उसे धीमे से डाँटा, "भला क्या कहा है हमे राणा ने, जो तू चिढ रहा है ? क्या कोई भला आदमी बात भी नही करेगा किसी से ?"

"बात करने का भी कोई तरीका होता है बडे भैया ......।"

राणा लवणप्रसाद को मजा आ रहा था। उनकी आँखों के सामने गुजरात की सँवरती हुई तस्वीर जैसे खिची जा रही थी—गुजरात को इन्ही बालको की आवश्यकता है। उन्होंने तेजपाल की बात काटते हुए वस्तुपाल से कहा—

"यह तुम्हारा छोटा भाई मालूम होता है। लडाका दिखाई देता है। क्या नाम है तुम्हारा और इसका ?"

"मैं हूँ वस्तुपाल और यह है तेजपाल। और वे जो थोडा पीछे रह गए वे हम दोनो के बडे भाई मल्लदेव। कुछ अस्वस्थ हैं।"

"ओह ! तब तुम लोग पैदल क्यो जा रहे हो ? इतनी दूर पाटन तक जाने मे थक नही जाओगे ? मैं तुम्हारे लिए घोडो का इन्तजाम कर देता हूँ......।"

"जी नहीं, पाटन क्या कोई दूर है। आप चिन्ता न करें। हम लोग वहा शीघ्र पहुँच जाएँगे।"

"हाँ, हा, हमे किसी के घोड़े नहीं चाहिए बडे भैया ! हमारी

हँसी करते हैं और फिर घोड़ों का इन्तजाम करने के लिए कहते हैं ? हमें नहीं चाहिए इनके घोड़े !"—तेजपाल ने उसी तेजी से कहा।"

"इसकी बात का खयाल न करें, राणा ! किन्तु सचमुच हमें घोड़ों की आवश्यकता नहीं। हम पैदल चल सकते हैं। घोड़े हम खरीदेंगे अवश्य लेकिन जब समर्थ होंगे।"

कैसा विनयी और कैसा मानी ! कितना सरल और कितना दृढ़ !—यह वस्तुपाल अवश्य ही गुजरात के काम आएगा। और यह तूफान की पुड़िया तेजपाल ? यह भी काम का दीखता है। अरे, यह तो ठीक मेरे जैसा अक्खड़। अब तक एक मैं ही था अब यह दूसरा तैयार हो रहा है—बदन उभार पर है, मसें भीग चली हैं और भुजाओं में बल हो गया लगता तो है। आगे जाकर खरा उतरे तो इसे पाटन का सैन्य सौंपा जा सकता है।

लवणप्रसाद ने मन ही मन कुछ हिसाब-किताब किया और फिर कहा—

"अच्छा वस्तुपाल, तुम लोग नहीं मानते तो जैसी तुम्हारी इच्छा, लेकिन अपने भाई से कहो कि रास्ते चलते लोगों से छेड़-छाड़ नहीं किया करे।"

"बड़े भैया ! धोलका के राणा हों या कोई, उनसे कह दो कि तेजपाल का रास्ता रोककर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं।"—तेजपाल के हाथ में रास्ते में किसी वृक्ष की शाखा से तोड़ी हुई एक पतली किन्तु मजबूत बेंत थी। उसने वह बेंत उठाकर 'सड़' से साँडनी की पिछली टांगों में फटकार दी। साँडनी यह अप्रत्याशित चोट खाकर उछलकर दस गज आगे जा कूदी।

वस्तुपाल ने झपटकर तेजपाल का बेंत वाला हाथ मजबूती से पकड़ लिया और कहा—"क्या करता है तेजू ? खबरदार !"

भाई की डांट खाकर तेजपाल साँडनी को दूसरी बेंत जमाने के

लिए आगे बढ़ता-बढ़ता रुक गया। वस्तुपाल ने राणा लवणप्रसाद की ओर देखकर कहा—

"क्षमा करें, राणा! तेजू जरा उद्धत है। किन्तु मन से वह बिल्कुल साफ है। उसकी समझ में भूल हुई होगी......।"

राणा लवणप्रसाद की मूँछें मुस्कराने के कारण उनके चेहरे पर ऐसी फरफरा रही थीं जैसे सेही अपने काँटे फरफरा रही हो। अपने स्वर को जितना सम्भव था उतना कोमल बनाकर उन्होंने कहा—

"तेजपाल! तुम सचमुच तेजपाल हो। अच्छा, अब चलता हूँ, फिर शीघ्र मिलेंगे। चल, जेठुल, साँडनी हाँक।"

"हाँ, हाँ, आ जाना जब इच्छा हो"—तेजपाल कहता रह गया और साँडनी हवा हो गई।

× × × ×

मल्लदेव को साथ लेकर दोनों भाई आगे बढ़े। ठण्डी हवा का एक झोंका आया। वस्तुपाल ने मल्लदेव का शरीर ठीक से ढक दिया। पास ही सरस्वती नदी का तीर था। उधर से ही किनारे के घने वृक्षों में से छनकर हवा के झोंके आ रहे थे। जल-पक्षियों का मन्द कलरव कुछ दूर से ही सुनाई दे रहा था।

चलते-चलते बालक कुछ थक भी गए थे। अपनी तरल गोद में लेकर बालकों की थकान दूर करने के लिए सरस्वती माता अपना आँचल फैलाए बैठी थी। पक्षियों के कलरव के साथ नीले, स्वच्छ और मधुर जल का कलरव भी मिल गया था और एक नैसर्गिक संगीत की सृष्टि कर रहा था। सूर्य की किरणें उस संगीत की लय पर स्वर्ग की कोई सम्मोहक रागिनी-सी छेड़ती प्रतीत होती थीं।

बालकों ने तीर पर पहुँचकर अपनी थकान मिटाई। तेजपाल तुरत अपने वस्त्र उतारकर पानी में कूद पड़ा और खूब देर तक नदी के इस

किनारे से उस किनारे तक तैरता रहा। जब वह बाहर निकल आया और अपने वस्त्र पहन चुका तो तीनों भाइयों ने मिलकर कलेवा किया। कुमारदेवी ने मार्ग में खाने के लिए उनके साथ कुछ पेड़े और थेपले बाँध दिए थे। भरपेट जब तीनों खा चुके तब पानी पीकर वस्तुपाल ने पोटली बाँधकर अपनी झोली में रखली और चमकती हुई गर्म रेत में वह आराम से लेट गया। देखकर तेजपाल बोला—

"बड़े भैया ! आप तो ऐसे लेट गए जैसे यहीं डेरा डालना हो। अभी पाटन तो बड़ी दूर है। चलना नहीं है क्या ?"

"नहीं चलना है।"

"कमाल है ?" तेजपाल इस उत्तर से आश्चर्य में डूब गया— "नहीं क्यों चलना है ? रात पड़ गई तो यहाँ तो आश्रय लेने के लिए कोई स्थान भी नहीं है।"

"नहीं है तो मैं क्या करूँ ? किन्तु मुझे आगे नहीं चलना।"

"लेकिन क्यों ?"—तेजपाल ने पूछा। मल्लदेव भी वस्तुपाल के इस व्यवहार से आश्चर्य में पड़ा उसे चुपचाप देख रहा था।

"देख तेजू ! तुझे जाना हो जहाँ जा। मैं तो बड़े भाई को लेकर वापिस माँ के पास लौट जाता हूँ।"

वस्तुपाल की यह बात सुनकर तेजपाल कुछ-कुछ समझ गया कि बड़ा भाई क्यों ऐसा कह रहा था किन्तु पूरी तरह नहीं। अतः कुछ देर तक वह बड़ी करुण-सी मुद्रा बनाकर वस्तुपाल की ओर देखता रहा। वस्तुपाल ने तब कहा—

"तेजू ! बात यह है कि तू ठहरा लड़ाका। बिना लड़े-भिड़े तुझे घड़ी भर चैन नहीं। अब तू ही बता कि यदि पाटन पहुँचकर भी तेरी यही आदत बनी रही तो भला मैं किस-किस को मनाता रहूँगा ? यह तो राणा लवणप्रसाद थे, वीर पुरुष प्रतीत होते हैं, इसलिए सब्र कर गए। कोई और होता तो क्या तेरी शैतानियों को चुपचाप सहन करता ?"

तेजपाल अब ठीक-ठीक समझ गया कि बड़ा भाई रुष्ट हो गया है। अतः उदास मन से वस्तुपाल के पैर पकड़कर वह बोला—

"भैया ! माफ कर दो, अब ऐसा नहीं करूँगा। अब खूब ध्यान रखूँगा और खूब सब्र करूँगा। लेकिन इतना कहे देता हूँ कि राणा लवणप्रसाद हो कि कोई और, यदि कोई मुझे छेड़ेगा तो मैं सहन करने वाला नहीं ......।"

वस्तुपाल हँस पड़ा। प्रेमपूर्वक भाई के हाथ अपने पैरों से अलग करते हुए उसने कहा—

"तेजू ! मेरे पैर छोड़। तू तो जैसे जलता हुआ अंगारा है। लेकिन भैया ! इस समय अपन विद्या सीखने जा रहे हैं। इस समय अपना कर्तव्य केवल पूरा मन लगाकर विद्याध्ययन करना है। संसार की शेष तमाम बातों से अपने मन को हटाकर, सब कुछ भुला कर हमें गुरुदेव जो शिक्षा दें उसे ग्रहण करना चाहिए। और किसी बात में हमें अपने इस अध्ययन काल में मतलब नहीं रखना चाहिए। यदि इस समय हमने अपना कर्त्तव्य पूर्ण किया तभी हम आगे जाकर अपने बड़े-बड़े कर्त्तव्यों को पूरा करने की शक्ति जुटा सकेंगे, उसके योग्य बन सकेंगे। तेजू ! कोई भी सिद्धि तपस्या के बगैर प्राप्त नहीं होती। तुझे गुजरात की सेवा करनी है न ? बिना सिद्ध हुए कैसे वह सेवा कर सकेगा ? और सिद्ध बनने से पूर्व उसके लिए साधना तो करनी पड़ेगी न !

"—इसीलिए मैं कहता हूँ तेजू ! अपना ध्यान और शक्ति इस इस समय विद्यार्जन में ही लगाना है। कुछ समय में जब शक्ति हमें सिद्ध हो जायगी तब हम उन सबको देख लेंगे जो गुजरात के शत्रु हैं—भरोसा रख, तेजू, हम एक-एक को देखेंगे और सबको देख लेंगे। तू इतनी उतावली क्यों करता है ?"

यह कहते समय वस्तुपाल की आँखों की जन्म-जात चमक रहस्यपूर्ण-सी हो गई थी और वह ऐसा दीखने लगा था जैसे दस-पन्द्रह

वर्ष का कोई बालक न होकर कोई वयोवृद्ध ज्ञानी पुरुष हो। वह तेजपाल पर से अपनी दृष्टि हटाकर अब सरस्वती के परले तीर के पार उत्तर दिशा में शून्य की ओर जाने क्या तो देखने लगा था!

मल्लदेव ने कहा—

"भैया, चलो अब रहने दो, तेजू को बहुत डांट तुमने बतादी। वह तो यूं ही हंसी किया करता है। अब चलना चाहिए, देर हो रही है।"

"हां भैया, उठो अब, तुमने ठीक कहा है और जो कहा है सो ही होगा। पढ़ने-लिखने और शस्त्र-विद्या सीखने के अलावा और किसी भी तरफ ध्यान नहीं दूंगा। लेकिन मैं कहे देता हूं भैया, कि चाहे…"

"चाहे राणा लवणप्रसाद हो कि कोई और तेजपाल किसी का ताबेदार नहीं है कि चुपचाप अपनी हंसी उड़ाई जाती हुई देख सके, यों? यही कहना चाहता है न तेजू! सुन लिया मैंने, अब चल भाया उठ। तू किसी के वश का है नहीं तो मेरे ही वश में क्या आयगा?"

हंसते-हंसते वस्तुपाल ने यह कहा और शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ। मल्लदेव और तेजपाल भी हंसते-हंसते वस्तुपाल के पीछे चल पड़े। पानी पीने, सुस्ताने के लिए वे मार्ग से हटकर नीचे नदी के सूखे, रेतीले पट पर उतर आए थे। अब वे फिर से मार्ग पकड़ने के लिए नदी के कगार पर चढ़ रहे थे। ऊंची सकड़ी पगडंडी से सावधानी से चढ़ने लगे।

अभी कुछ ऊपर ही चढ़े थे कि मल्लदेव का पैर फिसल गया। वह लुढ़ककर गिरने को हुआ किन्तु पीछे आते हुए तेजपाल ने फुर्ती से बांह पकड़कर उसे थाम लिया। इसी थाम से उसे अपनी बहन याद आ गई जिसे [illegible] ही भूल आया था। सो [illegible] वस्तुपाल को मल्लदेव [illegible] हुए कहा—

"[illegible] भैया! मैं अपनी बहन को [illegible] ही भूल आया। [illegible]।"

"हाँ, हाँ, जा ले आ तेरी बेंत। बेंत लिए बिना तेजपाल चलेगा भला ? खाली हाथ मे तो उसे खुजली आती है। जा जल्दी, लेकिन सम्हल के, गली रपटनी है।"

"यह आया मैं।"—वस्तुपाल की बात का सक्षिप्त उत्तर देकर तेजपाल पीछे मुडकर दौड गया।"

× × × ×

दूर से ही पाटन की गगनचुम्बी अट्टालिकाओ के शिखरो पर फहराते हुए ध्वज दिखाई पडने लगे। सबसे ऊँचा राजप्रासाद तो इतना विशाल था कि उसे देखकर बालको को वडा विस्मय हो रहा था—तो पाटन इतना बडा है ? इसमे कितने लोग रहते होगे ? इतने सारे लोगो के लिए खाने-पीने की चीजें कहाँ से आती होगी ? पाटन मे भी क्या माडल मे है वैसे बडे-बडे खेत होगे ? और इतने बडे शहर मे वे राजगुरु कुमारदेव का आश्रम कैसे खोजेंगे ? खोजते-खोजते ही रात पड गई तो वे रात कहाँ बिताएँगे ? लेकिन गुजरात के राजगुरु को पाटन मे कौन नही जानता होगा ? किसी से भी पूछ लेगे, झट बता देगा।

यही सब सोचते-सोचते तीनो भाई पाटन मे प्रविष्ट होने के लिए उसके दक्षिण द्वार पर जा पहुँचे। सैकडो लोग बाहर-भीतर आ-जा रहे थे—पैदल, घुडसवार, कभी कोई रथ, साँडनियाँ, सिर पर बोझा रखे मजदूर, स्त्रियाँ, बच्चे, पुरुष—अलग-अलग रग के अलग-अलग वेश ! द्वार पर रक्षक भी थे जो अपनी चौकी मे आराम से बैठे इस समय चिलम-हुक्का फूँक रहे थे।

विशाल और ऊँचे द्वार मे अभी बालको ने प्रवेश नही किया था कि लगभग उन्ही की उम्र का एक बालक जो किसी आश्रम मे पढने वाला ब्रह्मचारी दिखाई देता था दौडकर उन तीनो भाइयो के समीप आया और बडे उत्साह से, बडी प्रसन्नता से बोला—

"वस्तुपाल-तेजपाल तुम्हीं हो न ? पिताजी ने मुझे तुम्हें लेने भेजा है।"

"हाँ, हैं तो हमीं। लेकिन भाई, तुम कौन हो और किसने तुम्हें हमें लेने भेजा है ? हमें तो यहाँ कोई जानता नहीं। पहली बार पाटन आए हैं। राजगुरु कुमारदेव के आश्रम में हमें विद्याध्ययन के लिए जाना है।"—वस्तुपाल ने उत्तर दिया।

"वे ही तो मेरे पिता हैं। मैं सोमेश्वर हूँ, उनका पुत्र। पिताजी ने कहा है वस्तुपाल तेजपाल आ रहे हैं, जा वत्स, उन्हें द्वार तक जाकर ले आ। मैं घण्टों से यहाँ बैठा-बैठा तुम्हारी राह देख रहा था।"

"यह तो तुम्हारी बड़ी कृपा है, सोमेश्वर, तुम्हें कष्ट हुआ, क्षमा करना। लेकिन पिताजी ने तुम्हें यहाँ क्यों भेजा, हम पूछते-पूछते चले आते। और उन्हें मालूम कैसे हुआ कि हम आ रहे हैं उनकी सेवा में ?"

"बापू ने बताया था। वे आज दोपहर ही धोलका से पाटन आए थे। वे तुम्हें मार्ग में मिले थे न--नहीं जानते राणा लवणप्रसाद को ?"

"हाँ, वे तो हमें मिले थे। अच्छा, तो उन्होंने गुरुदेव को कह दिया होगा। यह तो बड़ा अच्छा हुआ, वरना हमें भटकना पड़ता इधर-उधर। किन्तु तुम्हें बहुत कष्ट हुआ सोमेश्वर !"

"अरे कहते क्या हो ? ब्राह्मण पुत्र हूँ, कष्ट क्या होता है यह तो सोमेश्वर ब्राह्मण जानता ही नहीं। कुमारदेव का पुत्र हूँ, इतने से कष्ट से डरूँगा भला ! मैं तो एक बार तुम्हारी राह देखते-देखते थक गया तो बड़ी दूर तक इस मार्ग पर आगे बढ़कर भी देख आया, किन्तु तुम लोग दिखे ही नहीं तो हारकर फिर यहीं आ बैठा था। अब आए तुम। रास्ते में कहीं ठहर गए थे क्या ?"

"कुछ देर सरस्वती के तीर पर विश्राम और कलेवा के लिए ठहरे थे। फिर धीरे-धीरे चले आए। बड़े भैया कुछ अस्वस्थ रहते हैं न ! इसलिए जल्दी-जल्दी नहीं चल सके।"

"अरे हाँ, प्रणाम बडे भैया ! बापू ने यह भी बताया था और पिताजी से कहा था कि तुम लोगो का खूब ध्यान रखें—भला बताओ, यह भी कोई कहने की बात है ? मेरे पिताजी किसका ध्यान नही रखते ? उनके आश्रम मे आने के बाद भी क्या कोई कष्ट हो सकता है ? लेकिन बापू भी ऐसे हैं कि सबकी चिन्ता मे मरे जाते हैं।—लेकिन बडे भैया तो खैर अस्वस्थ है, पर इन छोटे भैया को क्या हुआ है ; मुँह सी रखा है क्या ?"

निकट था कि तेजपाल कोई कडवा उत्तर देता किन्तु वस्तुपाल ने हँसते हुए झट से कहा—

"भाई सोमेश्वर, छोटे भैया तेजपाल ने प्रतिज्ञा की है कि वे पाटन पहुँचकर अधिकाश समय मौन धारण करके रहेंगे……।"

"मौन मे बडी शक्ति है। पिताजी कहते है कि मौन अपने आप मे ही एक तपस्या है। यह तो बडी अच्छी बात है, लेकिन ऐसा भी क्या मौन ? मैं तो भाई मौन रख नही सकता। कुछ देर बोलूँ नही तो जिह्वा ऐठने-सी लगती है। मन व्याकुल-सा होने लगता है। ससार असार-सा प्रतीत होने लगता है……।"

सोमेश्वर को कुछ देर यदि बात करने, बोलने को न मिले तो उसे कैसा-कैसा लगता है यह वह जब बताने लगा तो तेजपाल को भी हँसी आ गई। मन ही मन उसने सोचा—लडका अच्छा है। सरल है, आनन्दजीवी है—इससे पटेगी। यह विचार करता हुआ वह बोला—

"सोमेश्वर पडित ! नमस्कार ! पिताजी राह देखते होंगे……।"

"अरे हाँ, पिताजी राह देखते बैठे होंगे। उन्हाने कहा भी था—'वत्स ! तीनों भाइयों को लेकर शीघ्र ही आश्रम मे चले आना, कही गपशप मे विलम्ब न कर देना। मैं तो भूल ही गया था……बाप रे, तेजपाल जी, भाई तुम भी आदमी एक ही हो, इतनी देर बाद बोले लेकिन बडे काम की बात बोले। मैं तो ऐसा हूँ कि बात करने लगता हूँ तो फिर सब कुछ भूल जाता हूँ। अब देखो न, इतनी देर से खडा-खडा

तुमसे बात कर रहा हूँ तो मुझे कुछ होश ही नहीं कि आश्रम भी पहुँचना है, पिताजी राह देखते बैठे होंगे। यदि हमने वहाँ पहुँचने में विलम्ब कर दिया तो पिताजी सारा दोष मुझे ही देंगे। देख लेना तुम लोग, कोई यह नहीं जानेगा कि मार्ग में विलम्ब मैंने नहीं किया, आप ही लोगों ने किया है। किन्तु बदनामी का सेहरा तो सोमेश्वर ब्राह्मण के सिर ही बँधेगा। सब कहेंगे कि वह गप्पों में ऐसा उलझ गया होगा कि उसी ने आने में देर कर दी........।"

"अच्छा सोमेश्वर पंडित, अँधेरा होने लगा है, चलो अब शीघ्र चले चलें। कहो किस मार्ग से चलना है हमें ?"

"पहले तो नगर-द्वार में प्रविष्ट होना है। फिर दायीं ओर मुड़कर सीधे चलते चलना है। फिर चलते-चलते जब एक वटवृक्ष के समीप पहुँचें तब वहाँ मार्ग पर ही बना हुआ एक छोटा-सा महादेव का मंदिर और चबूतरा मिलेगा। वहाँ से पुनः दायीं ओर मुड़ना है। बस थोड़ी ही दूर जाकर बायीं ओर मुड़ जाने पर पहले एक कुआँ पड़ेगा। लोग उसे अन्धा कुआँ कहते हैं। उसमें जल नहीं है। जल था, लेकिन फिर सूख गया। इसलिए उसे आजकल पाटन वाले अन्धा कुआँ ही कहते हैं। वहाँ से सहस्त्रलिंग का तीर अधिक दूर नहीं है। सीधा खड़ा होकर देखने पर वटुकेश्वर महादेव के शिवालय का फहराता हुआ ध्वज दिखाई पड़ने लगता है। बस आगे बढ़कर........।"

"तो बढ़ा जाय अब आगे ?"

"अरे हाँ, भाई वस्तुपाल, तुम नीतिज्ञ प्रतीत होते हो। मैं तो विवेचना में ही उलझा रह जाता हूँ। अब यही देखो न, मार्ग के विश्लेषण-विवेचना से क्या मार्ग कट जायगा ? कदापि नहीं, पिताजी कहते हैं कि वत्स ! कर्म करो, कर्म करो, कर्म करो। कर्म से विहीन कोरा ज्ञान व्यर्थ का बोझ है। व्यर्थ का बोझ तो अज्ञानी गर्दभ भी ढोता है, उससे क्या लाभ ?—पिताजी ठीक ही कहते हैं। चलो-चलो, शीघ्र चलो, कर्म करो, कर्म करो। भाई वस्तुपाल, यहाँ से वटुकेश्वर

के शिवालय तक का मार्ग भी बिना कर्म किए पार नहीं होता—जीवन की कैसी विडम्बना है ?

सोमेश्वर भाई, आज तुम बहुत थक गए लगते हो। दिन भर से हमारी प्रतीक्षा में दौड़ धूप करते रहे हो न ! चलो, तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर पहुंचा दूँ।

'शिव, शिव ! कहते क्या हो ? अतिथि होकर मेरी सेवा करोगे ? और पिताजी को ज्ञात हो गया तो वे मेरा भोजन बन्द कर देंगे—तब तुम क्या करोगे ? तब तो कोई मार्ग नहीं बचेगा। जिस प्रकार स्वयं कर्म किए बिना जीव की मुक्ति नहीं है, उसी प्रकार स्वयं भोजन किए बिना मनुष्य का पेट नहीं भर सकता। नहीं भाई, मैं तो चला चलूँगा। मगर तुम लोग चलो तो सही।

तो चलो न पण्डित ! विलम्ब क्या ? शुभ कार्य में विचार क्या करना ?'

तेजपाल ने यह कहा और प्रेम से सोमेश्वर की बाँह पकड़कर उसे द्वार की ओर मोड़ दिया। वे चारों द्वार में प्रविष्ट हो गए।

आश्रम तक के मार्ग पर सोमेश्वर तीनों नवागन्तुकों का पाटन के विषय में तरह-तरह की बातें बताता रहा। उसकी रसमयी वाणी सुनते-सुनते और नई-नई वस्तुएँ देखते देखते वे कब शिवालय तक पहुंच गए यह पता भी न चला। आश्रम के आँगन में अपनी अपनी कुटिया से बाहर निकलकर अन्य बहुत से ब्रह्मचारी अपने नए अतिथि भाइयों को देखने लगे और स्वागत के शब्द कहने लगे। किन्तु सोमेश्वर सबको एक ओर हटाकर उन्हें सबसे पहले आश्रम के अधिष्ठाता, अपने पिता कुमारदेव की कुटिया में ले गया। वे उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।

तीनों भाइयों ने अपने गुरुदेव की भव्य मुखाकृति को देखा और श्रद्धा से विनत होकर उन्होंने उनके चरणों में प्रणाम किया। कुमारदेव ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—

यशस्वी बनो मेरे पुत्रो ? ज्ञानवान, गुणवान, तेजस्वी बनो।

किन्तु तुम लोगों को आने में बड़ा विलम्ब हुआ········?"

"सो ही तो मैं कहने वाला था, पिताजी ! विलम्ब इन्हीं लोगों ने किया है। मार्ग में ये कहीं ठहर गए थे, कहीं क्या, सरस्वती के तीर पर ठहरे थे। मैंने तो इन्हें बहुत देर तक समझाया कि मार्ग में विलम्ब करना ठीक नहीं है। पिताजी प्रतीक्षा कर रहे होंगे—आप हँस क्यों रहे हैं पिताजी ! आपको विश्वास न हो तो इन्हीं से पूछ लीजिए कि ये सरस्वती के तीर पर ठहरे थे कि नहीं ? अब उसके लिए मैं क्या करूँ ? मैंने तो इन्हें देखते ही कहा कि········ ···।"

"मैं सब समझ गया, वत्स ! अब तू अपनी सफाई रहने दे। जा, ये लोग थके हुए होंगे। इनके हाथ-पैर धुला, कुछ फल-वल इन्हें खाने के लिए दे। फिर आरती का समय हुआ जाता है। आज की आरती में ये लोग भी सम्मिलित हो सकेंगे। इनकी कुटिया तूने झाड़-बुहार कर तैयार तो कर दी थी न ?"

"सब तैयार है पिताजी ! मैं स्वयं अपने हाथों से यह कार्य करके फिर ही इन्हें लेने गया था। आपने आदेश दिया था न ! सो मैंने अपना कर्त्तव्य पूर्ण किया है। आप देख लीजिए कर्म ही प्रमुख है········।"

"तब जा, सोमेश्वर, इन्हें अपनी कुटिया बतादे और शीघ्र आरती में सम्मिलित होने के लिए तैयार कर दे। मल्लदेव, तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है ? इतनी दूर पैदल क्यों आए ? राणा ने मुझे बताया था। घोड़े ले क्यों नहीं लिए ?"

"मैं ठीक हूँ, गुरुदेव ! धीरे-धीरे हम लोग चले आए। विशेष कोई कष्ट नहीं हुआ। भैया वस्तुपाल और तेजपाल तो साथ में थे ही।"

"अच्छा-अच्छा। अब जाओ थोड़ा विश्राम करलो। कुछ फलाहार कर लो। तो तुम वस्तुपाल और तुम तेजपाल हो। बहुत अच्छा, बड़ा आनन्द है। जाओ, विश्राम करो।"

वस्तुपाल ने अपनी बंडी की जेब में से कुमारदेवी का पत्र निकालकर कुमारदेव के हाथ में देते हुए कहा—

"गुरुदेव ! हमारी माता ने यह पत्र पूज्यपाद के चरणों में प्रेषित किया है।"

कुमारदेव ने पत्र लेकर पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उनके धूमिल नेत्रों में कुछ और वाष्प एकत्रित हो गया और वे डबडबा आए। कंठ भी कुछ भीग-सा गया। संक्षिप्त शब्द उन्होंने कहे—

"पुत्रो ! तुम लोग यहाँ जैसे सोमेश्वर है वैसे ही रहना। तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, कोई चिन्ता करने की भी तुम्हें आवश्यकता नहीं। तुम्हारी माता को मैं कल सब सूचना भेज दूँगा।"

इसके बाद सोमेश्वर के साथ तीनों अपनी कुटिया की ओर चले गए।

राजगुरु कुमारदेव ने एक बार कुमारदेवी के पत्र को फिर से पढ़ा। उनकी सूक्ष्मदर्शी आँखों के आगे वस्तुपाल और तेजपाल के प्रतिभाशाली चेहरे नाचने-से लगे। वे सोच रहे थे—कुमारदेव, तेरे ज्ञान, तेरे अनुभव, तेरे जीवन की समस्त साधना के सार्थक होने का समय आ गया लगता है। इन दोनों बालकों को यदि गुजरात की सेवा करने वाले सच्चे सपूत तू बना सके तो तेरे इस जीवन की सिद्धि तुझे प्राप्त हो जाएगी।

× × × ×

राजगुरु कुमारदेव के आश्रम में नवागन्तुक तीनों ब्रह्मचारी शीघ्र ही शेष सदस्यों के साथ घुलमिल गए। उनका विद्याभ्यास दिन-रात चलने लगा। सप्ताह, मास और वर्ष व्यतीत होते चले गए। वस्तुपाल और तेजपाल के शारीरिक विकास के साथ उनका मानसिक विकास भी द्रुतगति से हुआ। कुमारदेव इन तीनों ब्रह्मचारियों की शिक्षा में विशेष रुचि लेते थे क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि इन दोनों भाइयों में अन्य सामान्य छात्रों से अधिक प्रतिभा थी। तेजपाल की रुचि तो शस्त्रविद्या सीखने में ही अधिक थी और वह उसमें शीघ्र ही निष्णात

हो भी गया। किन्तु वस्तुपाल ने शस्त्रविद्या तो सीखी ही, उसके साथ उसने काव्य-शास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र इत्यादि विषयों में भी प्रकाण्डता प्राप्त करली। राजगुरु कुमारदेव जब उसे अध्ययन कराते तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि समस्त विद्याएँ स्वयं ही वस्तुपाल को स्वीकार करती चली जाती हैं, स्वयं वस्तुपाल को उन्हें सीखने के लिए तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता।

इसी बीच राणा लवणप्रसाद अनेक बार राजगुरु के आश्रम में आए। कुमारदेव ने वस्तुपाल और तेजपाल के विकास को देखकर अनेक बार उनसे कहा—'बापू, मुझे लगता है कि आपकी दो भुजाएँ तैयार हो रही हैं। अभी ज़रा अग्नि में पका रहा हूं, फिर खराद पर चढ़ाकर ये आग्नेय अस्त्र आपकी भेंट करूंगा।'

राणा लवणप्रसाद हँसकर कहते—

"छोकरे तेज तो दीखते थे। आपके चरणों में बैठकर कुछ सीख जाएं और जैसी आशा है वैसे साबित हों तो फिर गुजरात के दिन पलटेंगे। वह वस्तुपाल कैसा चल रहा है?"

"कहा न मैंने, बापू?" वैसा विद्यार्थी मैंने जीवन में दूसरा नहीं देखा। उसे तो मुझे कुछ सिखाना ही नहीं पड़ता। संकेत भर करता हूं कि सब कुछ कर लेता है। शास्त्र ज्ञान में जितना मेधावी सिद्ध हो रहा है उतना ही युद्ध विद्या में भी कुशल होता जा रहा है। यह लड़का अद्भुत है बापू! देखना, अब तक गुजरात के अन्यतम अमात्य गुंजाल मेहता की याद न भुला दे तो कहना।"

"हूँ, और वह खटपटिया?"

"वह भी एक ही है, अपना सानी नहीं रखता। काव्यशास्त्र से तो उसे चिढ़ है। पोथी तो वह फेंक-फाँककर रख देता है, किन्तु परशु जब उसके हाथ में दो तो साक्षात् परशुराम बन जाता है।"

"ठीक है देव! एक ऐसा भी तो चाहिए मुझे। सावधानी से देखना इन्हें आप।"

'चिन्ता न करें बापू ! चाहें तो आज ही जा सकते हैं। अच्छे-अच्छों को पानी पिलाएँ ऐसे हो गए हैं।'

'इतनी जल्दी नहीं, तैयार होने दो देव !'

'तब ठीक है।'

गुजरात को गहरा प्यार करने वाले ये दो व्यक्ति—एक ब्राह्मण और दूसरा क्षत्रिय इस प्रकार अपनी आशा को फलीभूत होते देखकर खूब प्रसन्न थे।

इसी प्रकार समय का प्रवाह आगे बढ़ता चला जा रहा था। वस्तुपाल और तेजपाल अपने भाई मल्लदेव के साथ बीच-बीच में कभी-कभी दो चार दिन के लिए अपनी माता तथा वनिता से माडल जाकर मिल आते थे। कुमारदेव ने यह विशेष सुविधा उन्हें दे रखी थी अन्यथा आश्रम के सामान्य नियमों में इसके लिए अवकाश नहीं था।

कुमारदेव के आश्रम में प्रविष्ट होने के कुछ दिन बाद ही एक बार गुरु ने अपने तीनों नये शिष्यों को अपने पास बुलाकर कह दिया था—

'तुम जैन हो न वत्स ! चाहो तो अपने धर्म का पालन और आराधन करने के निमित्त कभी-कभी पाटन में विराजने वाले अपने जैन आचार्यों के दर्शनार्थ जा सकते हो।'

'आपकी महती कृपा गुरुदेव ! वास्तव में ऐसी इच्छा हमारी कभी-कभी होती है। किन्तु आप शिव के उपासक हैं, ब्राह्मण हैं अतः हम आश्रम के नियम भंग न हों इस भय से अपनी इस इच्छा को व्यक्त नहीं करते थे।'

वस्तुपाल का यह उत्तर सुनकर कुमारदेव ने कहा—

'शिव शिव ! इसमें कोई नियम भंग नहीं है वस्तुपाल ! धर्म तो मनुष्य के मन की उच्चतम पवित्रतम भावना का ही दूसरा नाम है। उसमें क्या शैवमत और क्या जैन धर्म ? विभिन्न नामों से पुकारी [illegible] क्रियाओं द्वारा मन की इस स्थिति तक पहुंचने का प्रयत्न

करो, धर्म का वास्तविक स्वरूप तो एक ही है और वह बदल नहीं सकता। तुम ऐसी चिन्ता हृदय से निकाल दो। देखो, जिस प्रकार पृथ्वीतल पर प्रवाहित होने वाली समस्त सरिताएँ एक ही समुद्र में विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार संसार के सारे धर्म एक ही परमात्म विन्दु तक पहुँचकर लय हो जाते हैं। और वस्तुपाल, मुझसे सच पूछो तो मैं कहूँगा कि मेरा और तुम्हारा, तेजपाल और मल्लदेव का, सोमेश्वर तथा अन्य वटुकों का—गुजरात की धरती पर उत्पन्न हुए प्रत्येक व्यक्ति का केवल एक ही धर्म है, गुजरात के पुनरभ्युदय के लिए सर्वस्व समर्पण! मैं कहता हूँ कि हमारे जीवन के सभी मार्ग केवल एक ही दिशा में जाते हैं—प्यारे गुजरात के पुनरुत्थान की दिशा में! तुम समझे वस्तुपाल?"

"समझा गुरुदेव! मैं आपके कथन के मर्म को पूरी तरह समझ रहा हूँ और आपके आदेश की प्रतीक्षा में हूँ।"

"और तेजपाल! तुम भी समझे कि नहीं?"

"मैं तो इतना ही समझ सका हूँ गुरुदेव कि आपकी आज्ञा भर की देर है, तेजपाल एक वार गुजरात के शत्रुओं से समर-भूमि में भेंट करके हिसाव निवटा देना चाहता है।"

"शावाश! तुम धन्य हो, किन्तु उतावली नहीं करनी है। प्रतीक्षा करो और प्रस्तुत रहो। उचित समय की प्रतीक्षा करना ही विवेक है।"

इस प्रकार वस्तुपाल-तेजपाल, गुजरात के भावी विचक्षण महामात्य और दुर्धर्ष सेनापति की शिक्षा का राजगुरु कुमारदेव के आश्रम में अन्तिम चरण चल रहा था।

सोमेश्वर के कारण तीनों भाइयों का समय इस आश्रम के कठिन जीवन में भी वड़ी सरलता और आनन्द से व्यतीत हो रहा था। वह जितना वड़ा वातूनी था उतना ही अध्ययनशील और ज्ञानी था। काव्य-शास्त्र में उसे रुचि थी और उसने संस्कृत के महाकवियों—कालिदास, माघ, भारवि, भवभूति, धनपाल इत्यादि के ग्रन्थों का

गहन अध्ययन कर उन्हे कठस्थ कर रखा था ।

सोमेश्वर मे स्वय मे भी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा थी । वह अपने मन से काव्य-रचना किया करता और वस्तुपाल को लेकर आश्रम के लाल और पीले कर्णिकारो के कुज मे जा बैठता था । घटो तक वह वहाँ बैठा-बैठा गप्पे हाँकता रहता और काव्यपाठ किया करता । स्वय वस्तुपाल भी उत्कृष्ट काव्य-रचना करता था किन्तु वह अपना काव्य बहुत कम ही सुनाता, अधिकाश समय वह सोमेश्वर का काव्य ही सुना करता था और उसकी खूब प्रशसा किया करता । सरल सोमेश्वर इस प्रशसा से प्रसन्न हो जाता और उत्साहित होकर नए सृजन मे प्रवृत्त हो जाता ।

वस्तुपाल और सोमेश्वर की मैत्री इस प्रकार एक प्रगाढ, अटूट सूत्र मे बँध गई थी जो आगे जाकर बडी उपयोगी सिद्ध हुई और आजीवन स्थिर रही ।

भाग्यवान है, अनुपमा !

एक दिन वस्तुपाल और तेजपाल ने कुमारदेव के सामने उपस्थित कर विनती की—

"गुरुदेव ! पाटन में पूज्य आचार्य हरिभद्रसूरि पधारे हैं। ज्ञात हुआ है कि वे अत्यन्त अस्वस्थ है। हम उनके दर्शन के लिए जाना चाहते हैं।"

कुमारदेव इस सूचना से प्रसन्न हो गए। बोले—

"तुमने बड़ी शुभ सूचना दी। मैंने भी इन जैनाचार्य के बारे में बहुत कुछ सुना है। सुना है कि वे बड़े विद्वान् और ज्ञानी हैं। किन्तु वे बहुत अस्वस्थ हैं यह जानकर मुझे दुःख है। चलो, चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ—सोमेश्वर !"

सोमेश्वर कुटिया के बाहर बैठा पोथी पढ़ रहा था। आवाज़ सुनकर भीतर आया और हाथ जोड़कर बोला—

"आज्ञा पिताजी !"

"अरे, पाटन मे आचार्य हरिभद्रसूरि पधारे है। चल, उनके दर्शन करने चलेंगे।"

शिष्य-मंडली के साथ राजगुरु कुमारदेव जब अपने आश्रम से निकल कर जैन उपाश्रय की ओर चले और वहाँ पहुँचकर उपाश्रय की सीढियाँ चढने लगे तो मार्ग मे आने-जाने वाले पाटन के निवासी यह देख कर विस्मय मे डूब गए। वे फुसफुसा कर आपस मे बातें करने लगे—

"राजगुरु जैन उपाश्रय मे ? आश्चर्य है भाई !"

"विचित्र बात है। महारुद्र के कट्टर उपासक कुमारदेव जैन उपाश्रय मे क्या लेने जा रहे है ?"

"और वह भी पूरी शिष्य-मडली के साथ !"

"अरे, होगा कोई काम। तुम लोगों को विद्वानो की बातो के बीच पड़ने को क्या आवश्यकता ? अपना-अपना काम देखो न।"

सचमुच ही पाटन के लिए यह विचित्र बात थी। अब कोई महाराजा कुमारपाल और हेमचन्द्राचार्य का युग तो था नही कि जैन धर्म के प्रति पाटन वालों मे वही श्रद्धा बनी रहती। उस स्वर्णयुग को व्यतीत हुए तो अरसा हो चुका था। अब तो शिव के और जिन के उपासकों मे लट्ठ नही चलते थे यही गनीमत थी। तब ये राजगुरु कुमारदेव जैन उपाश्रय मे जा रहे हैं तो आखिर क्या करने ?

किन्तु कुमारदेव निर्द्वन्द्व उपाश्रय की सीढियाँ चढ कर भीतर प्रविष्ट हो गए। उन्होने लोक-चर्चा की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। उनका जीवन जड लोकमत के निम्न धरातल से बहुत ऊँचा था।

भीतर एक कमरे मे एक काष्ठ के पट्ट पर वयोवृद्ध आचार्य शांति-पूर्वक लेटे हुए थे। उनके मुख पर तपस्या की जो दीप्ति थी उसे देखकर एक बार तो ऐसा लगता था जैसे वे पूर्ण स्वस्थ हों, युवा ही हों। किन्तु वास्तविकता यह थी कि वे गम्भीर रूप मे अस्वस्थ थे। और उनके इस असार देह से मुक्त होने का समय आ पहुँचा था। समीप ही उनके योग्य और विद्वान् शिष्य विजयसेनसूरि खड़े थे। वे

युवक ही थे किन्तु प्रतिभा के धनी प्रतीत होते थे।

कुमारदेव के शरीर पर अधोवस्त्र के स्थान पर केवल एक धोती थी। बाकी वे कमर तक उघाड़े थे और उनके कंधे से जनेऊ लटक रही थी। उनकी आकृति इस रूप में भव्य प्रतीत होती थी। उन्हें देखकर विजयसेनसूरि तथा आचार्य हरिभद्रसूरि को थोड़ा विस्मय हुआ। किन्तु मन्द-मन्द मुस्कराते हुए आचार्य ने अपना शिथिल दाहिना हाथ उठाकर अतिथि का स्वागत करते हुए धीमे स्वर में कहा—

"पधारिये, कुमारदेव ! प्रणाम करता हूँ।"

"ऐसा पाप न कीजिये सूरिजी ! प्रणाम करने का अधिकारी तो मैं हूँ। मेरा यह अधिकार आप कैसे छीन लेंगे ? प्रणाम स्वीकारें। स्वास्थ्य कैसा है ? शांति तो है न !"

"ठीक हूँ, देव ! कैसे कष्ट किया ?"—इतना कहकर उन्होंने वस्तुपाल और तेजपाल की ओर देखा और बोले—"ये कौन हैं ? इन युवकों को मैंने कहीं देखा हो, ऐसा लगता है।"

अब कुमारदेव हल्के-से मुस्कराए और उन्होंने उत्तर दिया—

"इन युवकों को तो आप इनके जन्म के पहले से ही जानते हैं, सूरि जी !"

"मैं समझा नहीं''' '''लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने इन्हें कहीं देखा है।" अपनी अत्यन्त मन्द पड़ गई दृष्टि को जमाकर देखते हुए आचार्य ने कहा—"कहीं ये अश्वराज मंत्री के पुत्र तो नहीं ?"

"वही हैं, सूरि जी ! और आपने कहा था वह सत्य सिद्ध करें ऐसे ही हैं।"

सन्तोष और आनन्द की अनुभूति से आचार्य का मुरझाया हुआ-सा चेहरा क्षणभर के लिए प्रदीप्त हो उठा। वे बोले—

"मैंने सुना था कि ये आपके पास विद्याभ्यास कर रहे हैं। इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ था, देव ! गुजरात में यदि कोई ऐसा व्यक्ति था जो इन्हें संपूर्ण शिक्षा दे सकता था तो वह आप ही थे।

"ऐसा क्यों कहते है सूरि जी ! यदि ये बालक आपके पास रहे होते तो निस्सदेह अधिक योग्य बनकर निकलते ......।"

"नही, मैं इन्हे केवल पडित बना सकता था, किन्तु गुजरात की धरती ने इन्हें जिस उद्देश्य के लिए जन्म दिया है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह अनिवार्य था कि वे कुमारदेव के आश्रम के स्नातक होकर निकलें। अन्यथा इनका व्यक्तित्व अपूर्ण रहता।—किन्तु आप अब तक खडे क्यों है देव ! विराजिये।"

"कष्ट न करें देव, दर्शन करने ही तो चला आया था। लौट कर शीघ्र जाना भी है। पूजा-आरती का समय हो चला। आपको भी अधिक बोलने अथवा हिलने-डुलने मे अधिक श्रम नही करना चाहिए।"

"अरे, मेरी क्या चिन्ता करते हैं आप ? मेरा तो समय पूर्ण हुआ। कृतज्ञ हूँ कि जाने से पूर्व आपने दर्शन दिये। आपके विषय मे सुनता रहा और किसी दिन दर्शन की इच्छा मन में ही बनी रह गई थी—और यह तीसरा युवक कौन है, देव !"

"मेरा पुत्र सोमेश्वर है—सोमेश्वर ! आचार्य के चरणो मे वदन करो बेटा !"

सोमेश्वर ने झुककर आचार्य के चरणो का स्पर्श किया। आचार्य ने उसे 'धर्मलाभ' देकर कहा—

"योग्य पिता के योग्य पुत्र बनना सोमेश्वर ! और वस्तुपाल, तेजपाल ! तुम्हे भी इस वृद्ध आचार्य का यही आशीर्वाद है। तुम्हारे माता-पिता इस समय कहाँ हैं ?

"पिताजी स्वर्गस्थ हो चुके, पूज्यवर ! माता जी माडल मे रहती हैं, हमारी बहिनो के साथ।"

"ओह ! अपनी माता को मेरा धर्मलाभ कहना !"

इसके बाद आचार्य हरिभद्रसूरि ने उठकर बैठने का प्रयत्न किया। विजयसेनसूरि ने उन्हे थोडा बैठा-सा कर दिया। आचार्य ने वस्तुपाल, तेजपाल के चेहरे को गौर से देखते हुए विजयसेनसूरि से कहा—

"ऐसा क्यों कहते हैं सूरि जी ! यदि ये बालक आपके पास रहे होते तो निस्सदेह अधिक योग्य बनकर निकलते""""।"

"नही, मैं इन्हे केवल पडित बना सकता था, किन्तु गुजरात की धरती ने इन्हे जिस उद्देश्य के लिए जन्म दिया है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह अनिवार्य था कि वे कुमारदेव के आश्रम के स्नातक होकर निकलें। अन्यथा इनका व्यक्तित्व अपूर्ण रहता।—किन्तु आप अब तक खड़े क्यो है देव ! विराजिये।"

· "कष्ट न करें देव, दर्शन करने ही तो चला आया था। लौट कर शीघ्र जाना भी है। पूजा-आरती का समय हो चला। आपको भी अधिक बोलने अथवा हिलने-डुलने मे अधिक श्रम नही करना चाहिए।"

"अरे, मेरी क्या चिन्ता करते हैं आप ? मेरा तो समय पूर्ण हुआ। कृतज्ञ हूँ कि जाने ने पूर्व आपने दर्शन दिये। आपके विषय मे सुनता रहा और किसी दिन दर्शन की इच्छा मन मे ही बनी रह गई थी—और यह तीसरा युवक कौन है, देव !"

"मेरा पुत्र सोमेश्वर है—सोमेश्वर ! आचार्य के चरणो मे वदन करो बेटा !"

सोमेश्वर ने झुककर आचार्य के चरणो का स्पर्श किया। आचार्य ने उसे 'धर्मलाभ' देकर कहा—

"योग्य पिता के योग्य पुत्र बनना सोमेश्वर ! और वस्तुपाल, तेजपाल ! तुम्हें भी इस वृद्ध आचार्य का यही आशीर्वाद है। तुम्हारे माता-पिता इस समय कहाँ हैं ?

"पिताजी स्वर्गस्थ हो चुके, पूज्यवर ! माता जी माडल मे रहती हैं, हमारी बहिनो के साथ।"

"ओह ! अपनी माता को मेरा धर्मलाभ कहना !"

इसके बाद आचार्य हरिभद्रसूरि ने उठकर बैठने का प्रयत्न किया। विजयसेनसूरि ने उन्हे थोडा बैठा-सा कर दिया। आचार्य ने वस्तुपाल, तेजपाल के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए विजयसेनसूरि से कहा—

युवक ही थे किन्तु प्रतिभा के धनी प्रतीत होते थे ।

कुमारदेव के शरीर पर अधोवस्त्र के स्थान पर केवल एक धोती थी । बाकी वे कमर तक उघाड़े थे और उनके कंधे से जनेऊ लटक रही थी । उनकी आकृति इस रूप में भव्य प्रतीत होती थी । उन्हें देखकर विजयसेनसूरि तथा आचार्य हरिभद्रसूरि को थोड़ा विस्मय हुआ । किन्तु मन्द-मन्द मुस्कराते हुए आचार्य ने अपना शिथिल दाहिना हाथ उठाकर अतिथि का स्वागत करते हुए धीमे स्वर में कहा—

"पधारिये, कुमारदेव ! प्रणाम करता हूँ ।"

"ऐसा पाप न कीजिये सूरिजी ! प्रणाम करने का अधिकारी तो मैं हूँ । मेरा यह अधिकार आप कैसे छीन लेंगे ? प्रणाम स्वीकारें । स्वास्थ्य कैसा है ? शांति तो है न !"

"ठीक हूँ, देव ! कैसे कष्ट किया ?"—इतना कहकर उन्होंने वस्तुपाल और तेजपाल की ओर देखा और बोले—"ये कौन हैं ? इन युवकों को मैंने कहीं देखा हो, ऐसा लगता है ।"

अब कुमारदेव हल्के-से मुस्कराए और उन्होंने उत्तर दिया—

"इन युवकों को तो आप इनके जन्म के पहले से ही जानते हैं, सूरि जी !"

"मैं समझा नहीं"... "लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने इन्हें कहीं देखा है ।" अपनी अत्यन्त मन्द पड़ गई दृष्टि को जमाकर देखते हुए आचार्य ने कहा—"कहीं ये अश्वराज मंत्री के पुत्र तो नहीं ?"

"वही हैं, सूरि जी ! और आपने कहा था वह सत्य सिद्ध करें ऐसे ही हैं ।"

सन्तोष और आनन्द की अनुभूति से आचार्य का मुरझाया हुआ-सा चेहरा क्षणभर के लिए प्रदीप्त हो उठा । वे बोले—

"मैंने सुना था कि ये आपके पास विद्याभ्यास कर रहे हैं । इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ था, देव ! गुजरात में यदि कोई ऐसा व्यक्ति था जो इन्हें संपूर्ण शिक्षा दे सकता था तो वह आप ही थे ।

...ता क्या कहते हैं सूरि जी ! यदि ये वालक आपके पास र... होते तो निस्सदेह अधिक योग्य वनकर निकलते ......।"

"नही, मैं इन्हे केवल पडित वना सकता था, किन्तु गुजरात की धरती ने इन्हे जिस उद्देश्य के लिए जन्म दिया है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह अनिवार्य था कि वे कुमारदेव के आश्रम के स्नातक होकर निकलें । अन्यथा इनका व्यक्तित्व अपूर्ण रहता ।—किन्तु आप अव तक खडे क्यों हैं देव ! विराजिये ।"

"कष्ट न करें देव, दर्शन करने ही तो चला आया था । लौट कर शीघ्र जाना भी है । पूजा-आरती का समय हो चला । आपको भी अधिक वोलने अथवा हिलने-डुलने मे अधिक श्रम नही करना चाहिए।"

"अरे, मेरी क्या चिन्ता करते हैं आप ? मेरा तो समय पूर्ण हुआ । कृतज्ञ हूँ कि जाने से पूर्व आपने दर्शन दिये । आपके विषय मे सुनता रहा और किसी दिन दर्शन की इच्छा मन मे ही वनी रह गई थी—और यह तीसरा युवक कौन है, देव !"

"मेरा पुत्र सोमेश्वर है—सोमेश्वर ! आचार्य के चरणो मे वदन करो वेटा !"

सोमेश्वर ने झुककर आचार्य के चरणों का स्पर्श किया । आचार्य ने उसे 'धर्मलाभ' देकर कहा—

"योग्य पिता के योग्य पुत्र वनना सोमेश्वर ! और वस्तुपाल, तेजपाल ! तुम्ह भी इस वृद्ध आचार्य का यही आशीर्वाद है । तुम्हारे माता-पिता इस समय कहाँ हैं ?

"पिताजी स्वर्गस्थ हो चुके, पूज्यवर ! माता जी माडल मे रहती हैं, हमारी वहिनो के साथ ।"

"ओह ! अपनी माता को मेरा धर्मलाभ कहना !"

इसके वाद आचार्य हरिभद्रसूरि ने उठकर वैठने का प्रयत्न किया । ...जयसेनसूरि ने उन्हे थोडा वैठा-सा कर दिया । आचार्य ने वस्तुपाल, ...पाल के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए विजयसेनसूरि से कहा—

"विजयसेनसूरि ! चन्द्रावती के श्रेष्ठि धरणीगशाह से कहना कि चन्द्रावती से लौटते समय मांडल होकर जाएँ और कुमारदेवी से मिलते जाँय !"

जिस समय दो भिन्न मतों के इन धुंरधर आचार्यों की यह स्नेह-वार्ता चल रही थी उस समय एक किशोरी वहाँ आई थी और चुपचाप आचार्य हरिभद्रसूरि को प्रणाम करके एक ओर खड़ी हो गई थी। उसका वर्ण श्यामल था किन्तु उसके नख-शिख ऐसे सुन्दर थे कि वह किसी कुशल कारीगर द्वारा गढ़ी गई सुन्दर प्रतिमा जैसी दीखती थी।

वस्तुपाल, तेजपाल तथा उस किशोरी के मुख की ओर देखते हुए आचार्य ने जो आदेश विजयसेनसूरि को दिया था उसका संकेत वे समझ गये थे। यह किशोरी चन्द्रावती के श्रेष्ठि धरणीगशाह की पुत्री थी। उसकी मुखमुद्रा में एक ऐसी विशिष्टता की छाप थी जो सामान्यतः नारियों में नहीं पाई जाती।

कुमारदेव ने तब आचार्य से कहा—

"इन युवकों को जो ज्ञान मैं नहीं दे सका वह आप दें, आपके निर्देश में विजयसेनसूरि दें, यह विनय मैं करने आया हूँ आचार्य !"

हरिभद्रसूरि हँसते हुए बोले—

"ऐसी भी कोई शिक्षा हो सकती है क्या जो आप इन्हें न दे सकें हों और मैं दूँ ! नहीं देव, यह समय तो विनोद का भी नहीं है।"

"विनोद नहीं करता हूँ आचार्य, विनय करता हूँ। स्वीकार करें।"

"विजयसेनसूरि ! कभी-कभी ये युवक तुम्हारे पास आएँ तो इन्हें उचित शिक्षा देना। पोथे तो इन्होंने सब पढ़ लिये होंगे, कुमारदेव ने इन्हें क्या शिक्षा देनी बाकी रखी होगी यह भी मैं नहीं सोच सकता। किन्तु फिर भी तुम इन्हें शिक्षा दो तो ऐसी ही शिक्षा देना जिससे कि ये गुजरात का मस्तक ऊँचा कर सकें।"

वृद्ध आचार्य बोलते-बोलते थक गए थे। वे फिर से लेट गए। कुमारदेव ने विदा चाहते हुए कहा—

"ये सब अंगो ने थाम लें, आचार्य ! आप भी विश्राम करें।"

"पधारो, कुमारदेव ! एक बार फिर आपका उपकार मानता हूँ। नहीं जानता फिर दर्शन होंगे कि नहीं। कोई अपराध, कोई भूल हुई हो तो क्षमा करना।"

"अपराध और क्षमा का प्रश्न ही कहाँ उठता है आचार्य ! आप अब थक गए हैं। विश्राम करें। मैं फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा।"

"राणा लवणप्रसाद को मेरा आशीर्वाद कहना। और कुमारदेव अब शायद पुनः भेंट नहीं हो होगी, जान पड़ता है। अतः एक बार फिर से क्षमा चाहता हूँ।"

"मैं भी आपसे क्षमा चाहता हूँ।"

आचार्य हरिभद्रसूरि जाते हुए वस्तुपाल-तेजपाल को पीठ पर टक-टकी लगाए देखते रहे। जब वे द्वार से बाहर निकलकर अदृश्य हो गए तब उन्होंने उस किशोरी की ओर देखकर मधुर स्मित के साथ कहा—

"तू बड़ी भाग्यवान लड़की है अनुपमा !"

***

निर्धूम दीप

मल्लदेव अस्वस्थ होने के कारण आचार्य हरिभद्रसूरि के दर्शन करने नहीं जा सका था। और उसका स्वास्थ्य अब दिन पर दिन गिरता ही चला जा रहा था। कुमारदेव अत्यन्त चिन्तित होकर यह देख रहे थे। जो कुछ भी सम्भव था वह सब उपचार भी किया जा रहा था किन्तु रोगी की स्थिति सुधर नहीं रही थी।

मल्लदेव के शरीर में एक कलाकार की आत्मा थी। बचपन से ही उसे सुन्दर-चिकने पत्थरों को इकट्ठा करने और उनसे खेलने का शौक था। उन अनगढ़ पत्थरों में वह अनेक प्रकार की आकृतियों की कल्पना किया करता था और जाने क्या-क्या स्वप्न उसकी आँखों में तैरते रहते थे? पाटन आने पर कुमारदेव के आश्रम में रहते हुए भी उसने जाने कहाँ कहाँ से लाकर विचित्र-विचित्र आकार के पत्थर अपनी कुटिया में इकट्ठे कर रखे थे।

उस दिन प्रात.काल मे ही उसे सास लेने में कठिनाई का अनुभव हो रहा था। यह देख कर वस्तुपाल ने कुमारदेव से जाकर कहा—

"गुरुदेव! बड़े भाई की स्थिति ठीक नही प्रतीत होती।" उसका गला भरा हुआ था, लगता था अभी आँखो से आँसू झर पड़ेंगे।

कुमारदेव अपना कार्य छोड़कर शीघ्र उनकी कुटिया की ओर गए। उन्होने मल्लदेव का सिर अपनी गोद मे ले लिया। इससे उसे कुछ आराम मिला। उसने एक तरफ खड़े अपने दोनो भाइयो को देखा—वे उसे ही एकटक देख रहे थे और रोऊँ-रोऊँ-से हो रहे थे। मल्लदेव ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—

"अरे, तुम इतने घवराते क्यो हो? वस्तुग, तेजू, मैं तो अब जाता हूँ पर मन से मदा तुम्हारे पास ही रहूँगा ......।"

दोनो भाई अव रो पडे। कुमारदेव ने उन्हे अपने समीप बुलाकर कहा—

"वस्तुपाल! तुम ही यदि इतने कमज़ोर बनोगे तो कैसे चलेगा वेटा! तुम वीर हो, धीर हो, धैर्य-धारण करो और इस तेजपाल को भी समझाओ। वीर पुरुष इस प्रकार कातर नही हुआ करते।"

दोनों भाइयो ने दृढता से अपनी आँखों के आँसू पोंछ लिए। कुमारदेव ने मल्लदेव से पूछा—

"वेटा! शान्त हृदय से प्रभु का स्मरण करो। और मुझे ऐसा लगता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो। यदि तुम्हारी कोई इच्छा है तो मुझे वताओ।"

वचपन मे मल्लदेव एक वार आवू-पर्वत पर गया था। वहाँ महामत्री विमलशाह द्वारा वनवाए हुए सगमरमर के अद्‌भुत मन्दिर को देखकर उस कलाकार की आत्मा वाले वालक के मन मे यह इच्छा जागी थी कि पवित्र आवू-पर्वत पर वह भी किसी दिन इतने ही सुन्दर मन्दिर वनवा सके।—कैसी अद्‌भुत इच्छा थी! लाखो रुपयों का जिसमे खर्च हो ऐसी उस अभिलाषा को मल्लदेव उसी समय से अपने हृदय मे

पालता आया था।

अब जब कुमारदेव ने उसकी अन्तिम इच्छा के विषय में प्रश्न किया तो वह क्या कहे? अपनी इस अभिलाषा को वह कैसे व्यक्त करे? अपने परिवार की स्थिति का तो उसे ज्ञान था ही। उसे देखते हुए इस इच्छा को प्रकट करने का कोई अर्थ नहीं हो सकता था। अतः हँसते हुए, एकदम शान्त हृदय से उसने उत्तर दिया—

"गुरुदेव! अब मेरी क्या इच्छा हो सकती है? माँ प्रसन्न रहे, वस्तुपाल और तेजपाल यहाँ से जाकर माँ की खूब सेवा करें और मेरी बहिनों की देखभाल करें, यही इच्छा है बस।"

"बड़े भैया! ऐसा तो होगा ही, तुम चिन्ता न करो। माँ और बहिनों को कोई कष्ट मैं नहीं होने दूँगा। किन्तु······किन्तु अवश्य तुम्हारे मन में कोई बात है। कह डालो, भैया! वस्तुपाल और तेजपाल उसे अवश्य पूर्ण करके रहेंगे। हम यह प्रतिज्ञा करते हैं।"—वस्तुपाल ने कहा। तेजपाल भी कुछ नजदीक आकर बोला—

"भैया, मन की बात मन में न रखो। जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो कहो। हम उसे पूरा करके ही रहेंगे।"

तब कुमारदेव ने यह कहा—

"हाँ, मल्लदेव! मन की बात मन में ही रखकर कष्ट न पाओ। आज नहीं तो कल तुम्हारे भाई समर्थ होंगे। वे तुम्हारी इच्छा को अवश्य पूर्ण करेंगे। कहो, तुम्हारे मन में क्या है?"

तब मल्लदेव ने खिड़की से बाहर सुदूर आबू-पर्वत के गहन, उच्च शिखरों की ओर देखते हुए कहा—

"बचपन से ही मैं एक स्वप्न पालता चला आ रहा हूँ—पवित्र आबू-तीर्थ पर जैसे विमलशाह ने की, उसी प्रकार एक जिनबिम्ब की स्थापना करने की मेरी इच्छा हुई थी। लेकिन वह इच्छा कैसे पूरी हो सकती थी? यह तो मेरे बचपन की कल्पना भर थी······।"

"कल्पनाएं ही तो एक दिन साकार होती हैं बेटा!"—कुमारदेव

ने कहा, "कर्मवीर पुरुष-पुंगव अपने स्वप्नों को अपनी भुजाओं की शक्ति से यथार्थ का रूप दे डालते हैं। तुम्हारे तो वस्तुपाल और तेजपाल जैसे दो भाई है जो चाहेंगे तो एक दिन पृथ्वी को हिलाकर रख देंगे। तुम चिन्ता न करो मल्लदेव ! मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम्हारी यह पवित्र अभिलाषा एक दिन अवश्य पूर्ण होगी। बस ? अब तो सन्तुष्ट हो ?"

"असन्तुष्ट तो मैं पहले भी नही था गुरुदेव ! मैं तो शरीर बदल रहा हूँ। यह शरीर जीर्ण हो गया है, इसे बदलकर दूसरा स्वस्थ शरीर धारण कर लेना है।" अत्यन्त शातिपूर्वक मल्लदेव ने कहा। वह धैर्य और विवेक की साक्षात् मूर्ति प्रतीत हो रहा था। उसके इस आत्म-सन्तुष्ट भाव को देखकर उसके भाइयो को भी कुछ धीरज बँधा। वे उसके कुछ और समीप आ गए। उसके पैरो को स्पर्श करते हुए वस्तुपाल ने कहा—

"बडे भैया ! तुम सदा से ही गम्भीर और विवेकवान रहे हो। इस समय भी तुम जितनी शाति से रोग की पीडा को सहन कर रहे हो वह धन्य है। मैं, वस्तुपाल, वचन देता हूँ कि तुम्हारी इस अन्तिम इच्छा को अवश्य पूर्ण करूँगा।"

"निश्चिन्त रहो भैया ! तेजपाल ने भी कहा, "आबू-पर्वत पर जिनबिम्ब की स्थापना होगी और अवश्य होगी। ऐसे सुन्दर मन्दिरो का निर्माण कराऊँगा कि जिसे देखकर ससार आश्चर्य चकित रह जायगा ! कुछ और इच्छा हो तो वह भी कह डालो।"

"कोई इच्छा नही है तेजू ! जो मन मे था वह कह चुका। अंतिम बात यही कहनी है कि गुरुदेव का ऋण अवश्य चुकाना। गुरुदेव ने हम लोगो को विद्या-दान देकर हम पर जो उपकार किया है उसे कभी भूलना नही और उनके स्वप्न को पूरा करके उनका ऋण चुकाना।"

"भैया ! और सब कुछ होगा, किन्तु गुरुदेव का ऋण कैसे चुकेगा ? हम सारा जन्म भी गुरुदेव की सेवा करें, तब भी यह ऋण

तो चुकने का नहीं। जन्म-जन्मान्तरों में भी न चुक सके वह ऋण है गुरुदेव का तो हम पर।"—वस्तुपाल ने उत्तर दिया।

"अरे तुम लोग भी पगले हो।" कुमारदेव बोले, "यह समय ऐसी व्यर्थ की चिन्ता करने का है क्या? क्या ऋण है मेरा तुम पर भला! और यदि कुछ मानते भी हो तो, चिन्ता न करो, सब चुक जायगा, जिस दिन वस्तुपाल का विवेक और तेजपाल की तलवार मिल कर विदेशी अत्याचारियों का मान-मर्दन करके उन्हें खदेड़ बाहर करेंगे और जिस दिन गुजरात गर्व से मस्तक ऊँचा करके खड़ा होगा उस दिन हम सबका ऋण एक साथ ही चुक जायगा।"

"मैं यही कहता था, गुरुदेव! वस्तुग और तेजू को आपने तैयार कर दिया है। इनसे यही कहता था कि गुरुदेव की दी हुई शिक्षा की लाज रखना है।"

मल्लदेव ने जब यह कहा उसी समय विजयसेनसूरि वहाँ पधारे। उन्हें देखकर मल्लदेव को जैसे निधि मिल गई। वह एकदम अशक्त होते हुए भी एकाएक उठकर बैठ गया और उसने झुककर सूरिजी के चरणों का स्पर्श करते हुए वन्दन किया। सूरिजी ने उसे 'धर्मलाभ' दिया। मल्लदेव बोला—

"आचार्य! इस समय, जाते-जाते आपके दर्शनों का लाभ मेरे भाग्य में लिखा था। अब मैं पूर्ण शान्ति से अपने जीवन की अन्तिम श्वास ले सकूँगा।"

कुमारदेव ने मल्लदेव को फिर से आहिस्ते-से लिटाकर अपनी गोद में उसका सिर वैसे ही रख लिया जैसे पहले था। इसके बाद कुछ समय तक उस कुटिया में एकदम शांति रही। सूरिजी के साथ अनुपमा भी आई थी—वही सांवली, चपल किशोरी जिसे वस्तुपाल-तेजपाल ने एक नजर आचार्य हरिभद्रसूरि के आवास पर उपाश्रय में देखा था। अनुपमा के साथ दो-एक अन्य व्यक्ति उसके ही परिवार के भी थे। अनुपमा चुपचाप एक ओर खड़ी मृत्यु से हँसकर लोहा लेते हुए मल्लदेव

को देख रही थी। उसके बाद उसने वस्तुपाल को देखा और फिर तेजपाल को। दोना भाइयो की आँखें डबडबाई हुई थी—अनुपमा सोच रही थी, अपने एक भाई को जाते हुए देखकर ये लोग कितनी पीडा का अनुभव कर रहे होगे ? क्या उनकी इस गहन पीडा म कोई योग बटा सकता है ? क्या मैं इनकी पीडा मे से कुछ अपने हिस्से मे नही ले सकती ?

कुमारदेव ने विजयसेनसूरि को नमस्कार किया और सूरिजी ने भी प्रतिनमस्कार कर राजगुरु के प्रति अपना आदर व्यक्त किया।

कुमारदेव ने कहा—

"आपने इस समय मेरे आश्रम म पधारकर सचमुच वडी कृपा की सूरिजी ! मल्लदेव को इससे वडी शांति मिलेगी।"

"सयोग है, देव ! मुझे लगा कि चलना चाहिए और मैं चला आया।"

दीपक का स्नेह तिल-तिलकर समाप्त होता जा रहा था। वत्तिका मन्द पडती जा रही थी। मल्लदेव का शरीर शिथिल होकर निश्चेष्ट होता जा रहा था। किन्तु उसके मुख पर एक अजीब-सी शात आभा आकर फैल गई थी। उसने अपनी आँखें वन्द करली थी और वह मन ही मन अरिहत और सिद्ध भगवन्ता को नमन करता हुआ उनका ही स्मरण कर रहा था।

एक झोके के साथ सहसा प्रकाश विलीन हो जाने को है यह देखकर विजयसेनसूरि ने मल्लदेव को मागलिक सुनाया और उसके बाद प्रकाश सचमुच ही विलुप्त हो गया। एक बुझा हुआ, निर्धूम दीप राजगुरु कुमारदेव की गोद म पडा शेष रह गया।

***

मेरा नाम है—वस्तुपाल

राजगुरु कुमारदेव ने वस्तुपाल-तेजपाल को बड़े भावपूर्ण हृदय से विदा किया। विदा के समय अन्तिम बात उन्होंने कही—

"वत्स ! मेरे पास जो कुछ था वह मैं तुम्हें दे चुका। शेष जो कुछ रह गया हो वह तुम स्वयं अपने पुरुषार्थ से पा लेना। मेरा आशीर्वाद है कि तुम मानवता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचो। और बेटा ! भूलना नहीं, मैं बुलाऊँ तब आना। गुजरात के गौरव को अखण्ड रखने के लिए यदि तुम्हारी देह खंड-खंड होकर बिखरती हो तो बिखरने देना। इतने से गुरुदक्षिणा चुक जायगी। बस, अपनी माता को मेरा प्रणाम कहना। उसने तो अपनी माता का ऋण चुका दिया है। वह देवी है, उसकी सेवा करना और हाँ, कभी उलझन में पड़ो तो इस बूढ़े को याद करना। मेरी कुटिया के द्वार तुम्हारे लिए सदा खुले रहेंगे।"

वस्तुपाल-तेजपाल ने जब राजगुरु के आश्रम से विदा ली तबतक

गुजरात का धनी सो रहा था। अपनी गई हुई जवानी को लौटा लाने के लिए वह वैद्य-हकीमों की भस्में और औषधियाँ खाकर उनके जहरीले मद मे डूबा हुआ था। तबतक उसकी आँख खुली नही थी।

गुजरात के धनी की आँख जब बहुत दिन बाद राणा लवणप्रसाद ने खोली, जिस दिन उसे अपना गुजरात याद आया, तबतक दोनों भाई माडल मे लौटकर अपनी माता की सेवा मे जुट गए थे। कुमारदेवी ने गाढे वक्त के लिए कुछ थोड़ी बहुत सम्पत्ति जो जुटा रखी थी, उसके पास जो कुछ पुराने आभूषण इत्यादि थे, उनकी सहायता से वस्तुपाल और तेजपाल ने माडल मे ही अपना व्यापार आरम्भ कर दिया था। धीरे-धीरे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती भी जा रही थी। पुत्र और पुत्रियो की सेवा से सन्तुष्ट माता अपने वैधव्य के दु ख को बहुत सीमा तक भुला सकी थी।

चन्द्रावती के सेठ धरणीगशाह शत्रुन्जय तीर्थ की यात्रा से जब लौटे तब वे विजयसेनसूरि के सकेत के अनुसार माडल होते हुए गए। माडल मे उन्होने कुमारदेवी का ही आतिथ्य स्वीकार किया। उन्होने वस्तुपाल और तेजपाल को वहाँ बारीकी से जांचा-परखा। कुमारदेवी ने भी अनुपमा की अनुपम बुद्धि को कुछ ही दिन के साहचर्य से आंक लिया। और परिणामस्वरुप तेजपाल का विवाह अनुपमा से कर दिया गया। वस्तुपाल का विवाह इस बीच कल्पलता के समान ललितादेवी से हो चुका था। जोडियाँ ठीक मिल गई थी। ललितादेवी धीर-गभीर थी, वस्तुपाल के ही समान और अनुपमा थी तेज, विदुषी और बुद्धिमती—तेजपाल के तेज को सह सके ऐसी।

बहुओ के आ जाने से घर भरा-भरा-सा रहने लगा था। व्यापार ठीक-ठीक चल निकला था। कुमारदेवी ने सन्तोष के साथ यह देखा कि पुत्र सुयोग्य हो गए और उनका ठिकाना भी हो गया।

किन्तु वस्तुपाल और तेजपाल को जीवन के जिस चरम शिखर पर देखने की अभिलाषा कुमारदेवी की थी वह अपूर्ण ही रह गई। शिखर

पर वे पहुँचे अवश्य, जैसा कि उन्हें पहुँचना ही था, किन्तु कुमारदेवी तबतक प्रतीक्षा न कर सकी। विधि ने जितना समय उसे इस पृथ्वी पर रहने के लिए दिया था वह समाप्त हो चुका था और एकदिन अचानक ही वह महायात्रा पर चल पड़ी।

माता के देहावसान के पश्चात् वस्तुपाल और तेजपाल ने घर के और लोगों से सलाह करके अपना निवास स्थान मांडल से बदलकर धोलका में कर दिया। धोलका बड़ी जगह थी, व्यापार के लिए वह अधिक उपयुक्त थी–अथवा कौन जाने, अदृश्य विधि का हाथ उन्हें अपने गन्तव्य की ओर धीरे धीरे स्वयं ही ले जा रहा था!

जब वस्तुपाल–परिवार धोलके में आकर रहने लगा तबतक वीरधवल कुमारदेव के आश्रम से निकलकर धोलके का राणा बन चुका था। उसकी उठती-बढ़ती उम्र थी। राणा लवणप्रसाद अपना अधिकांश समय पाटन में ही व्यतीत करने लगे थे और राणा वीरधवल धोलका सम्हाल रहे थे। जब-तब राणा वीरधवल बड़े राणा लवणप्रसाद के साथ पाटन के चक्कर भी लगा लिया करते थे।

राणा वीरधवल लवणप्रसाद के पुत्र थे—सिंह शावक। किन्तु अभी उनकी उम्र कच्ची थी। राजनीति का ज्ञान अभी उन्हें उतना नहीं था जितना एक राजा को होना चाहिए–और फिर वे तो पाटन के, महाराज भीमदेव सोलंकी के उत्तराधिकारी भी थे। गुजरात के सिंहासन के उत्तराधिकारी को काँटों का ताज पहनना था। उन काँटों की तीक्ष्णता को सह सकें ऐसा धीर, नीतिज्ञ और पुरुषार्थी उन्हें बनना था। राणा वीरधवल की अभी युवावस्था आरम्भ ही हुई थी। स्वाभाविक था कि उनमें अनुभव की कमी थी और इस कमी को दूर करने के लिए उन्हें किसी ऐसे विवेकवान और नीतिज्ञ अमात्य की आवश्यकता थी जो बिगड़ी हुई स्थिति को धीरे-धीरे सुधार कर गुजरात की एकता को सुदृढ़ कर सके।

विद्वानों ने कहा है—

राजा नयज्ञ. सचिवो विवेकी, यति. क्षमावान् विनयी धनाड्य:,
विद्वान् क्रियावान युवतिः सतीच, भवन्ति सर्वत्र महोदयाय ।

(राजा नीतिज्ञ हो, सचिव विवेकी हो, यति क्षमावान हो, धनी व्यक्ति विनयी हो, विद्वान् पुरुष क्रियाशील हो और स्त्री सती हो तो वे अभ्युदय को प्राप्त करते हैं ।)

किन्तु इस समय बाल-राजा वीरधवल के राज्य मे जो व्यक्ति सर्वेसर्वा बनकर बैठा था वह परम अवगुणी और स्वार्थी था। वह विदेशी भी था। स्वय राणा वीरधवल का साला, रानी जेतलदेवी का सगा भाई सग्रामसिह उन दिनो धोलके मे आकर रह रहा था और उसने बहिन को उल्टी-सीधी पट्टी पढाकर अपने बहनोई के राज्य की समस्त शक्तियाँ अपने हाथ मे ले रखी थी ।

प्रजा पर वह मनमाना जुल्म करता था। आज यह कर, कल वह भेट दे, आज इस कारण से प्रजा को इतना द्रव्य देना ही पड़ेगा और कल उस कारण से—इस प्रकार सारी प्रजा के रक्त को धीरे-धीरे चूसकर वह अपना घर भर रहा था और सारी सम्पत्ति को चुपचाप अपने सौराष्ट्र मे—वनथली मे भेजता जा रहा था। यहाँ तक कि उसने अपनी बहिन, रानी जेतलदेवी के बहुमूल्य आभूषणों को भी अपने कब्जे मे करके रख छोडा था और जिस मजूषा मे वे रखे थे उसकी चाबी उसने अपने पास ही रख छोडी थी। भोली रानी को उसने समझा दिया था—

"समय बडा खराब है बहिन ! बहनोई अभी छोटे हैं, राजकाज और राज्य की खटपटो को पूरा समझने नही, इसलिए तेरे आभूषण मेरे पास ही सुरक्षित रहने दे—कौन जाने कब, क्या हो जाय ?"

"ठीक है भैया ! जैसा तुम ठीक समझते हो वैसा ही करो। मुझे क्या आपत्ति ? तुम हो तभी तो राज सम्हला हुआ है ।"

राज कैसा सम्हल रहा है वह तो अन्धे को भी दिखाई दे जाता।

राणा लवणप्रसाद पाटन रहते थे, राणा वीरधवल भी प्रायः पाटन चले जाते थे—अब धोलके में रह गया था साला संग्रामसिंह और उसका कुचक्र।

उन्हीं दिनों एक दिन धोलके के बाजारों में बड़ी चहल-पहल हुई। राजसेवक ऊँचे स्वर से घोषणा करते फिर रहे थे—

"धोलके के प्रजाजनो! सुनो—राणा वीरधवल को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है। सारी प्रजा के लिए प्रसन्नता का अवसर है। अतः आज श्रीमान् संग्रामसिंह जी कृपापूर्वक प्रजा से 'कुंवरपछेड़ा' की भेंट स्वीकार करेंगे। चलो, चलो, श्रीमान् सुभट संग्रामसिंह जी पधारने वाले हैं।"

दूकान-दूकान पर वे राजसेवक प्रमुख श्रेष्ठियों को व्यक्तिगत रूप से भी जाकर बुलावा दे रहे थे—

"पधारो सेठ, समय हो गया। मामा (संग्रामसिंह) नगर सेठ की दूकान पर पहुँचने वाले हैं।"

"अरे चलो उठो, सेठ! क्या अबतक बैठे हो? चलना नहीं है? मामा आने वाले होंगे।"

"ओ हो हो हो, अभी आप हिसाब की बही लेकर ही बैठे हो सेठ, मामा तो पहुँच भी गए होंगे—देर होगी तो मामा रुष्ट नहीं होंगे? चलो, चलो!"

मन की तो भगवान ही जाने, किन्तु श्रेष्ठि लोग उतरे हुए चेहरे से मामा के भय के मारे अपना कार्य छोड़कर दूकान बन्दकर नगरसेठ की दूकान की ओर एक-एक कर चले अवश्य जा रहे थे। शायद मन ही मन वे सब सोच रहे होंगे—कहाँ से आ गया धोलके में यह मामा? दुष्ट ने प्राण ही ले लिए। नित नए बहाने बना-बनाकर हमें लूट रहा है। रोज-रोज आखिर दें तो कहाँ से दें? कितना दें? किन्तु करें भी तो क्या करें? सुनने वाला कौन है? राजा के राज में रहना है तो सब कुछ सहन करना ही होगा।

इसी प्रकार मन मारे एक-दूसरे को पुकारते और साथ लेते लोग नगरश्रेष्ठि के यहाँ जमा होने लगे।

नगरश्रेष्ठि की ऊँची दूकान पर मसनद और गाव-तकियों के सहारे एक भीमकाय राजपूत आराम से टिका हुआ बैठा था। उसके शरीर का रंग श्याम था, देह गठी हुई, भैंसे के समान थी, चेहरे पर कठोरता के लक्षण थे। और आँखें लाल-लाल। उसके पैरों मे एक सोने का कडा पडा हुआ था और वेशभूषा सोरठी थी।

यही था मामा सग्रामसिंह। रानी का भाई, वनथली का विदेशी, धोलके की भोली प्रजा का लुटेरा।

भीड एकत्रित हो गई थी। एक राजसेवक ने पुकार कर कहा—

"सुनो भाइयो! राणा वीरधवल के पुत्र हुआ है। कुवर-पछेडा देना है। सब लोग अपनी-अपनी इच्छा से भेंट मामा को दें। हाँ, नगर सेठ! सबसे पहले आपसे ही आरम्भ हो, बोलिए आपके नाम के आगे कितना लिखूँ?"

"लिख लो भाई पाच सौ द्रम्म।"—मरे हुए मन से नगर सेठ ने कहा।"

"पाँच सौ द्रम्म? केवल? आप भी हँसी करते हैं सेठ, यह आपको शोभा देता है क्या? राणा के घर पुत्र उत्पन्न हो और नगर-सेठ केवल पाँच सो द्रम्म ही दें? नही, नही, ऐसा नही हो सकता। बोलिए बोलिए ।"

मामा ही बोले—

"लिखो इनके नाम के आगे पाँच हजार द्रम्म। आगे चलो।"

यह रौब, यह कठोरता, यह ज्यादती, यह अन्याय।

राजसेवक आगे चलता गया। लोग यथाशक्ति भेंट देते गए और मामा का चापलूस सेवक सबकी राशि के आगे एक-एक बिन्दी और रखता गया।

उसी समय दूकान की सीढियो पर एक व्यक्ति को चढते हुए देखा

गया। भरापूरा, गठा हुआ शरीर, किन्तु वेशभूषा एक सामान्य व्यापारी की। यह व्यक्ति बड़ी शान्तिपूर्वक दूकान में आकर सबसे पीछे बैठ गया।

"अरे आओ, आओ, वस्तुपाल सेठ, आपकी तो प्रतीक्षा थी। इतनी देर कहाँ करदी ?"—कई लोग एक साथ बोल पड़े।

वस्तुपाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप ही बैठा रहा। दो-एक लोगों के नाम के बाद राजसेवक ने वस्तुपाल का ही नाम पुकारा और पूछा—

"आपके नाम के आगे कितना लिखूँ वस्तुपाल सेठ ? आपने तो मांडल से धोलके आकर खूब सम्पत्ति कमई है। और आपके पूर्वजों ने भी पाटन के अमात्य रहकर घर में.......।"

"जो कहना है, मुझे कहो। मेरे पूर्वजों की चर्चा करने का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है कारिन्दा जी !"—धैर्य और शांति से, किन्तु वज्र की-सी दृढ़ता से वस्तुपाल ने कहा।

"अरे बाप ! कौन आपके पूर्वजों की चर्चा करता है वस्तुपाल जी ! हमें तो कुँवरपछेड़ा से मतलब है। बोलिए, कितना लिखूँ आपके नाम के आगे ?" कारिन्दा ने कुछ सकपकाते हुए कहा।

"यह कुँवर-पछेड़ा क्या है ?"—वस्तुपाल ने पूछा।

"लो, वस्तुपाल सेठ को अब यह बताओ कि कुँवरपछेड़ा क्या है ? अरे सेठ, सब लोग खुशी-खुशी से दे रहे हैं.......।"

"सो मैं जानता हूँ। गाँव-गाँव में इस बहाने को लेकर जो लूट आप लोगों ने मचाई है वह मुझे मालूम है। गरीब प्रजा से जोर-जबरदस्ती आप द्रव्य ले रहे हैं। लेकिन यदि कोई न देना चाहे तो ?"

"लो सुनो मामा ! आप खुद सुनो। वस्तुपाल सेठ कह रहे हैं कि यह लूट है.......।"

"इस छोकरे को मेरे पास भेजो।"—उपेक्षा भरे स्वर में 'मामा' ने आदेश दिया।

वस्तुपास के पास बैठे हुए कुछ लोगो ने उसे रोकने का प्रयत्न किया। धीरे-से कहा—"व्यर्थ तकरार करने से क्या लाभ वस्तुपाल जी, देना तो पडेगा तो दे क्यो नही देते ?" किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो चाहते थे कि बात कुछ बढे तो ज़रा आनन्द आए। मन मे सब लोग इस ज़बरदस्ती के मामा से खार खाए बैठे थे। किन्तु भय के मारे कोई कुछ कर नही पाता था। अब आज वस्तुपाल ने साहस दिखाया तो उनके मन मे आशा की किरण फूट पडी थी। ऐसे लोगो ने फुसफुसा कर कहा—हद हो गई वस्तुपाल जी ! आप ठीक कहते है, यह लूट नही है तो और क्या है ?"

मामा का गर्जन सुनकर वस्तुपाल स्वय ही अपने स्थान से उठे और सग्रामसिह के सामने जाकर खडे हो गए। बोले—

"कहिए, क्या कहना है ?"

सग्रामसिह आग-बबूला हो रहा था, बोला—

"तुझे धोलके मे रहना है ?"

"हाँ।"

"तो कुँवर-पछेडा देना पडेगा। तेरी यह मज़ाल कि ... ...।"

"ज़बान सम्हाल कर बात करो सग्रामसिह जी ! मेरा नाम वस्तुपाल है... ...।"

"तेरे नाम की ... ..." कहते-कहते सग्रामसिह झपटकर खडा हो गया और उसने अपनी कमर से लटकती हुई सोरठी तलवार म्यान मे बाहर निकाल ली। बैठे हुए लोग थर-थर काँपने लगे। कुछ तो चुप-चाप सीढियाँ उतरकर बाहर चल दिए।

किन्तु वस्तुपाल ने अपनी ओर उठते हुए सग्रामसिह के तलवार वाले हाथ की कलाई अपने दाहिने हाथ मे फुर्ती से जकड ली। कलाई और हाथ मुडने लगे और तलवार छूटकर नीचे गिर गई।

वस्तुपाल के चेहरे पर शात स्मित था और 'मामा' के मुख से क्रोध अथवा कलाई के मरोड की पीडा के कारण झाग निकल आए थे।

वस्तुपाल ने चुपचाप वह मज़बूत सोरठी तलवार नीचे से उठाई और उसे मूठ पर से पकड़कर ज़मीन पर उसकी नोक टिकाकर हलका-सा ज़ोर देकर उसके दो टुकड़े कर दिए। उन टुकड़ों को उठाकर वस्तुपाल ने बाहर राजमार्ग पर फेंक दिया और कहा—

"संग्रामसिंह ! एक बार और अन्तिम बार कहे देता हूँ—यह धोलका है, गुजरात है—सोरठ नहीं है। और याद रखना, मेरा नाम है वस्तुपाल। भूल गए तो यह भूल भारी पड़ेगी।"

यह कहकर वस्तुपाल मुड़कर जाने को तैयार हुए ही थे कि संग्रामसिंह ने अपनी कटार निकालने के लिये हाथ कमर की ओर बढ़ाया। सावधान वस्तुपाल ने गर्दन घुमाकर यह देखा और कहा—

"संग्रामसिंह ! एक बात और याद रखना—वस्तुपाल चारों तरफ देखता है। इस भ्रम में मत रह जाना कि वस्तुपाल की पीठ है तो उसे खबर नहीं होगी। कटार को म्यान में ही रहने दो। यदि वह म्यान से बाहर निकली तो फिर तुम्हारी छाती के अन्दर ही होगी।"

मामा को झाग और पसीने आ गए। वह भौंचक्का-सा दूकान का दरवाज़ा ढूंढने लगा। वस्तुपाल ने मुस्कराते हुए लोगों से कहा—

"मामा को रास्ता तो दो भाई ! ये जाना चाहते हैं।"

संग्रामसिंह तेज़ी के साथ वहाँ से ऐसे गायब हो गया जैसे गधे के सिर से सींग।

अब वस्तुपाल को लोगों ने चारों ओर से घेर लिया और उसके साहस, धैर्य, विवेक, न्यायप्रियता तथा वीरता की प्रशंसा के पुल बांधने आरम्भ कर दिए—

"वस्तुपाल जी ! आपने तो कमाल कर दिया। मामा जैसे दुष्ट आदमी को अच्छा पाठ पढ़ाया।"

"राणा का साला है तो होगा। हमारे वस्तुपाल सेठ क्या किसी से कम हैं ?"

"मामा ने सोचा होगा उनके वणिक भतीजे उनका क्या बिगाड़

सकते है ? लेकिन वस्तुपाल जी ने तो उसके प्राण छोड दिए यही बहुत है।"

"धोलके मे यह अन्याय बहुत दिन से चल रहा था। अब उसका अन्त होकर रहेगा। वस्तुपाल जी ने हमें सगठन और शक्ति का मार्ग दिखा दिया है।"

"हम अपने धोलके मे किसी विदेशी को अब पैर भी नही रखने देंगे।"

ऐसी ही अनेक बातें वह एकत्रित वणिक वर्ग कर रहा था। वस्तुपाल ने उनकी चर्चा को रोकते हुए कहा—

"भाइयो! मैंने वही किया है जो किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को करना चाहिए। अवश्य हम अहिंसक है, किन्तु हम सत्य के पुजारी भी है। सत्य की रक्षा होनी ही चाहिए। यदि कोई अत्याचारी अन्धा होकर कर्म-कुकर्म करने लगे तो उसे जडमूल से विनष्ट कर देना ही हमारा धर्म बन जाता है और उसमे हमारी अहिंसा आडे नही आती। मैंने गरीब किसानो और दूसरे श्रमिको की बात सुनी है। वे बतलाते हैं कि किस प्रकार गाँव-गाँव मैं राज्य के कारिन्दे भेजकर यह सग्रामसिंह उनसे एक न एक बहाने से नित्य ही धन वसूल करता है। किसी के पास खाने के लिए भी हो या नही, पहनने के लिए वस्त्र भी हो या नही, किन्तु कुँवर-पछेडा तो देना ही होगा—क्या यह न्याय है ? इसे कौन नीति की बात कहेगा ? यह सरासर अनीति और अन्याय है और उसे मैं तो जीवित रहने देने वाला नही हूँ।"

"और वस्तुपाल जी! हमने तो सुना है कि ये मामाजी धोलके को लूट-लूटकर अपना वनथली का घर भर रहे हैं। राणा जी को इसकी कोई खबर ही नही।"

"राणा को खबर नही होगी, मुझे है। मैं जान गया हूँ इस सग्रामसिंह के काले कारनामो को। किन्तु अब आप लोग चिन्ता न करें। सग्रामसिंह अब धोलके में अन्धेर मचाने के लिए रह नही

सकेगा।"

"लेकिन, वस्तुपाल जी ! आपने जो किया वह ठीक किया, परन्तु संग्रामसिंह महारानी जेतलवा का भाई है। हम ठहरे वनिए, राणा रुष्ट हुए तो क्या होगा ?"

"होने को क्या है भाइयो ! राणा रुष्ट होंगे इस भय से क्या आप चुपचाप बैठे प्रजा के उत्पीड़न को देखते रहेंगे ? मैं नहीं समझ सकता कि आपकी आत्मा कैसे इसे स्वीकार कर सकती है। अपना स्वार्थ तो पशु भी पूरा कर लेता है, किन्तु मनुष्य क्या केवल खाने और पूंछ हिलाने के लिए उत्पन्न हुआ है ? संकट आता हो तो आए, जीवन जाता हो तो जाए, किन्तु मनुष्य जीवन के गौरव की रक्षा सर्वप्रथम है। उस गौरव को समाप्त करके जिया गया जीवन तो मृत्यु से भी हीन है।"

"हां, ठीक कहते हैं वस्तुपाल जी, आखिर हम भी मनुष्य हैं, धोलके की प्रजा हैं······।"

"हम गुजरात की सन्तान हैं। गुजरात की पुण्य धरित्री ने हमारी नसों में रक्त का संचार किया है। उस रक्त का ऋण चुकाना ही हमारा कर्त्तव्य है। भाइयो ! तन, मन और धन से हमें अपने देश के सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा करने में योग देना चाहिए। मैं तो एक छोटा-सा व्यक्ति हूँ, मेरा छोटा-सा व्यापार है, किन्तु आप लोग तो प्रभु की कृपा से सम्पन्न श्रेष्ठि हैं। यदि हम लोग मिल कर गुजरात के गए हुए गौरव को लौटाने का प्रयत्न करें तो·········तो मैं राणा लवणप्रसाद को जानता हूँ—उनके नेतृत्व में आगे बढ़कर हम गुजरात को देखते-देखते खड़ा कर सकते हैं। किन्तु उसके लिए यह अनिवार्य है कि हम अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को भूल कर देश की मर्यादा का विचार करें और उसकी रक्षा के लिए अपने छोटे-छोटे स्वार्थों का बलिदान दें।"

एक साथ कई लोग वस्तुपाल की यह बात सुनकर बोल पड़े—

"हम अपने गुजरात की सेवा के लिए प्रस्तुत है वस्तुपाल जी ! हम से जो कुछ भी बन पड़ेगा वह हम करेंगे। किन्तु कोई मार्ग दिखाने वाला चाहिए। इतना तो हम भी जानते हैं कि देश उठेगा, देश उन्नति करेगा तो हम भी उठेंगे, हम भी उन्नति करेंगे। देश ही नहीं रहेगा तो हम कहाँ रहेंगे ? अब आप आए हैं तो हमें आशा बँधती है ...।"

"मेरा आना न आना क्या महत्त्व रखता है श्रेष्ठियो ! अन्त करण से आवाज आती है तो वह मूल्यवान होती है। आपके अन्त करण से यदि गुजरात की कराहती हुई आत्मा की आवाजें आपको सुनाई देती है तो वह पर्याप्त है। वस्तुपाल तो गुजरात का पुत्र है, उसका तो रोम-रोम गुजरात के लिए ही है।"

"धन्य, धन्य ! वस्तुपाल जी, आपके विचार महान् है।"

"आज एक महान् उद्देश्य पूर्ति के लिए पहला चरण आप लोगो ने बढाया है, श्रेष्ठिगण ! दृढता से इस मार्ग पर आगे बढते रहे। मुझे विश्वास है यदि आप लोगो ने अपने देश के लिए थोडा-थोडा भी त्याग किया तो देश की काया अवश्य पलटेगी। अच्छा, अब चलूँ, आप लोगों को भी अपना काम देखना होगा।"

कहकर वस्तुपाल दूकान की सीढियो पर से नीचे उतर गए। उनके पीछे-पीछे और लोग भी उतरे और उत्साह से भरे स्वरो मे बात करते हुए अपने-अपने स्थान की ओर चल पडे।

सग्रामसिंह की दो टुकडे हुई मोरठी तलवार मार्ग मे पडी हुई थी। उसकी ओर लोगों ने ऐसी उपेक्षा से देखा जैसे किसी विषधर के दाँत उखाडकर उसे चीरकर फेंक दिया गया हो।

***

तेजपाल चूक गया

दूकान बढ़ाकर वस्तुपाल जब घर पहुँचे तब तक सारे धोलके में मामा वाली घटना की चर्चा फैल चुकी थी। तेजपाल ने जब उड़ती-उड़ती खबर सुनी तो वह तत्काल अपना खड्ग बाँधकर बाजार की ओर चलने के लिए प्रस्तुत हो गया–जाने क्या हुआ हो ? बड़े भाई अकेले हैं और संग्रामसिंह क्रूर है, उसके पीछे रानी की शक्ति का मद भी है।

किन्तु तेजपाल घर के बाहर निकल ही रहा था कि वस्तुपाल आ पहुँचे। भाई को तलवार लेकर तेजी में बाहर झपटते हुए देखकर उन्होंने हँसते हुए कहा–

"किधर धावा हो रहा है तेजू ? कोई गड़बड़ है क्या ?"

"अरे बड़े भाई, मैं तो आपको ही खोजने आ रहा था। सुना है संग्रामसिंह ने बड़ा बखेड़ा किया। सब कुशल तो है न ?"

"सब कुशल है तेजू ! भीतर चल। मैं था वहाँ तब तुझे इतना

घबराने की क्या जरूरत ?"

"लेकिन हुआ क्या ? उस दुष्ट से आप क्यों उलझ बैठे ?"

"दुष्ट से कोई नहीं उलझता तेजू, दुष्ट ही उलझा करता है स्वय अपने कुचक्र मे । सो आज सग्रामसिंह को एक पाठ पढा दिया है ।"

उसके बाद भीतर जाकर उन्होने सारी घटना तेजपाल को सुनाई । ललितादेवी और अनुपमा भी पास खडी यह वर्णन उत्कठापूर्वक सुन रही थी । जब वस्तुपाल चुप हुए तब अनुपमा ने धीरे से कहा—

"चोट खाने पर विषधर और भी भयकर हो जाता है। सावधान रहना चाहिए।"

वस्तुपाल ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"अनुपमा ठीक कहती है तेजपाल ! लेकिन चोट कडी है और सर्प का फन कुचल दिया गया है । इसलिए चिंता नही । लेकिन तेरे लिए एक काम है अब—सग्रामसिंह की आँखो मे झाककर मैंने उसके हृदय की थाह ले ली है, वह कायर है । और अब वह धोलके मे टिकेगा नही, जल्दी से जल्दी भागेगा । हो सकता है अब तक वह भाग भी निकला हो । वह भागे इसम हमें कोई आपत्ति नहीं, उसे यहा से भगाना तो है ही । किन्तु वह भागेगा रानी के आभूषण लेकर क्योकि वह बडा लालची है । रानी जयलता के आभूषण धोलके की सम्पत्ति है । सग्रामसिंह को वह नही ले जाने देना है ।"

"तब क्या करना चाहिए बडे भाई ?

"यह मुझसे पूछना है तेजू ? तेरे और मेरे रहते रानी को ठगकर सग्रामसिंह बच निकलेगा क्या ?"

"नही जाने दूगा । अच्छा, तब मैं चला, समय थोडा है, देखूँ वह लोभी कैसे भाग कर जाता है ।"

"हा जा तेजू, लेकिन सीधे वनथली के मार्ग पर जाना, राजमहल की ओर नही । वहाँ से वह अब तक भाग चुका होगा । देखना, धोलके की सम्पत्ति मे से एक छदाम भी वह लेकर न जाने पाए । बाकी उसके प्राण

न ले लेना, तुझसे मुझे डर लगता है। समझा कि नहीं ?"

"सब समझ गया मैं। चलता हूँ......।" कहकर तेजपाल शीघ्रता से चल दिया। अश्वशाला में से उसने अश्व लिया और उस पर सवार होकर उसे वनथली के मार्ग पर दौड़ा दिया।

संग्रामसिंह ने ठीक वही किया जिसकी कल्पना वस्तुपाल ने की थी। राजमहल में लौटकर आते ही उसने अपनी वहिन रानी जयलता के आभूपणों से भरी मंजूपा निकाली और एक तेज साँडनी पर सवार होकर वह चुपचाप वनथली की ओर भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार वह तेजपाल से लगभग दो घड़ी पूर्व चल निकला था और भागने वाले तथा पीछा करने वाले में फासला वहुत अधिक हो गया था।

किन्तु तेजपाल अद्वितीय अश्वारोही था। वह जिस अश्व पर सवार होता उसे जैसे पंख लग जाते थे। पवन के वेग से उड़ते हुए तेजपाल का अश्व वनथली के मार्ग को चीर रहा था। तेजपाल ने देखा कि मार्ग में धूल पर भागती हुई साँडनी के पैरों के ताजे निशान वने हुए हैं। यह देखकर उसे विश्वास हो गया कि संग्रामसिंह इसी मार्ग से भागा है, और वह वहुत अधिक आगे नहीं निकल पाया होगा। उसने अपने अश्व को संकेत करके उसकी चाल और भी तेज कर दी।

रात घिर आई। चाँदनी की झिलमिल में वन का मार्ग पहचानना कठिन हो जाता है। झाड़ी और झुरमुटों के वीच चारों तरफ पग-डंडियाँ और रास्ते दिखाई देने लगते हैं। किन्तु तेजपाल सावधानी से आगे वढ़ता ही गया। उसके अश्व को आगे भागती हुई सांडनी की गंध अव हवा में मिलने लगी थी और उसने अपनी चाल अव अधिक तेज कर दी थी।

गुजरात की सीमा समाप्त होकर सौराष्ट की सीमा आरम्भ होने जा रही थी। यह देखकर तेजपाल को चिंता होने लगी—क्या संग्रामसिंह आखिर भाग निकलेगा? झुँझलाहट से दाँत पीसकर उसने अपनी

एड़ियाँ घोड़े की पीठ में धँसा दीं। चपल तुरंग अपनी सारी शक्ति लगाकर और भी अधिक तेजी से दौड़ने लगा।

कुछ ही समय बाद ठीक गुजरात और सौराष्ट्र की सीमा पर तेजपाल ने एक साडनी सवार को तेजी से आगे-आगे भागते हुए देखा। प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल गया—अब कहाँ बचकर जाओगे मामा जी ! अब तो पकड़ लिया तुम्हें। चल बेटा, दबाले उछलकर।

झपाटे मारता हुआ अश्व आगे बढ़ा। साडनी भी मामूली नहीं थी, वह भी सधी हुई और तेज थी। अपने स्वामी के संकेत को समझ कर वह भी तीर की तरह आगे चली-जा रही थी।

लेकिन दोनों सवारों के बीच का अन्तर धीरे-धीरे कम हो गया। काफी समीप आ जाने पर तेजपाल ने पुकार कर कहा—

"इस तरह कायरों के समान भागकर क्यों चले जा रहे हो मामा जी ! जरा अपने छोटे भानजे से भी विदाई तो लेते जाओ।"

संग्रामसिंह ने पीछे मुड़कर तेजपाल को देखा। एक बार तो उसका मन हुआ कि वह ठहरकर अपना पीछा करने वाले उस अश्वारोही से दो-दो हाथ कर ही ले। किन्तु उसने वस्तुपाल-तेजपाल के बारे में सुन रखा था। बड़े भाई से उसकी भेंट आज दिन में हो ही चुकी थी। उसकी याद करके फिर उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह छोटे भाई से भेंट करे। अतः उसने तेजपाल की बात का कोई उत्तर न देकर साडनी को और भी तेज दौड़ाने की कोशिश की।

संग्रामसिंह को रुकते हुए न देखकर तेजपाल चिढ़ गया। अपने घोड़े को बढ़ाकर वह साडनी के साथ हो गया और उसे रोकने का प्रयत्न करने लगा। साँडनी और अश्व दम साध कर उस सकरे मार्ग पर साथ-साथ दौड़ रहे थे।

तेजपाल को वस्तुपाल ने कहा था कि संग्रामसिंह के प्राण नहीं लेने हैं, केवल वह जो सम्पत्ति चुराकर ले जा रहा है वही लौटा लानी

है। इसलिए तेजपाल बड़े असमंजस में था कि क्या करे। आखिर वह भागते हुए अश्व की पीठ पर खड़ा हो गया और उछलकर सांडनी की पीठ पर जा कूदा।

तेजपाल ने उछाल भरी अवश्य, और वह सांडनी की पीठ पर पहुँच कर शेर की तरह संग्रामसिंह को दबोच भी अवश्य लेता, किन्तु दुर्भाग्य से ठीक उसी समय जबकि वह अश्व की पीठ पर से उछला उस के अश्व ने अँधेरे मार्ग पर पड़े हुए किसी पत्थर से ठोकर खाई और वह लड़खड़ा गया। इस अप्रत्याशित घटना से तेजपाल अपना लक्ष्य चूक गया और हवा में उछल कर वह पृथ्वी पर आ गिरा। उसका अश्व लड़खड़ा कर फिर संभला और अपने स्वामी के समीप आकर खड़ा हो गया मानो कहता हो–चूक हो गई स्वामी ! क्षमा किया जाऊँ। लेकिन बच कर जायगा कहाँ वह कायर ? आइये अभी उसे दबोचे लेता हूँ।

किन्तु चूक हुई सो हो ही गई। संग्रामसिंह के लिए इतना ही समय पर्याप्त था। परिस्थिति को भाँप कर उसने वनथली का सीधा मार्ग तुरन्त छोड़ दिया और अपनी सांडनी को जंगल की ओर एक संकरी पगडंडी पर ठेल दिया। तेजपाल ने उसकी यह चाल देखी और निराशा से वह व्याकुल हो गया। यह प्रदेश संग्रामसिंह का अपना प्रदेश था और खूब जाना-समझा हुआ, जबकि तेजपाल उस मार्ग से नितान्त अपरिचित था। अब कोई आशा नहीं थी कि वह उसका पीछा करके उसे फिर से पकड़ सके।

असफलता की पीड़ा से मन ही मन कुढ़ता हुआ तेजपाल आखिर अपने अश्व पर सवार हुआ और उसे उसने वापिस धोलके के मार्ग पर मोड़ दिया। अश्व बड़ी कठिनाई से पीछे लौटा, उसका मन आगे भागती हुई सांडनी का पीछा करने का हो रहा था। अतः वह बड़े ही बेमन से एक-एक पैर उठाकर धोलके की ओर बढ़ने लगा। तेजपाल भी अपने विचारों में खो गया था, उसे कोई चिन्ता नहीं थी कि अब अश्व धीरे चलता है कि तेज। वह सोच रहा था कि भाई के सामने कौनसा मुँह

लेकर जायगा और क्या कहेगा ? और खैर, भाई तो उदार है, क्षमा कर ही देगा, किन्तु वह चपल अनुपमा तो उसे अवश्य ही खूब कड़वी-तीखी सुनाएगी—कहेगी कि आ गए बुद्धू लौट कर घर को ?

इसी उलझन मे पडे हुए तेजपाल बहुत रात गये अपने घर पहुँचा। घर मे सब लोग जागते हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अनुपमा बडी चिन्तित प्रतीत हो रही थी। उसे खाली हाथ ही लौटा देखकर वस्तुपाल ने पूछा—

"क्या हुआ तेजू ? इतनी देर कैसे की और तू खाली हाथ ही कैसे लौट आया ?"

एक लम्बा श्वास फेंककर तेजपाल चौकी पर बैठता हुआ बोला—

"मैं हार गया, बडे भैया ! सग्रामसिह बच निकला।"

"तेजपाल कभी हार नही सकता। क्या हुआ सो ठीक-ठीक बता।"

"मैने उसे गुजरात और सौराष्ट्र की सीमा पर जा पकडा। वैसे वह काफी आगे निकल चुका था। लेकिन ठीक उसी समय जबकि मैं अपने अश्व पर से उछलकर उसकी गर्दन दबोच लेने वाला था मेरा अश्व पत्थर से ठोकर खाकर लडखडा गया और मैं निशाना चूक गया। फिर तो वह कायर सीधा रास्ता छोड कर जगल मे विलीन ही हो गया।"

सुनकर कुछ क्षण तक वस्तुपाल मौन रहकर विचार करते रह गए। फिर उन्होने कहा—

"तेजू ! इस तरह तू चूक करेगा तो फिर गुजरात का भविष्य सुधर चुका।"

तेजपाल लज्जा से मानो भूमि मे गड जाने को हुआ। कुछ भी उत्तर उससे देते नही बना। वस्तुपाल ने ही फिर कहा—

"किन्तु सयोग की ही बात है। तेरा दोष तो कोई है नही। लेकिन अब प्रतिज्ञा कर कि इस चूक का बदला ब्याज समेत चुकाएगा।"

अब तेजपाल का थोड़ा साहस लौटा क्योंकि बड़े भाई से तो क्षमा मिल गई थी। उसने उत्साहपूर्वक कहा—

"प्रतिज्ञा करता हूँ बड़े भैया, कि उस संग्रामसिंह को उसकी सारी रत्न-मंजूषाओं सहित बाँधकर वनथली से धोलके लाऊँगा यदि आप ऐसी आज्ञा देंगे तो।"

"ठीक है, ठीक है। अब अभी तू आराम कर, खा-पी ले। फिर समय आने पर सब देख लिया जायगा।"

यह कहकर वस्तुपाल उठे और तेजपाल की पीठ थपथपा कर अपने कक्ष की ओर चले गए। उनके साथ ही ललितादेवी भी वहाँ से चली गई।

अब वहाँ रह गई अनुपमा जिससे कि तेजपाल को सबसे अधिक भय था। अपने प्रतापी पति की आज की इस असफलता से वह वीर और विदुषी नारी कुढ़ रही थी। एकांत मिलने पर वह व्यंगपूर्वक बोली—

"घोड़े से गिर जाने के कारण आपके घुटनों में चोट लग गई होगी। लाइये, दवा लगा दूँ।"

तेजपाल ने बड़ी कठिनाई से अपनी पत्नी से आँख मिलाई और कहा—

"अब क्यों जले पर नमक छिड़कती है अनुपमा! वह कायर ज़रा रुका भी तो नहीं......।"

"हाँ जी, सूरमा तो एक आप ही हैं बड़े! सो तो खाली हाथ हिलाते आप लौटे हैं इसी से प्रकट हो रहा है।"

"अब वह अँधेरे में भाग ही खड़ा हुआ तो मैं क्या करता भला? घोड़े ने ठोकर न खाई होती तो......।"

"और इसी घुड़सवारी का अभिमान है आपको? इसी तरह यदि मौके पर ठोकरें खाते रहे तो हो लिया बस।"

अब तेजपाल ने भी नाटक आरम्भ किया। मुँह पर क्रोध की

भगिमा लाकर वह उठ खडा हुआ और बोला—

"अच्छा, तुझे इतना ही रन्ज है तो ले मैं चला। अब धोलके की सारी सम्पत्ति सहित सग्रामसिंह को पकड कर लाऊँगा तभी तुझे मुँह दिखाऊँगा।"

कहते-कहते वह सचमुच द्वार की ओर बढ चला। यह देखकर अनुपमा का सारा बनावटी क्रोध काफूर हो गया और उसने दौड कर अपने पति की बाँह थाम ली। बोली—

"अरे अरे, क्या करते हो? क्षमा करो मुझे। अब इस समय भला कहाँ जाओगे? चलो भीतर कक्ष म। हाथ मुँह धो लो। खा-पी लो। बहुत रात गई। देख लिया जाएगा वनथली वालो को।"

बडी मधुर मनुहार के साथ अनुपमा तेजपाल को विश्राम के लिए भीतर ले गई।

***

रानी की आत्मग्लानि

रानी जयलता राजप्रासाद के उद्यान में चम्पा-कुंज में डाले गए एक हिंडोले पर धीरे-धीरे झूल रही थी। हिंडोले की पाटी पर उसी के पास एक स्वर्ण-पिंजर में उसकी प्यारी सारिका बैठी थी जिसे वह एक-एक कर दाना चुगा रही थी। सारिका दाना चुग लेती थी और बीच-बीच में बकर-बकर बोलती जाती थी—राणा जी······राणा जी ······राणा जी !

बार-बार सारिका के मुख से राणा जी की पुकार सुन कर रानी जयलता ने बनावटी क्रोधपूर्वक उससे कहा—

"अब चुप भी रह मुँहजली ! पूरे सप्ताह भर से तो तेरे राणा जी ने दर्शन तक नहीं दिए हैं और तू लगी है उनकी रट लगाने।"

पता नहीं सारिका इस फटकार को कितना समझ पाती और कितना नहीं, किन्तु वह कुछ क्षण गर्दन मरोड़कर रानी को बड़े प्यार

से देखती और फिर वोल पडती—

राणा जी······रानी जी··· ···राणा जी······रानी जी·········
राणा जी······रानी जी !

यह सुनकर रानी जयलता हँस पडती और कहती—

"तेरी जबान कभी रुकेगी नही श्यामा ! देख लिया वडा प्यार करती है तू अपने राणा जी और रानी जी को। अब चुपचाप खा ले।"

यह कहकर वह अपनी प्रिय सारिका श्यामा को और दाने चुगने के लिए डाल देती। सारिका दाने चुगने लगती।

इसी प्रकार एकाकिनी रानी अपना समय काट रही थी। सामने कुछ ही कदम की दूरी पर स्वच्छ-निर्मल जल से भरा हुआ छोटा-सा ताल था जिसमे नाना प्रकार के पक्षी तैर रहे थे। उनके कलरव का मद स्वर वातावरण मे सगीत की सृष्टि कर रहा था।

सहसा सारिका वोल पडी—

मगला······मगला·· · मगला।

मगला रानी जयलता की प्रमुख परिचारिका थी। वह किसी कार्य विशेष से रानी को चम्पा-कुज मे झूला झूलती हुई छोडकर भीतर प्रासाद मे गई हुई थी। वही अब लौट आई थी। उसी को देखकर सारिका उसका नाम पुकार उठी थी।

मगला ने वडी तेजी मे उस कुज मे प्रवेश किया। वह कुछ घवराई हुई सी दीख रही थी और दौडकर आने के कारण उसकी श्वास वेग से आ-जा रही थी। उसे इस हालत मे देखकर रानी ने पूछा—

"क्या वात है री मगला ! ऐसा हाँफ क्यो रही है ! क्या हुआ तुझे ?"

यद्यपि उस कुज मे रानी तथा स्वय उसके किसी अन्य व्यक्ति के उपस्थित होने की कोई सभावना नही थी फिर भी मगला ने स्वभाव-वश एक वार चारो ओर दृष्टि घुमाई और उत्तर दिया।

"वडी विस्मयकारी घटना हुई है स्वामिनी ! ऐसा तो पहले कभी

हुआ नहीं।"

रानी चिन्तित हुई। तुरन्त बोली--

"क्या हुआ मंगला ? जल्दी से बताती क्यों नहीं ?"

"मैं तो उड़ती हुई खबर सुनकर आई हूँ महारानी जी, लेकिन खबर सच्ची है। किन्तु मुझे तो भरोसा ही नहीं होता......।"

"पर आखिर हुआ क्या है, कुछ बताएगी भी या यूँ ही बकती चली जायगी ?"

"आज आपके भाई संग्रामसिंह जी बाजार की तरफ निकल गए थे। राज्य के श्रेष्ठियों से कुँवर जी के जन्म की खुशी में से कुँवरपछेड़ा एकत्र कर रहे थे। मैंने तो जैसा सुना है वैसा ही कहती हूँ रानीजी !"

"ठीक है तो। फिर क्या हुआ ?"

"नगरसेठ की दूकान पर सब श्रेष्ठि एकत्र हुए थे। सभी ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार राशि राज्य को देना स्वीकार किया। किन्तु कोई एक सिरफिरा श्रेष्ठि है वस्तुपाल। अभी धोलके में सुनते हैं नया-नया ही आया है। मुझे तो वह पागल मालूम पड़ता है, वरना संग्रामसिंह जी के मुँह पर उन्हें लुटेरा कह डालता......?"

"लुटेरा ? मेरे भाई को उसने लुटेरा कहा ?"

"आप ही सोचिए वह पागल हुआ कि नहीं ! लुटेरा कहना ही तो हुआ, कहने लगा--आपने धोलके में लूट मचा रखी है। आप सब लोगों से जबरदस्ती रुपया वसूल कर रहे हैं। गरीब किसानों और मजदूरों तक को आपने नहीं छोड़ा है। मैं यह कुँवरपछेड़ा नहीं दूँगा और इस लूट को समाप्त करके मानूँगा।"

इतना कहकर रानी के चेहरे पर होती हुई प्रतिक्रिया को ध्यान से देखती हुई परिचारिका चुप हो गई। रानी के कानों में पिछले कुछ दिनों से यह भनक तो पड़ी थी कि लोग संग्रामसिंह की कठोरता से मन ही मन रुष्ट हैं, किन्तु उसे स्वप्न में भी यह कल्पना तो नहीं थी कि धोलके में रहकर कोई व्यक्ति उसके सगे भाई के मुँह पर ऐसी साफ-साफ और

कठोर बात कह सकेगा।

रानी विस्मय मे पड गई थी कि दवी-कुचली निरीह प्रजा मे इतना साहस कहां से आ गया ? वह कौन श्रेष्ठि है वस्तुपाल ? क्या सचमुच ही वह पागल है ? लेकिन फिर क्या हुआ ? अवश्य ही कोई अनर्थ हुआ होगा— सग्रामसिह यह सुनकर चुप बैठने वाला है भला ?

और यह सोचकर उसने फिर उत्कठापूर्वक पूछा—

"फिर क्या हुआ मंगला ? जल्दी से बताती क्यो नही ?"

"सुना है कि सग्रामसिह जी नोध से आगबबूला हो गए। उन्होंने अपनी तलवार निकाल कर······।"

"हे भगवान ! उस बेचारे श्रेष्ठि को मार डाला ? ओह, उसने इतना बडा अपराध तो नही किया था······।"

"नहीं महारानी जी ! मार नही डाला। लेकिन अवश्य ही वे उसे मार डालते। किन्तु वह श्रेष्ठि तो सेर को सवा सेर निकला। उसने सग्रामसिह जी की कलाई ऐसी मरोडी, ऐसी मरोडी कि कैसे बताऊँ ? फिर उसने सग्रामसिह जी की तलवार के दो टुकडे करके सडक पर फेंक दिए।"

"क्या कहती है तू ? क्या यह सभव है ? भाई के हाथ से तलवार छीनकर उसके टुकडे कर देने वाला कोई श्रेष्ठि धोलके मे हो सकता है ? तूने ऊटपटाग खबर सुनी है मगला !"

"नही महारानी जी ! मैं सब ठीक-ठीक सुनकर आ रही हूँ। सचमुच ऐसा ही हुआ। उसके बाद तो सग्रामसिह जी चुपचाप वहाँ से खिसक आए। मुझे तो स्वय इस घटना पर भरोसा नही होता है·······।"

कुछ क्षण विचार मे डूबी रहकर रानी ने मगला को आदेश दिया—

"तू जाकर देख भाई कहाँ है ? उन्हे शीघ्र मेरे पास बुलाकर ला, इसी क्षण।"

"अभी बुलाए लाती हूँ।"—कहकर मगला उल्टे पाँव दौड गई।"

सारिका फिर बोली—

राणा जी······राणा जी ······राणा जी !

लेकिन इस बार रानी जयलता ने उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। वह चिन्तित थी। चुपचाप झूले पर से उठकर वह कुंज में इधर-उधर टहलने लगी। उसे लग रहा था कि इस समय राणा वीरधवल को धोलके में होना चाहिए था। न जाने यह घटना कैसा मोड़ ले ?

काफी देर दौड़-धूप करके, सारा राजप्रासाद छानकर मंगला रानी के पास लौट ग्राई। उसे देखकर रानी ने आतुरता से पूछा—

"भाई नहीं आए ?"

"वे मिले ही नहीं महारानी जी।"

"मिले नहीं ? तब कहाँ गए ? तूने सब जगह अच्छी तरह देखा ?"

"सारा महल छान मारा है मैंने। सबसे पूछ भी लिया। लेकिन किसी ने उन्हें देखा ही नहीं।"

"अजीब बात है, आखिर वे गए कहाँ होंगे ? राजमहल में तो वे अवश्य आए ही होंगे। जा तो मंगला, तू महल के मुख्य द्वार पर जाकर रक्षकों से पूछ कि क्या उन्होंने संग्रामसिंह जी को आते हुए देखा था।"

"ओह, केवल उनसे ही पूछना मैं भूल गई। मैं अभी दौड़ कर पूछ आती हूँ, लेकिन राजमहल में तो वे कहीं हैं नहीं इतना निश्चित है······।"

"तू जा जल्दी, पूछकर ग्रा।"

द्वार-रक्षकों से पूछताछ करने पर मंगला को संग्रामसिंह का सुराग मिला। वह तेजी से लौटकर रानी के पास आई ग्रौर बताया—

"गजब हो गया महारानी जी ! रक्षकों ने बताया है कि संग्रामसिंह जी राजमहल में ग्राए थे। किन्तु फिर थोड़ी देर के बाद एक सांडनी पर सवार होकर वे तेजी से बाहर निकल गए।"

"गए कहाँ ?"

"यह किसी को पता नही ।"

"उन्होने किसी से कुछ कहा नही ?"

"कुछ भी नही, किसी से नही ।"

रानी जयलता बडे असमजस और विस्मय मे पड गई । वडे राणा नही, राणा नही, सग्रामसिंह था सो वह भी इस प्रकार कही चला गया और ऐसी गम्भीर घटना के घटित होने के पश्चात्, इतने रहस्यमय रूप से ? अब वह अकेली क्या करे ? यदि सग्रामसिंह ने कोई तूफान खडा कर दिया तो बुरा होगा । यदि प्रजा बिगड उठी और विद्रोह पर उतर आई तो लेने के देने पड जायेंगे ''' '।

रानी उलझन मे पडी थी ।

सारिका पुकार उठी—

राणा जी ' ' राणा जी ''' राणा जी !

सहसा एक विचार रानी को आया—राणा को तुरन्त समाचार भेजकर पाटन से बोलके बुलाना होगा । मन ही मन इस विचार को जागृत करने के लिए उसने अपनी प्रिय सारिका को धन्यवाद दिया और मगला से कहा—

"फौरन किसी आदमी को पाटन समाचार ले जाने के लिए तैयार करके मेरे पास भेज । मैं भीतर अपने कक्ष मे हूँ । जा जल्दी ।"

रानी चपा कुज को छोडकर महल मे चली गई । मगला ने सारिका का पिंजरा उठाया और दूत प्रस्तुत करने की व्यवस्था के लिए चल पडी ।

महल मे अपने निजी प्रकोष्ठ म जब रानी जयलता पहुँची तो वहाँ उसने जो कुछ देखा उसे देखकर आश्चर्य मे उसकी आँख फटी-सी रह गई । उसकी रत्नाभूषणा की मजूषा के कपाट खुले पडे थे और सदा आकठ भरी रहने वाली उस मजूषा का तल दिखाई पड रहा था । एक सामान्य-सी मुद्रिका तक उसके किसी कोने मे भी नही थी ।

रानी ने यह देखा और सोचा—तो धोलके की प्रजा झूठ नहीं कहती थी। उसका भाई सचमुच ही एक नीच, लोभी लुटेरा ही निकला! सीमा है उसकी नीचता की कि न केवल अपने धोलके की प्रजा को ही लूटा वल्कि वह अपनी सगी वहिन को भी लूट कर चोरों की तरह भाग गया। मंजूषा की चावी उसी के पास थी। वह महल में आया और चोरी करके चुपचाप भाग गया। अपनी वहिन की सम्पत्ति पर इस तरह डाका डालते हुए उसके हाथ गलकर गिर नहीं गए?

सोरठी राजपूतनी का खून खौल उठा। घवराहट का स्थान कठोरता और क्रोध ने ले लिया। उसने सोचा—सम्पत्ति तो आती और जाती रहती है, किन्तु उसका सगा भाई आज न केवल अपना वल्कि अपनी वहिन का तथा राणा वीरधवल का मुँह काला कर गया था। धोलके की प्रजा को जव इस तथ्य का ज्ञान होगा तो वह संग्रामसिंह के मुँह पर थूकेगी। इससे क्या राणा और रानी का भी अपमान नहीं होगा?

सोचती-सोचती वह शय्या पर आकर वैठ गई। कुँवर नींद में था। रानी उसका कोमल, सुन्दर मुख देखती हुई ठगी-सी वैठी रही।

कुछ ही देर वाद मंगला ने कक्ष में प्रवेश किया। उसके पीछे एक सन्देशवाहक भी कक्ष के भीतर आया। उन्हें देखकर रानी ने सन्देशवाहक से कहा—

"तुम विश्वासपात्र सेवक हो। धोलके में आज जो घटना घटी है वह तुमने सुनी?"

"हाँ महारानी जी! वड़े विस्मय की वात……।"

"इसी क्षण पाटन के लिए प्रस्थान करो। राणाजी को खोजकर उन्हें इस घटना से अवगत कराओ और कहो कि मैंने उन्हें तुरन्त यहाँ वुलाया है।"

"जो आज्ञा महारानीजी!"—कहकर सिर झुकाकर सन्देशवाहक मुड़कर जाने को हुआ कि रानी ने फिर कहा—

"एक बात और भी राणाजी से कह देना। कहना कि मग्रामसिंह चोर है और लुटेरा है। *वह अपनी बहिन के सारे रत्नाभूषण चुराकर वनथली भाग गया है।"*

यह सुनने के साथ ही मगला तथा सदेशवाहक की दृष्टि रानी की खुली हुई खाली मजूषा पर गई। अब तक दोनो मे से किसी ने उसे देखा नही था। देख कर मगला के कठ मे से एक चीख निकलते-निकलते बची और सदेशवाहक ने दुख और लज्जा से अपना सिर झुका लिया।

"तुम्हारा नाम क्या है?"—रानी ने सदेशवाहक से पूछा।

"खेमा है, महारानी जी!"

"खेमसिंह! दुख करने की कोई बात नही। यह घटना धोलके की प्रजा को मालूम होनी ही है—होने दो। मेरी प्रजा मेरे भाई के मुँह पर थूकेगी—थूकने दो जाओ।"

चुपचाप सिर झुकाकर खेमसिंह कक्ष से बाहर निकल गया। रानी के मुख पर वज्र की-सी कठोरता छाई हुई थी। मुँहलगी मगला ने अपनी रानी का यह रूप पहले कभी नही देखा था। वह विस्मय मे अवाक् होकर रानी के दीप्त चेहरे को देखती रह गई।

***

परीक्षा और परिणाम

खेमसिंह ने अश्वशाला से छाँटकर एक अच्छा अश्व लिया और वह अपनी यात्रा पर चल पड़ा। धोलके के पाटन दरवाज़े के समीप ही उसका मकान था। अतः वह नगर से बाहर निकलने के पूर्व एक चक्कर अपने घर का लगा आया।

घरवाली से उसने कहा--

"राजकार्य से पाटन जा रहा हूँ। चिन्ता नहीं करना। कल शाम तक तो वापिस लौट आऊँगा।"

"अच्छी बात है, लेकिन राजकार्य का क्या भरोसा; कहीं राणा ने परभारे ही कहीं और भेज दिया तो?"

"तो क्या हुआ? कार्य होगा वह तो करना ही होगा न! तुझे चिन्ता न हो इसलिए बताए जाता हूँ।"

"वह तो ठीक है। मगर भोजन तो कर लो।"

"अब भोजन करने की फुरसत मुझे नही है। काम बड़ी जल्दी का है। मैं चला।"

"कमाल करते हो जी तुम ! क्या भूखे ही पाटन तक दौड़ते चले जाओगे ? ऐसी भी क्या जल्दी है ?"

"जल्दी है तभी तो कहता हूँ। एक मिनिट भी रुक नही सकता। तुझे सूचना देने इधर से निकल आया हूँ बस।"

"हद हो गई तुम्हारी जल्दी की। भोजन बना रखा है, दो ग्रास खा ही जाओ न !"

"अरे भागवान कहा न कि बहुत जरूरी कार्य है और बहुत जल्दी है। लेकिन तू नही मानती तो जल्दी से पोटली मे कुछ बाँध दे। मार्ग मे कहीं अश्व को पानी पिलाऊँगा तो दो ग्रास मैं भी खा लूँगा। ला जल्दी कर।"

"अभी लाई। जरा घोडे से उतर कर सुस्ता तो लेते।"

"लो, और सुनो इसकी बातें, अभी यात्रा आरम्भ भी नहीं हुई और यह कहती है कि सुस्ता लूँ। चल, चल, जल्दी से ला दे जो लाना हो। मैं अपने घोडे पर ही अच्छा बैठा हूँ।"

खेमसिंह सचमुच अपने अश्व से नीचे भी नही उतरा। द्वार के बाहर ही, दौड़ लगाने के लिए उत्सुक, अश्व को कठिनाई से थामे सवार रहा।

घरवाली कुछ बडबडाती हुई जल्दी से भीतर चली गई।

एक पोटली मे खाने का सामान बाँधकर वह शीघ्र ही लौट भी आई और पोटली अपने पति को देते हुए बोली—

"अब जा तो रहे हो हो, पाटन से हमारे लिए चौडे पल्ले वाली एक ओढनी लेते आना—बुन्दियो वाली।"

पोटली को घोड़े की जीन से बाँधते हुए खेमसिंह ने बनावटी क्रोध से उत्तर दिया—

"तुझे जब देखो तब कपडे-गहनो की ही फिकर लगी रहती है।

ये ले आना जी, वो लेते आना जी, उधर महारानी के सारे आभूषण ………।"

कहते-कहते खेमसिंह सँभल गया। उसने अपना यह वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। उसे ध्यान आ गया कि राज-रहस्यों को बिना आज्ञा प्रकट कर देना कभी-कभी भयंकर परिणाम ला सकता है। और फिर वह तो राजा का विश्वासपात्र संदेशवाहक है, उससे ऐसी भूल हो जाना अक्षम्य अपराध होगा।

उसकी घरवाली ने उस अधूरे वाक्य को सुना। उसकी उत्सुकता जागी कि रानी के आभूषणों के बारे में उसका पति क्या कहने जा रहा था और कहता-कहता अचानक रुक क्यों गया। उसने पूछा--

"क्या कह रहे थे जी ? रानी के आभूषण ……।"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। समय मिला तो तेरी चौड़े पल्ले वाली, बुन्दियों वाली ओढ़नी लेता आऊँगा।"

यह कहकर फिर खेमसिंह रुका नहीं। उसने अपने अश्व को पाटन दरवाजे की ओर मोड़ा और सरपट दौड़ा दिया।

खेमसिंह की घरवाली तब तक अपने घुड़सवार पति को देहरी पर खड़े होकर देखती रही जब तक वह गली के मोड़ पर अदृश्य नहीं हो गया। उसके बाद वह चुपचाप घर के भीतर चली गई।

पाटन पहुँचने के बाद खेमसिंह सबसे पहले सीधा राजमहलों की ओर गया। वहाँ उसने पूछताछ की तो पता चला कि राणा लवणप्रसाद और राणा वीरधवल राजगुरु कुमारदेव के आश्रम में हैं। वह तुरन्त उस ओर चला गया।

आश्रम के बाहर ही उसे एक ब्रह्मचारी मिल गया। उसे नमस्कार करके उसने पूछा—

"महामण्डलेश्वर राणा लवणप्रसाद यहाँ हैं क्या ?"

ब्रह्मचारी ने खेमसिंह को ध्यान से देखा। खेमसिंह धूल में भरा हुआ था, उसके अश्व के मुख से लम्बी दौड़ तेजी से करने के कारण

भाग निकल रहे थे। उसने पूछा—

"तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो ?"

"धोलके से आया हूँ रानी जयलता का सन्देश लेकर। बड़ा आवश्यक कार्य है। यदि राणा यहाँ हो तो कृपया शीघ्र उन्हें सूचित करने का कष्ट करें ब्रह्मचारी जी !"

"देखता हूँ, मैं अभी बाहर से आया हूँ, मुझे ज्ञात नहीं कि राणा यहाँ है अथवा नही। आप एक क्षण रुकें।"

यह कहकर वह ब्रह्मचारी भीतर आश्रम मे चला गया। खेमसिंह अपने अश्व पर सवार बाहर ही रुका रहा।

कुमारदेव की कुटी मे दोनो राणा बैठे हुए राजगुरु से वार्तालाप कर रहे थे। सोमेश्वर भी वहाँ था। ब्रह्मचारी ने आकर कहा—

"धोलके से कोई संदेशवाहक आया है। रानीजी ने भेजा है। बडी तेजी से आया प्रतीत होता है और कहता है सन्देश बडा आवश्यक है। आज्ञा हो तो उसे यहाँ भेज दूँ ?"

"शीघ्र भेजो।"—कुमारदेव ने आज्ञा दी। ब्रह्मचारी लौट गया। उसके चले जाने के बाद वे फिर बोले—"मुझे लगता है कि अब घटनाएँ तेजी से घटित होने लगी है। ठीक नही कह सकता किन्तु कोई नैसर्गिक संकेत मुझे ऐसा कहता अवश्य है। बापू ! आपको धोलके से आए कितने दिन हुए ?"

"मुझे आए तो एक माह से ऊपर ही हुआ होगा। लेकिन वीरधवल तो अभी आया था, कोई सप्ताह भर हुआ होगा।"—राणा लवणप्रसाद ने कहा।

"एक सप्ताह तो बहुत होता है बापू ! देखें क्या सन्देशा लाता है वह व्यक्ति।"

कुमारदेव ने इतना कहा उसी समय खेमसिंह ने कुटिया मे प्रवेश किया। उसने कुटिया मे उपस्थित सभी व्यक्तियो को सम्मान सहित प्रणाम किया और आदेश की प्रतीक्षा मे मौन खडा रह गया।

राणा लवणप्रसाद ने कहा—

"अरे तू है खेमा ! क्या संदेश लाया है ?"

खेमसिंह ने कुटिया में चारों ओर एक त्वरित दृष्टि फेंकी और सोमेश्वर की ओर देखकर वह क्षण भर हिचक में पड़ा रहा। इसे लक्ष्य करके राणा लवणप्रसाद ने कहा—

"चिन्ता न कर खेमा, यहाँ पराया व्यक्ति नहीं है। जल्दी बोल क्या समाचार हैं ?"

"अन्नदाता ! महारानीजी ने आपको और छोटे राणाजी को तुरन्त धोलके बुलाया है। वे बहुत घबरा रही हैं····।"

"मगर ऐसी बात क्या हुई ? सब कुछ ठीक-ठीक पूरी तरह से बता।"

इसके बाद खेमसिंह ने पूरी घटना का सविस्तार वर्णन किया कि किस प्रकार संग्रामसिंह ने धोलके की प्रजा से कुँवरपछेड़ा वसूल करना चाहा, किस प्रकार वस्तुपाल श्रेष्ठि ने उसे चुनौती दी और उसका मान-मर्दन किया और किस प्रकार अन्त में वह रानी के तमाम रत्नाभूषण लेकर चुपचाप वनथली भाग गया। अन्त में उसने यह भी कहा—

"अन्नदाता ! मैं पाटन के लिए रवाना होते-होते देख आया हूँ कि धोलके की प्रजा में असंतोष फैल गया है। लोग दो-दो चार-चार के झुण्ड में इकट्ठे होकर बातें करते हैं और कहते हैं कि राणाजी को न्याय करना पड़ेगा, संग्रामसिंहजी ने धोलके की प्रजा को खूब लूटा है, अब यह लूट और अधिक दिन नहीं चल सकती, संग्रामसिंहजी को वापिस वनथली भेजना होगा, आदि-आदि अनेक प्रकार की बातें लोग करते हैं अन्नदाता। उन्हें अभी पता नहीं है कि संग्रामसिंहजी तो कुंवरपछेड़ा वाली घटना के बाद खुद ही धोलका छोड़ गए हैं।"

घटना का वर्णन सुनकर सब लोग विस्मय में डूबे रह गए। कुछ क्षण पश्चात् राजगुरु कुमारदेव ने खेमसिंह से कहा—

"तुम बाहर जाकर अब कुछ विश्राम करो। तुम्हारे लिए जो आदेश होगा वह बता दिया जायगा।"

खेमसिंह सबको प्रणाम करके कुटिया से बाहर चला गया।

राणा वीरधवल क्रोध से आगबबूला हो रहे थे। उन्हें संग्रामसिंह पर क्रोध था कि वह अपनी सगी बहिन को लूट ले जाने का नीच कर्म कर सका और उसे वस्तुपाल नाम के उस श्रेष्ठि पर भी क्रोध आ था कि राणा की सत्ता को चुनौती देने वाला यह बनिया धोलके में से आ गया। उन्हें अब तक वस्तुपाल का परिचय प्राप्त नहीं हुआ।

"बापू ! उठिए, चलिए धोलके। मुझे खबर नहीं थी कि ामसिंह ऐसी हरकत कर रहा है। उसे तो पाठ पढ़ाना ही पड़ेगा। : मुझे इस वस्तुपाल को भी देखना है। धोलके की प्रजा में विद्रोह चिनगारी फूँकने वाला यह श्रेष्ठि कहाँ से आया है ?" राणा धवल ने अपने पिता से कहा।

किन्तु महामण्डलेश्वर राणा लवणप्रसाद तो जैसे पत्थर की तरह होकर बैठे थे। वे कुछ भी बोले नहीं। केवल उनके मुख पर एक ीव-सी सतुष्टि तथा आनन्द का भाव छाया हुआ था। इस भाव को ल राजगुरु कुमारदेव ही लक्ष्य कर सके। राणा वीरधवल तो अपने ा के इस मौन का कुछ भी अर्थ नहीं समझ सके। वे कभी अपने ा और कभी कुमारदेव की ओर देखते रह गए।

अन्त में कुमादेव ने कहा—

"क्यों बापू ! क्या सोच रहे हैं आप ? मैंने कहा था न कि घटनाएँ अब ी से घटित होने लगी है, ऐसा मुझे आभास होता है। सच था न ?"

"हाँ देव ! सच था।"

महामण्डलेश्वर ने इतना ही कहा और फिर चुप्पी मार गए।

कुमारदेव ने ही फिर पूछा—

"तब क्या विचार कर रहे हैं अब आप बापू !"

"परीक्षा हो गई, देव !"

"परिणाम ?"

"वही जैसी आशा थी। आखिर आपका शिष्य है वस्तुपाल, भला वह अनुत्तीर्ण हो सकता था ?"

"महारुद्र की कृपा। गुजराज के दिन फिरें तो इन बूढ़ी आँखों की जलन शांत हो।"

"गुजरात का अमात्य आ गया है देव ! अब गुजरात के दिन पलटने में देर नहीं होगी।"

सोमेश्वर भी सब जानता था। वह चुपचाप बैठा सन्तोष की साँस ले रहा था। अब वह पहले जैसा बातूनी ब्रह्मचारी नहीं रहा था। गम्भीर, विद्वान्, कवि-पंडित हो गया था। केवल राणा वीरधवल की समझ में यह मामला ठीक से नहीं आ रहा था। कौनसी परीक्षा ? कैसा परिणाम ? कौन अमात्य ? उन्होंने उत्सुकता से पूछा—

"आप लोग कैसी रहस्यमयी बातें कर रहे हैं देव ! मेरी तो कुछ समझ में आया नहीं। क्या कोई ऐसी बात है जो मुझसे भी छिपाने की है ?"

"शिव-शिव", कुमारदेव ने उत्तर दिया, "आपसे क्या छिपाना है छोटे राणा ? और यह तो किसी से भी छिपाने की बात नहीं—सारे आर्यावर्त्त को ढोल पीटकर बता देने की बात है कि गुजरात की भाग्यश्री ने करवट ले ली है और वह जाग उठी है। अब कोई इस भ्रम में न रहे कि वह गुजरात की ओर आँख उठा सकता है ! अब कोई गुजरात के गौरव पर चोट करने का साहस न करे ! अब कोई अभागा मेरे सोमनाथ के तीसरे नेत्र की महाग्नि से भस्म होने के लिए गुजरात की सीमा में चरण न रखे !"

राणा वीरधवल विस्मय से वृद्ध राजगुरु का दीप्त चेहरा देखते रह गए। राजगुरु बोलते चले गए—

"वर्षों से एक साध अपने हृदय में पाल रहे थे हम, छोटे राणा ! मैं और राणा लवणप्रसाद। वह साध थी अपने गिरे हुए गुजरात को उठाकर फिर से खड़ा करने की। उसके लिए समय की प्रतीक्षा थी—

और प्रतीक्षा थी वस्तुपाल की। आपने देखा कि वस्तुपाल आ गया है। राजाओं की सत्ता को चुनौती देता हुआ, अन्याय के विरुद्ध अपनी अकेली आवाज उठाता हुआ, अनीति के खड्ग को खड-खड करता हुआ, निराशा के अन्धकार मे साहस की मशाल बनकर गुजरात का अमात्य वस्तुपाल आ गया है, छोटे राणा ! हमें इसी घडी की तो प्रतीक्षा थी। वस्तुपाल स्वय ही एक फौलाद की तलवार था। मैंने उसे बडे श्रम से सान पर चढाकर उसमे धार दी है। हमे उस तलवार की परीक्षा करना शेष था कि वह कैसी काट करती है। उसकी काट का एक नमूना ही पर्याप्त है। अब मुझे विश्वास है कि एक सग्रामसिंह ही नही, गुजरात को लूटने वाले जितने भी लुटेरे गुजरात की धरती पर दाँत गडाए बैठे हैं उन सबके दाँत यह तलवार तोड देगी……।"

"छोटे राणा ! सग्रामसिंह आपका सम्बन्धी है इसलिए आप यह समझने की भूल कदापि न करें कि वस्तुपाल ने आपकी सत्ता के प्रति विद्रोह किया है। उसने तो उस विदेशी लुटेरे को एक पाठ पढाया है जो गुजरात की छाती मे छुरी भोकने का दुस्साहस कर रहा था। और ऐसा करने से उस वस्तुपाल को विधाता भी नही रोक सकता। उसकी देह मे गुजरात की धरती ने लहू का सचार किया है और वह अपनी धरती के इस ऋण को खूब अच्छी तरह जानता है। इस ऋण को वह चुकाएगा और अवश्य चुकाएगा—किसी भी स्थिति मे, किसी भी स्थान पर।"

अब राणा वीरधवल की समझ मे कुछ-कुछ बात आ गई। राणा लवणप्रसाद और राजगुरु कुमारदेव जब कभी-कभी चर्चा करते हुए समय की प्रतीक्षा की बात करते थे तब उनका अर्थ यही होता था। फिर भी उन्होने हँसते हुए कहा—

"आपके और पिताजी के इस षडयन्त्र को अब मैं समझ गया गुरुदेव ! लेकिन श्रेष्ठि वस्तुपाल वीर भले ही हो सकते हैं, क्या वे गुजरात के अमात्य-पद का गुरु-गम्भीर दायित्व भी वहन करने के

योग्य हैं ?"

"केवल गुजरात ही नहीं किसी दिन रुद्र की कृपा से आप समस्त आर्यावर्त्त के सम्राट् यदि हुए तो वह वस्तुपाल के बुद्धि-कौशल का ही परिणाम होगा, छोटे राणा ! आपने अभी वस्तुपाल को देखा नहीं है।"

कुमारदेव ने यह उत्तर दिया और वे आँखें बंद करके मन ही मन अपने उपास्यदेव भोले महारुद्र का आशीर्वाद माँगने लगे। राणा लवणप्रसाद ने अब कहा--

"बहुत हुआ, वीरधवल ! अब चलने की तैयारी करो। तेरे अमात्य को देव ने और मैंने खूब ठोक-बजाकर देख लिया है। चिन्ता न कर। और तुझे पता नहीं, वस्तुपाल अकेला नहीं है, उसका छोटा भाई भी है तेजपाल। वह भी एक ही रत्न है। तेरी चतुरंगिनी विजय-वाहनियों का वह महासेनापति होगा। और हाँ, सोमेश्वर पण्डित ! चुप लगाए कैसे बैठे हो ? धोलके चलने की तैयारी करो न ! महाराज भीमदेव यहाँ हैं, देव यहाँ हैं, मैं भी यहीं रहता हूँ। अब तुम चलो धोलके। वीरधवल को, वस्तुपाल को और तुम्हें धोलका सम्हलाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। क्यों देव ! आज्ञा है न ! सोमेश्वर पंडित धोलके में राजगुरु होकर रहेंगे तो वहाँ सब पूरा पड़ जायगा।"

"हाँ बापू ! मेरी सम्मति है। सोमेश्वर को ले जाइये। और अब शीघ्रता कीजिए, रानी जयलता चिन्तित होंगी। वहाँ की सब व्यवस्था करके मुझे शीघ्र सूचित कीजिएगा। मुझे विश्वास है वस्तुपाल को अपना कर्त्तव्य स्वीकार होगा। फिर भी आवश्यकता पड़े तो मुझे समाचार दीजिएगा।"

"यह ठीक है। तब आज्ञा दीजिए देव ! मैं जल्दी ही लौट कर पाटन आऊँगा। हां तुम लोग चलने को तैयार हो जाओ वीरधवल, सोमेश्वर ! तब तक मैं जरा महाराज से मिल आऊँ उन्हें भी यह शुभ संवाद तो सुना दूँ जरा। वे बड़ी चिन्ता कर रहे थे कि अमात्य के

विना राज्य-व्यवस्था कैसे चलेगी, सो उन्हे बतादूँ कि वह आ गया है। उनकी आज्ञा लेना भी तो आवश्यक है न !"

"हाँ बापू ! महाराज की आज्ञा ले लें। वैसे उन्होने सारी सत्ता आपको सौंप दी है, किन्तु फिर भी उनसे सम्मति लेना उचित है।"

कुमारदेव के इस उत्तर के बाद राणा लवणप्रसाद उन्हे नमस्कार करके कुटिया से बाहर निकल गए।

राजमहल मे जाकर उन्होने महाराज भीमदेव को जब सारे समाचार दिए और उनकी आज्ञा चाही तो उन्होने उत्तर मे इतना ही कहा—

"मुझसे क्या आज्ञा लेते हो बाघेला ! तुम्हे कहा न मैंने कि राजा तुम हो, वीरधवल है। मेरे गुजरात का गौरव मुझे लौटाकर ला दो—बस।"

***

सन्देश

राणा वीरधवल जब धोलके पहुँचकर अपने निवास में पहुँचे तब रानी जयलता क्रोध और उत्तेजना में भरी बैठी थी। उन्होंने राणा से कहा–

"मेरा सब कुछ लूट कर चला गया है वह। तुम बाप-बेटों को अपना घर देखने की तो फुरसत ही नहीं मिलती।"

राणा ने रानी के क्रोध को देखा और उत्तर दिया–

"यह तो नहीं कहती कि तुम्हारा भाई कैसा नीच निकला, उल्टे मुझी पर व्यंग कर रही हो ......।"

"वह जैसा भी निकला, लेकिन मैंने कब कहा था कि उसे तुम सारे अधिकार सौंपकर पाटन जाकर पड़े रहो ? और मुझे पता भी क्या था कि वह ऐसा करेगा ?"

"तुम्हें नहीं था तो कौनसा मैं ही त्रिकालदर्शी था जो जान लेता

कि सग्रामसिह क्या करने वाला है ? जो कुछ किया था वह अच्छे ही के लिए ही तो किया था। अब जो होना था वह हो गया।"

"होना था वह तो हो गया, लेकिन मैं चुप बैठने वाली नही हूँ। भाई हो या कोई, अपराधी को अपने किए की सजा मिलनी ही चाहिए।"

"अवश्य मिलनी चाहिए।"

"तब क्या सोचा है तुमने ?"

"कुछ तो सोचा ही है। सबसे पहले तो वस्तुपाल को गुजरात का अमात्य बनाना है और उसके भाई तेजपाल को सेनापति। कुमारदेव के पुत्र सोमेश्वर को साथ ले आए है, वह यहाँ राजगुरु होकर रहेगे।"

"वस्तुपाल को अमात्य बनाने की तुम्हे कैसे सूझी ?"

"मुझे नही सूझी, बापू और गुरुदेव कुमारदेव की खोज है वह। कहते हैं कि वह बडा प्रतापी है, प्रत्येक विद्या मे वह पारंगत है।"

"मैं तो समझी थी कि वह पागल है। अकेले ही सग्रामसिह जैसे व्यक्ति से भिड गया था।"

"वस्तुपाल जैसे पराक्रमी पुरुष अकेले-दुकेले होने की चिन्ता नही किया करते। वे केवल अपने कर्त्तव्य को देखते हैं और उसे तत्परता से पूर्ण करते हैं।"

"तब ठीक है। जैसा आप लोगो ने निश्चय किया हो वैसा कीजिए। किन्तु कहे देती हूँ कि मेरे आभूषण छह महिने के भीतर वापिस आ जाने चाहिए।"

"तुम्हे तुम्हारे आभूषणो की ही इतनी चिन्ता है न ? वे आ जायेंगे।"

रानी ने राणा की इस बात मे व्यग का पुट देखा और खीझते हुए उत्तर दिया—

"मुझे अपने आभूषणो की उतनी चिन्ता नही है जितनी तुम्हारी प्रतिष्ठा की। सग्रामसिह ने धोलके की प्रजा को लूटा है और दिनदहाड़े

यह डाका डालकर उसने तुम्हारा अपमान किया है। राजपूत होकर इस अपमान का बदला नहीं लोगे ?"

"क्यों नहीं लूँगा ? इस अपमान का बदला तो ब्याज सहित चुकाया जायगा। अच्छा, अब तुम शान्त होकर बैठो, मुझे कुछ आवश्यक कार्य करना है उन्हें कर डालूँ।"

यह कहकर राणा वीरधवल वहाँ से चल दिए। जब वे राणा लवणप्रसाद के कक्ष में पहुँचे तब वे सोमेश्वर पंडित से बात कर रहे थे।

बड़े राणा सोमेश्वर से कह रहे थे—

"वस्तुपाल को बुलाने किसी आदमी को भेजूँ या मैं स्वयं जाऊँ ? वह खटपटिया तेजपाल बड़ा स्वाभिमानी है।"

"सो तो है ही बापू ! और होना भी चाहिए। किन्तु आप क्यों कष्ट करेंगे, मैं जाता हूँ। मेरे जाने से ठीक होगा। दोनों भाई मेरे मित्र हैं, मेरी बात को टालेंगे नहीं।"

समस्या का समाधान मिल जाने से भोले राणा लवणप्रसाद प्रसन्न हो आए। बोले—

"अरे हाँ पंडित ! यह तो मैंने सोचा ही नहीं था, मेरी ओर से तुम जाओगे तो सब ठीक हो जायगा। तब जाओ जल्दी और उन दोनों को बुला लाओ, कहना मंडलेश्वर ने बुलाया है।"

"नहीं बापू ! मैं तो कहूँगा कि वस्तुपाल तुम्हें गुजरात बुलाता है, चलो।"

"अरे वाह! तुम भी पंडित हो तो चतुर। ठीक है यही कहना तब।"

"यही सत्य है बापू ! गुजरात के पुत्रों को गुजरात बुलाता है। अपने देश की पुकार पर कौन ऐसा सपूत है जो नहीं आएगा ?"

"ठीक है, ठीक है। मैं बुलाने वाला कौन ? हम सबको अपना देश बुलाता है और हम सब अपने देश के शृंगार के लिए अपने मुण्डों की माला उसके कंठ में पहिनाते हैं।"

बजिदानी राणा कविता में यह बात कह गए और स्वयं ही इस

अभिव्यक्ति से प्रसन्न हो गए। आन्तरिक उद्वेग और प्रसन्नता के कारण उनकी कड़ी अधपकी मूँछें फरफराने लगीं। मुस्कराते हुए वे फिर बोले—

"देखा पंडित! तुम्हारे साथ रहते-रहते मुझे भी कविता करना आ गया है। आया न?"

सोमेश्वर इस अखण्ड तपस्वी योद्धा की भावुकता को देखकर निहाल हो रहा था। धीरे से बोला—

"बापू! वास्तविक कवि तो आप ही हो। हम लोग तो पोथे चाटते और कागज काले करते हैं। तलवार की नोक अपने हृदय के लहू में डुबाकर जीवन का महाकाव्य तो आप ही जैसे सूरमा लिखते हैं बापू! आपकी बराबरी हम लोग क्या करेंगे?"

"चल-चल, रहने दे पंडित! अब तुझे भी कविता सूझने लगी। राणा लवणप्रसाद तो एक अक्खड़ सिपाही है। वह क्या जाने कविता करना और क्या जाने सूरमाई!"

"हीरा अपने मोल को नहीं जान सकता तो राणा लवणप्रसाद भी अपने मोल को न जान सकें यह स्वाभाविक है बापू! किन्तु जानने वाले तो जानते ही हैं। जमाना जानता है उनका मोल, युग आंकता है उनका मूल्य!"

राणा लवणप्रसाद अब खिलखिलाकर हँस पड़े—

"अरे पंडित सोमेश्वर, तुम्हें मैंने पुरोहिताई करने बुलाया है, अपना प्रशस्तिकाव्य कराने नहीं। चलो बहुत हुआ, अब जाओ और जाकर उन्हें बुला तो लाओ।"

"जाता हूँ बापू! लेकिन सोमेश्वर पंडित किसी का प्रशस्तिगान निरर्थक नहीं करता। जो सच है वही कहता है।"

इसके बाद वह दोनों राणाओं को प्रणाम करके वहाँ से चला गया।

एकान्त होने पर राणा लवणप्रसाद ने राणा वीरधवल से कहा—

"यह आदमी भी सीधा, सच्चा, सरल और गुणी है। राजगुरु

कुमारदेव का पुत्र होने योग्य ही है।"

"हाँ बापू! है तो ऐसा ही। निश्छल है, और कविता तो बड़ी सुंदर करता है, मैंने तो खूब सुनी हैं इसकी कविताएँ गुरुदेव के आश्रम में।"

"वीरु! सोमेश्वर आ गया। ये वस्तुपाल और तेजपाल भी आ रहे हैं, बाकी तू है ही। बस, अब मैं निश्चिन्त हुआ। ये तीनों व्यक्ति एक एक रत्न हैं वीरु! इन्हें सहेजकर रखना। मैं रहूँ, न रहूँ तू इन्हें सहेज रखेगा तो देखते-देखते सब ठीक हो जायगा।"

"आपकी आज्ञा सिरमाथे पर है बापू! लेकिन हम चारों को सम्हालने के लिए आप भी तो हैं ही। आपको कहाँ जाना है?"

"जाना मुझे कहीं नहीं है। लेकिन मैं पाटन रहूँगा। वस्तुपाल को भी पाटन आते-जाते रहना ही होगा। देख, उसे जो वह करे सो करने देना। झूठ नहीं कहता, अधिक प्रशंसा भी नहीं करता, लेकिन उसे मैंने बचपन से ही देखा है और बराबर दृष्टि उसपर रखी है मैंने। वह विलक्षण बुद्धि वाला युवक है।"

"आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा बापू!"

"अच्छा, अब मैं जरा अपने भोलेनाथ की सेवा में जाऊँगा। और हाँ, जयलता कैसी है? क्या कहती थी?"

"रुष्ट थी। लेकिन अब शांत है। कहती है : छह महीने के भीतर संग्रामसिंह को दण्ड देना है।"

"ठीक है, वह तो देना ही है। किन्तु भाई का मोह उसे नहीं हो रहा क्या!"

"उसे कोई मोह नहीं है बापू! राजपूतनी को सबसे बड़ा मोह अपने पति-कुल की प्रतिष्ठा का ही होता है।"

सुनकर राणा लवणप्रसाद को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने इतना ही कहा—"जयलता लवणप्रसाद की पुत्रवधू होने योग्य ही है।"—और यह कहकर वे उठ खड़े हुए।

× × × ×

जब ठिकाने पहुँच ही गए तब द्वार पर श्रेष्ठि-बन्धुओ की बहिन वयजुका खडी थी। सोमेश्वर ने उसे कभी देखा नही था, किन्तु चेहरे की आकृति से उन्होने अनुमान लगा लिया कि वह उनकी बहिन ही हो सकती है। पूछा—

"वस्तुपाल-तेजपाल का आवास यही है क्या बहिन ?"

"जी हाँ।"

"वे घर पर है ?"

"हाँ। लेकिन अभी पूजा मे हैं।"

"अच्छा, अच्छा यह तो उचित ही है। दोनो भाइयो की धर्मनिष्ठता अब भी यथावत् है यह जानकर प्रसन्नता है। तब मैं कुछ देर उनकी प्रतीक्षा कर लूँगा, बहिन !"

"पधारिए। आपका नाम-ग्राम ?"

"अरे मै तो सोमेश्वर हूँ बहिन ! दोनो भाई मेरे मित्र हैं। पाटन से आया हूँ। वैसे अब धोलके ही रहना होगा। तुम तो, वे पूजा से निवृत्त हो तो, इतना ही कहना कि सोमेश्वर पडित आया है।"

वयजुका ने भाइयो के मुँह से अनेक बार सोमेश्वर और कुमारदेव की चर्चा सुनी थी। अत उसने अब सोमेश्वर पण्डित को प्रणाम किया और कहा—

"आप भीतर पधारिए, विराजिए। अभी थोडी देर मे ही भाई को भेजती हूँ।"

"हाँ, हाँ, निश्चिन्ततापूर्वक। मुझे कोई जल्दी नही है। मै जान गया था कि तुम मेरी बहिन ही हो—वस्तुपाल-तेजपाल मेरे भाई है न !"

कहकर सोमेश्वर पडित हँसते हुए भीतर आए और बैठक मे वयजुका द्वारा बताए हुए आसन पर पालथी मारकर बैठ गए। बैठे-बैठे वे अपने किसी काव्य की पक्तियाँ गुनगुनाने लगे।

वयजुका भीतर भाइयों को सूचना देने चली गई।

वस्तुपाल जब पूजागृह से बाहर आए तब वयजुका द्वार पर ही उनकी प्रतीक्षा करती खड़ी थी। भाई को देखते ही बोली—

"आपके मित्र आए हैं।"

"मेरे मित्र ! कौन मेरे मित्र ? और कहाँ से आए हैं ?"

"आप ही सोचिए, कौन हैं आपके मित्र और कहाँ से आए होंगे ?"

"नटखट है तू। सीधे से बताती क्यों नहीं ? नाम पूछा नहीं ?"

"नाम क्यों नहीं पूछूँगी ? घर पर अतिथि आएगा और मैं नाम-धाम भी नहीं पूछूँगी ? उन्हें आराम से बैठक में भी नहीं बिठाऊँगी ? इतना मूर्ख समझ रखा है क्या मुझे आपने ?"

"मूर्ख क्यों समझूँगा तुझे, तू तो चतुराई की देवी है। लेकिन अब तो बता कि कौन आया है ?"

"सोमेश्वर पंडित।"

"अरे क्या कहा, सोमेश्वर आया है ? पाटन से ? वह कैसे टपक पड़ा यहाँ ?"

कहते-कहते वस्तुपाल पूजा की अकेली धोती पहने हुए ही बैठक की ओर भागे। वयजुका प्रसन्नतापूर्वक मित्र-मिलन की इस निश्छल उत्कंठा का रस लेती खड़ी रही।

बैठक में जब वस्तुपाल पहुँचे तो उन्हें आया देखकर सोमेश्वर उनसे भेंट करने को खड़े हो गए। वस्तुपाल ने आगे बढ़कर उन्हें अपने आलिंगन में कस लिया और बोले—

"अरे पण्डित तुम हो ? कैसे भूल पड़े रास्ता ? क्षमा करना मैं जरा पूजा में था।"

सोमेश्वर पंडित ने जरा कठिनाई से साँस लेते हुए कहा—

"क्षमा किया, क्षमा किया। लेकिन मुझे छोड़ो तो सही, क्या पीस ही डालोगे ?"

वस्तुपाल सोमेश्वर को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में-से मुक्त करते हुए

उसके साथ खूब पटती थी ।"

"याद क्यों नहीं है बडेभैया । उसके साथ तो मैंने आश्रम के एक-एक पेड की ऊँची से ऊँची शाखा पर चढकर जमीन पर छलांगें लगाई हैं ।"—तेजपाल ने उत्तर दिया ।

"लेकिन तू उसे पा नही सकता तेजू ! आदमी के वश की जो बातें हो वे एक सब तू कर सकता है । किन्तु कुछ बातें ऐसी भी होती हैं जिन्हें बन्दर ही कर सकते हैं । और उन बातों को करने में कीर्तिदेव का कोई उत्तर नही है ।"

"तुम ठीक कहते हो भाई, कीर्तिदेव सचमुच ऐसा ही है । अब भी उसकी चपलता कम नही हुई है ।"—सोमेश्वर पण्डित ने स्वीकृति में कहा ।

"मुझे याद है पंडित !" वस्तुपाल ने कहा, "कीर्तिदेव बिल्ली की की तरह कूदकर ऊँची से ऊँची दीवाल पर या छत पर चढ जाता था और बदर की तरह उछलकर एक पेड से दूसरे पेड पर पहुँच जाता था । अभी वह वैसा ही है न ?

"बिल्कुल वैसा ही है । वही इकहरा बदन और वही फुर्ती और चपलता । इसके अतिरिक्त वह अब कटार चलाने में भी सिद्धहस्त हो गया है ।"

"यह भी ठीक है ।"—कुछ सोचते हुए वस्तुपाल ने कहा ।

वयजुका एक थाली में कुछ मिष्ठान्न तथा फल ले आई । तेजपाल ने उसके हाथ से वह थाली लेकर कहा—

"लो पण्डित ! अब पहले कुछ खान-पान हो जाय । बातें तो फिर होती रहेंगी ।"

"हाँ, भाई, इससे शीघ्र निबटलो । फिर मुझे तुम दोनों से बडी आवश्यक बातें करनी हैं ।"

"ऐसी क्या बात है सोमेश्वर पडित !" वस्तुपाल ने पूछा "आज बडे गभीर दिखाई पड रहे हो ?"

"पहले एक कार्य। फिर दूसरा।"—कहकर सोमेश्वर पंडित ने थाली में-से एक मोदक उठाकर कंठ में उतार लिया।

अल्पाहार के पश्चात् सोमेश्वर पंडित ने बात चलाई—

"मैंने सुना है कि तुमने धोलके में बड़ा उत्पात मचा रखा है चाहे जिस व्यक्ति से उलझ पड़ते हो, जनता में विद्रोह फैलाते हो?"

वस्तुपाल ने संकेत समझकर उत्तर दिया—

"तो तुमने भी संग्रामसिंह वाली घटना सुन ली। ठीक ही है। हाँ, लेकिन उत्पात हमने कोई नहीं मचाया, केवल उत्पात मचाने वाले और अत्याचार करने वाले को एक चुनौती दी है।"

"यह चुनौती केवल संग्रामसिंह को ही तो नहीं, राज-शक्ति को भी है।"—सोमेश्वर ने कहा।

"हो सकता है। यदि राजा प्रजा के साथ अन्याय करे तो उसकी मदांध सत्ता को चुनौती देना कर्त्तव्य हो जाता है।"

"और उससे राजा रुष्ट हो तो?"

"विवशता है।"

वस्तुपाल ने सोमेश्वर के प्रश्न का इतना ही संक्षिप्त उत्तर दिया और सोमेश्वर वस्तुतः कहना क्या चाहता है यह सुनने के लिए वे मौन बैठे रहे।

तब सोमेश्वर ने बात को कुछ खोलते हुए, किन्तु अब भी कुछ रहस्यमय ढंग से ही, कहा—

"भाई, आप लोगों को मंडलेश्वर ने बुलाया है।"

वस्तुपाल ने एक तीखी निगाह सोमेश्वर की ओर फेंकी और कहा—

"राज-शक्ति को चुनौती देने की सजा देने न?"

सोमेश्वर पण्डित के अधरों पर हलकी-सी मुसकान फैली हुई थी। उन्होंने कहा—

"मंडलेश्वर के मन की बात मैं क्या जानूँ?"

"ठीक है। मडलेश्वर से भेंट करके उन्हे सत्य का दर्शन कराने की इच्छा मेरी भी है। समय पक गया है। अब भी यदि वे चेते नही तो रहा-सहा गुजरात भी डूब जायगा।"

वस्तुपाल ने यह कहा तब सोमेश्वर पडित ने बात का सूत्र पकड कर अपना प्रस्ताव धीरे से उनके आगे सरकाने का प्रयत्न किया—

"समय पक गया है, वस्तुपाल जी ! आप ठीक कहते हैं। किन्तु अकेले मडलेश्वर क्या करें ?"

"अकेले क्यो ? उनके पीछे सारा गुजरात है।"

"कहाँ है गुजरात ? कहाँ हैं गुजरात के वे नररत्न जो उसके स्वरूप को निखारने के लिए अपना सर्वस्व होम दें ? नही वस्तुपालजी, हम सब अपने-अपने प्रपचो मे पडे है और मडलेश्वर सचमुच अकेले है।"

"मैं नही मानता यह बात, पडित ! यह तो ठीक है कि हम सब लोग अपने-अपने प्रपचो मे पडे हैं, किन्तु सच्चे नेतृत्व की एक ही पुकार पर उठकर चल देने वाले हैं।"

"तब उठते क्यो नही वस्तुपाल भाई आपके नाम वह पुकार लग चुकी है। मैंने कहा कि आपको मडलेश्वर ने बुलाया है। वास्तव मे सच यह है कि आपको गुजरात की भूमि ने पुकारा है और जिस नेतृत्व की आवश्यकता आप समझते है वह आप ही को करना है।"

वस्तुपाल को सोमेश्वर की बात के मर्म को समझने मे कठिनाई नही हुई, फिर भी उन्होंने पूछा—

"आशय ?"

"अब सब कुछ मैं ही बताऊँ ? अच्छी बात है। गुजरात के अमात्य का पद रिक्त पडा है वस्तुपालजी ! योग्य अमात्य के अभाव मे मडलेश्वर और महाराज भीमदेव किंकर्त्तव्यविमूढ हो रहे हैं। और इस समय यदि गुजरात मे कोई व्यक्ति इस पद पर आसीन होने योग्य है तो वह केवल वस्तुपाल है⋯ ।"

"बड़े गहरे हो गए हो पंडित ! बात को घुमा-फिराकर कहना भी खूब आ गया है तुम्हें।"

"नहीं वस्तुपालजी ! मैं तो सीधी विनय करने आया हूँ। स्वयं मंडलेश्वर आपके पास आना चाहते थे, किन्तु मैंने ही प्रस्ताव किया कि अपने मित्रों को मैं बुलाकर लाता हूँ। और मुझे विश्वास है कि, न आप अपने मित्र का आग्रह टालेंगे और न देश की पुकार को ही अनसुना करेंगे।"

कुछ क्षण वस्तुपाल मौन रहकर गंभीर विचार करते रहे। फिर उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टि तेजपाल की ओर फेंकी। तेजपाल ने कहा—

"हमें किसी राजा की गुलामी नहीं करनी है भैय्या !"

सोमेश्वर ने यह उत्तर सुना और वह घबराया। कहीं अस्वीकार कर दिया तो ! उसने तुरन्त कहा—

"तेजपाल भाई ! यह किसी राजा की गुलामी का प्रश्न नहीं है। वस्तुपाल और तेजपाल को गुलाम बनाकर रख सके ऐसे किसी राजा को जन्म लेना अभी शेष है। यह प्रश्न तो देश की पुकार का है। देश को आपकी आवश्यकता हो तब भी क्या आप अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने में पीछे रहेंगे ?"

"पीछे हटने वाले कोई और होंगे। तेजपाल·········।"

"तब आगे बढ़ो न तेजपाल भाई ! आप लोग नहीं संभालोगे तो गुजरात का क्या होगा ?"

वस्तुपाल अब भी मौन थे। कुछ समय बाद उन्होंने कहा—

"तेजू ! सोमेश्वर पंडित गलत नहीं कहता है। देश के प्रत्येक सपूत को अपना व्यक्तिगत हित-अहित एक ओर रखकर मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्य को प्रमुखता देनी चाहिए। मैं तो जानता ही था कि किसी दिन इस अग्नि में भी गुजरना पड़ेगा। वह तपस्या की घड़ी अब आ गई लगती है। तेजू ! यह किसी राजा की गुलामी का प्रश्न नहीं है। यह कर्त्तव्य के निर्वाह का प्रश्न है।"

"हाँ, वस्तुपाल भाई ! पिताजी ने भी आपको कहलाया है कि आप उनके योग्य शिष्य है, यह प्रमाणित करने मे पीछे न रहे। उन्होने आपको………।"

"मैं समझ गया पंडित तुम्हारे षड्यन्त्र को," वस्तुपाल ने बीच मे ही हँसते हुए कहा, "चारो ओर से बाँधने का इन्तजाम करके आए हो। सारे तर्क इकट्ठे कर लाए हो।"

अब सोमेश्वर पंडित भी कुछ आश्वस्त होकर मुस्कराए और बोले—

"अमात्यवर ! गुजरात के महासेनापति के साथ शीघ्र ही मंडलेश्वर से विचार-विमर्श करने पधारने का कष्ट कीजिए। वे आप दोनो की प्रतीक्षा बडी उत्कंठा से कर रहे हैं।"

वस्तुपाल और तेजपाल दोनो हँस पडे। वस्तुपाल ने कहा—

"ऐसा करो, तुम चलो। हम लोग कुछ ही समय मे प्रस्तुत होकर आते है। तब तक कुछ और विचार करने का समय भी हमे मिल जायगा।"

"मै चलता तो हूँ अमात्यवर ! किन्तु विचार करने का समय अब नही है। आपने कहा न कि समय पक चुका है, अब तो विचार नही, कर्म करना है।"

वस्तुपाल फिर हँस पडे। बोले—"सचमुच बड़े चतुर हो गए हो तुम सोमेश्वर ! अच्छा तुम चलो, हम आते है। किन्तु देखो, अभी मंडलेश्वर से कुछ कहना नही। निर्णय तो उनसे बात करने के पश्चात् ही किया जा सकेगा। समझे न !"

"ठीक है, ऐसा ही होगा। किन्तु आप शीघ्र आएँ।"—कहकर सोमेश्वर पंडित ने विदा ली !

***

नीतिकारों की जो बात मैंने आपके समक्ष करने की धृष्टता की वह केवल सावधानी बरतने की दृष्टि से ही। बाकी आपको आपका कर्तव्य पुकार रहा है, तो जाना तो होगा ही।"

"तुम ठीक कहती हो अनुपमा ! यदि मैं राणा के प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ तो वह अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण करने की दृष्टि से ही।"

"परमपिता आपको शक्ति दें, साहस दें। मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि आप राज्य की खटपटों में उलझकर अपने साहित्य और कलानुराग को विस्मृत न करदें।"

"नहीं अनुपमा ! वह तो आत्मा में रमी हुई वस्तु है। उसे भूलना कैसा ?"

"और भी एक बात का स्मरण इस अवसर पर करा देना चाहती हूँ। बड़े जेठजी ने मृत्यु से पूर्व अपनी अन्तिम इच्छा प्रगट की थी—आबू पर्वत पर जिन-बिम्ब स्थापित करने की। वह आपको भूल नहीं जाना चाहिए।"

प्रत्येक बात का कितना ध्यान रखती है यह अनुपमा !—वस्तुपाल ने सोचा और उत्तर दिया—

"मुझे तो वह याद है ही। लेकिन मैं इसका जिम्मा तेजू को सौंपता हूँ, वह याद रखेगा और इस पुण्य कार्य को शीघ्र से शीघ्र पूर्ण करेगा। क्यों तेजू, स्वीकार है न ?"

"स्वीकार है बड़ेभैया !"

"तब ठीक है, निर्णय हुआ। हम लोग अब राणा से मिल आते हैं।"

यह कह कर वस्तुपाल उठने को हुए कि एक तिरछी नज़र अपने पति की ओर डालती हुई अनुपमा ने कहा—

"किन्तु जेठजी ! अपने देवरजी से अच्छी तरह पूछ लीजिएगा।

गुजरात के महासेनापति यदि घोडे पर बैठकर ठोकरें खाते रहे तो फिर काम हो चुका।"

"तू बडी शरारती है अनुपमा! तेजू को उस दिन की जरा-सी असावधानी के लिए अब तक तूने उसे क्षमा नही किया लगता है। लेकिन तू उसकी चिन्ता न कर, उसका जिम्मा मेरा है। अब तो गुजरात के महासेनापति के अश्व की ठोकरें गुजरात के शत्रुओ के मस्तको पर ही पडेंगी। तू देख लेना। अच्छा तेजू अब चलो, विलम्ब हो रहा है।"

हँसते हुए यह कहकर वस्तुपाल तेजपाल के साथ घर से बाहर निकल पडे। द्वार से बाहर जाने से पूर्व तेजपाल ने एक क्रोध भरी दृष्टि अनुपमा पर डाली। किन्तु उसकी वह क्रोध भरी दृष्टि जिस दृष्टि से जाकर मिली उसमें तो सैकडो वसन्तो का मधुर हास्य बिखर रहा था।

अपने अश्व पर सवार वस्तुपाल धोलके के बाजार के बीच से चले जा रहे थे। तेजपाल भी उनके साथ-साथ ही अपने अश्व को बढाते चल रहे थे। राम-लक्ष्मण की छवि को एक बार पुन मूर्त्त करने वाले इन श्रेष्ठि-बन्धुओ के निहारने को लिए स्त्रियाँ घरो के छज्जो पर जैसे अटक-सी जाती थी। धोलके के नागरिक भी किसी आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत होकर उन्हे ससम्मान मार्ग देते जाते थे।

राजप्रासाद से कुछ ही दूर पर मार्ग मे बडी भीड इकट्ठी थी और शोर दूर से ही सुनाई देता था। वस्तुपाल ने आगे बढते हुए वह शोर सुना, भीड देखी और तेजपाल से कहा—

"यह क्या हगामा है तेजू?"

"कौन जाने भैया! फिर कुछ उत्पात हुआ लगता है।"

"जरा देखें चल कर।"

भीड के बीचो-बीच एक दुबला-पतला, चीथडो मे अधनगा-सा

दीखता आदमी अधमरा-सा होकर लड़खड़ा रहा था। कुछ व्यक्ति अपने सोंठों और लाठियों से उसे बुरी तरह पीट रहे थे। जिन लोगों के हाथों में सोंठे और लाठियाँ थीं वे धोती पहने, जनेऊ धारण किये और चंदन के मोटे-मोटे तिलक लगाए हुए थे।

एक निरीह, दुर्बल, गरीब, एकाकी व्यक्ति को इस प्रकार निर्दयता से पीटे जाते देखकर वस्तुपाल क्रोध से भर उठे। गरजकर उन्होंने कहा—

"खबरदार ! अब कोई इस व्यक्ति पर हाथ न उठाए।"

वस्तुपाल की ललकार सुनकर पीटने वाले व्यक्ति एकाएक रुक गये, किन्तु उनमें से एक जनेऊ-त्रिपुण्डधारी ने आगे बढ़कर कहा—

"आप हैं क्या वस्तुपाल सेठ ? लेकिन देखिए न इस मलेच्छ नें हमारा सारा मिष्ठान्न भ्रष्ट कर दिया।"

"कैसे ?"

"मलेच्छ है यह। हम अपने जजमान के यहाँ से भरपूर मिष्ठान्न ग्रहण कर, शेष पोटली में बाँधकर अपने घर जा रहे थे। किन्तु इस अनार्य ने सब सत्यानाश कर दिया।"

"लेकिन आप इसे क्या अब मार ही डालेंगे ? लज्जा नहीं आती आपको ?"

"लज्जा की इसमें क्या बात है श्रेष्ठिवर ! लज्जा तो इस नीच को आनी चाहिए कि समीप आकर इसने हमें छू लिया ! दूर से ही माँगता तो हम केवल इसे दुत्कार कर ही चले जाते, किन्तु इस भूखे मलेच्छ ने हमारे पैरों पर गिर कर हमें भ्रष्ट ही कर दिया ! हम तो खैर स्नान करके शुद्ध हो जायेंगे, किन्तु यह सारा मिष्ठान्न..........।"

"हट जाइये आप और अपने घर जाकर अपना शुद्धिकरण कर लीजिए। किन्तु ब्राह्मण देवता तीन काल में भी आपके अन्तःकरण की शुद्धता नहीं होगी। एक भूखे आदमी पर यह पाशविक अत्याचार

करने से पहले आपको कही जाकर डूब मरना चाहिए था। वह यवन है तो क्या मनुष्य नही है ? वह गरीब है तो क्या पशुओ से भी हीन हो गया ? धिक्कार है आपको और आपके उस धर्मभाव को जो आपको मानवता की नही स्वार्थ और नीचता की शिक्षा देता है।"

"लेकिन वस्तुपालजी आप हम पर अत्याचार कर रहे हैं। बहुत दिन बाद जजमान चेता था··· ··· ···।"

तेजपाल ने अपना अश्व ब्राह्मण देवता की तरफ बढाया। उसकी मुखमुद्रा देखकर ब्राह्मण देवता अपना वाक्य अधूरा ही छोडकर तेजी से वहाँ से सरक गए। उनकी मिष्ठान्न की पोटली भूमि पर ही पडी रह गई जिसे वे सभवत घबराहट मे ही भूल गए अन्यथा छोडते नही।

वस्तुपाल ने अपने अश्व पर से उतरकर अन्य लोगो से कहा—

"हट जाइये आप लोग यहाँ से! जाइये अपने अपने घर। आप लोग धोलके के नागरिक हैं ? किसी निर्बल पर होते हुए अत्याचार को रोकने के स्थान पर उल्टा उसमे अपना योग देने का पाठ आपने अपने किन गुरुओ से सीख लिया है ?"

एक-एक कर सब तमाशबीन वहाँ से खिसक लिए। एकान्त होने पर वस्तुपाल उस यवन के समीप गए, वह भय, पीडा और भूख के मारे थर-थर काँप रहा था। अपने जीवनदाता के चरणो मे वह कटे हुए वृक्ष की भाँति गिर पडा।

वस्तुपाल ने उसे उठाया और आश्वस्त करते हुए कहा—

"डरने की कोई बात नही है भाई! अब तुम्हे कोई कुछ नही कहेगा। निश्चिन्त हो जाओ। चोट अधिक लगी है क्या ?"

"मार डाला हराम··········।"

"क्रोध न करो अब। अधिक चोट नही लगी है। ठीक समय पर बच गए हो। कौन हो ? कहाँ से आए हो! धोलके मे तुम्हे पहली

बार देख रहा हूँ।"

"यवन हूँ, हुजूर ! यहाँ आज ही आया हूँ।"

"कहाँ से ?"

"खंभात से, हुजूर !"

"खंभात ? सिद्दीकसेठ का लूट का गढ़ ?" वस्तुपाल ने क्षण भर विचार किया और फिर पूछा—

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"रदीव है, हुजूर ! गरीब आदमी हूँ।"

"खंभात में क्या करते थे ?"

"सिद्दीकसेठ की गुलामी करता हूँ। जानवरों की तरह काम लेता है वह और खाने को चन्द टुकड़े भी नहीं देता।"

"हूँ ! तो तुम वहाँ से भाग कर आए हो ?"

"हाँ हुजूर ! भाग आया। मैंने सोचा कि गुलामी ही करनी है तो उस सिद्दीकसेठ की क्या करना ? सुना है, महाराज भीमदेव बड़े दिलदार राजा हैं।"

वस्तुपाल ने इस बीच ही विचार कर लिया कि यह आदमी काम आने लायक है। पूछा—

"अब क्या करने का इरादा है तुम्हारा ?"

"हुजूर के क़दमों में पड़ा रहूँगा। आपने मेरी जान बचाई है इस एहसान को कभी भूल नहीं सकता। आपके लिए किसी दिन अपनी जान दे दूँगा हजूर !"

"जिलाने और मारने वाला तो परमात्मा है भाई ! लेकिन तुम काम क्या कर सकते हो ?"

"घोड़े की तरह भागता हूँ हुजूर ! अच्छे-अच्छे सवारों को पीछे छोड़ देता हूँ। सिद्दीकसेठ ने मुझे इसीलिए अपने पास रख छोड़ा है ?"

"हूँ ! ठीक है। तब मैं जो कहूँगा वह करोगे ?"

"हुक्म दीजिए आप। मैं आज से आपका गुलाम हूँ।"

"तो तुम खभात वापिस लौट जाओ और सिद्दीकसेठ के पास ही पहले जैसे रहो। मैं थोडे समय मे तुम्हे जो करना होगा कहलाऊँगा।"

एक क्षण रदीव ने विचार किया—फिर वही जेलखाना ? फिर वही लोभी सिद्दीकसेठ ? किन्तु फिर उसने उत्तर दिया—

"जैसा आप कहेंगे वही करूँगा। लेकिन ज्यादा दिन उस धूर्त के पास रहना नामुमकिन है, हुजूर ?"

"अब अधिक समय नही रहना पडेगा। रदीवा ! जो कहता हूँ वह करो।"

"आज ही भागता-भागता जाता हूँ, हुजूर !"

"यह खाने की पोटली उठा लो। कही जाकर खाओ-पीओ और खभात के लिए चल पडो। लेकिन सावधान ! किसी से कुछ कहना नही। मेरा नाम याद रखना—वस्तुपाल। तुम्हारे पास मेरा सदेशा शीघ्र पहुँच जायगा।"

"जो हुक्म, हुजूर ! मैं चला।"

"जाओ ! अब धोलके मे तुम्हे कोई कुछ कहे तो मेरा नाम लेना। अधिक देर यहाँ ठहरना नही। चलो तेज् !"

वस्तुपाल रदीव को आदेश देकर अपने अश्व पर सवार होकर तेजपाल के साथ राजमहल की ओर चल पडे।

मार्ग मे वस्तुपाल ने तेजपाल से कहा —

"तेजू ! खभात का सिद्दीकसेठ विकट आदमी है। उसकी पीठ पर शल है। उसे सम्हालना है। यह रदीवा अपने काम आएगा।"

"किन्तु भैया ! यह यवन है। इस जाति का क्या विश्वास ? कभी भी धोखा दे सकते है ये लोग।"

"कोई जाति अच्छी या बुरी नहीं होती तेजू ! आदमी अच्छा या बुरा होता है। और कभी-कभी धूल में से हीरा चुनकर निकालना पड़ता है।"

"वह तो ठीक है, किन्तु हीरे को देखना परखना भी तो पड़ता है..........।"

"जौहरी की आँख हो तो हीरा एक ही दृष्टि में परख लिया जाता है।"

राज-प्रसाद के सिंह-द्वार पर सावधानी की मुद्रा में खड़े रक्षकों ने वस्तुपाल-तेजपाल को आया देखकर, ससम्मान अपने भाले एक ओर हटा लिए।

***

अमात्य और सेनापति

चन्द्रशाला में एक विशाल काष्ठपट्ट पर रेशमी गद्दे-तकिए लगे हुए थे। राणा वीरधवल और राणा लवणप्रसाद उस पर बैठे हुए सोमेश्वर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वस्तुपाल के आवास से लौटकर सोमेश्वर ने सूचित किया—

"मैं दोनों भाइयों से भेंट कर आया हूँ। अभी कुछ ही देर में वे यहाँ आते होंगे।"

"आपने उनसे क्या कहा सोमेश्वरजी? वस्तुपाल को मेरा निमंत्रण स्वीकार है कि नहीं?"—राणा लवणप्रसाद ने उत्सुकता से पूछा।

"मेरा अनुमान है राणाजी कि उन्हें स्वीकार होना चाहिए। वैसे आते ही होंगे, आपसे बात करने के बाद ही उनके अन्तिम निश्चय का तो पता लगेगा।"

"हूँ ! तुमने कहा तो होगा कि गुजरात का अमात्यपद सम्हालना है ?"

"हाँ, मैंने कहा। और यह भी कहा कि पिताजी की भी ऐसी ही आज्ञा है। वे लोग पिताजी की और आपकी आज्ञा को टालें ऐसे नहीं हैं। फिर उन्हें अपने कर्तव्य का भी ज्ञान है।"

"ठीक है, वे आएँ तो पता लगे।"

कुछ समय इधर-उधर की बातें होती रहीं। राजगुरु सोमेश्वर को भी राणा ने अपने साथ ही गद्दे पर बिठा लिया था। अन्त में प्रतिहारी ने आकर सूचना दी—

"महाराज की सेवा में वस्तुपाल-तेजपाल श्रेष्ठि उपस्थित होने की आज्ञा चाहते हैं।"

"उन्हें शीघ्र यहीं भेजो।"—राणा वीरधवल ने आदेश दिया।

प्रतिहारी 'जो आज्ञा' कहकर लौट गया।

दोनों भाई जब उपस्थित हुए तब राणा लवणप्रसाद ने उठकर और आगे बढ़कर उन्हें एक साथ अपनी विशाल भुजाओं में स्नेह सहित जकड़ लिया और फिर अपने समीप ही गद्दे पर बिठाते हुए कहा—

"वस्तुपालजी और तेजपालजी ! मैं तो एक अक्खड़ सिपाही हूँ। साहित्य की भाषा मुझे बोलना आता नहीं। कुछ गलत बोलूँ तो विचार करना नहीं। लेकिन सोमेश्वरजी ने आपको बताया होगा कि मैंने आपको किसलिए कष्ट दिया है।"

दोनों राणाओं को नमन करते हुए वस्तुपाल ने उत्तर दिया—

"भाई सोमेश्वरजी ने इस भेंट का कारण हमें कहा है। पहले तो मैं समझा था कि शायद आपने मुझे दण्ड देने के लिए ही बुलाया होगा।"

दूसरा वाक्य वस्तुपाल ने कुछ हँसते हुए कहा था। इसे सुनकर राणा लवणप्रसाद ने कहा—

"हाँ वस्तुपाल जी ! ऐसा समझो तो कोई हानि नहीं। दण्ड देने

के लिए भी बुलाया हो तो वह स्वीकार होगा न ?"

"आप वीर पुरुष है राणाजी ! गुजरात की धरती को आप पर गौरव है। आपके हाथ से दण्ड मिले तो हमारा सौभाग्य है।"

"तब इसे दण्ड मानो या पुरस्कार, लेकिन मेरे प्रस्ताव के विषय मे आप क्या निर्णय करते हैं ?"

राणा वीरधवल चुपचाप दोनो भाइयो को गहरी दृष्टि से देख रहे थे और विचार कर रहे थे—इनकी आकृति इनकी गुणसमृद्धि की सूचना देती है। इनकी नम्रता से इनका कुलीन होना प्रगट होता है। इनकी वाणी इनके शास्त्रबोध का सकेत करती है। वास्तव मे जैसा सुना था वैसे ही नररत्न ये दोनो भाई दिखाई देते हैं।

जब राणा वीरधवल यह विचार कर रहे थे तभी बडे राणा ने वस्तुपाल से अपना प्रश्न किया था। वस्तुपाल ने उत्तर दिया—

"राणाजी ! शीघ्रता मे कोई भी कार्य नही कर डालना चाहिए। आप जो दायित्व हमे सौंपना चाहते है उसे पूर्ण कर सकने के योग्य हम हैं भी कि नही, इस बात पर आप पूरा विचार कर लेते तो ठीक होता।"

"इस बात पर विचार करते हुए मुझे कई वर्ष हो गए हैं। आपको याद होगा एक बार हमारी भेंट पाटन के मार्ग पर हुई थी। उस समय आप छोटे थे और विद्याध्ययन के लिए पाटन जा रहे थे। याद है न ?"

"हाँ याद है।"

"और आपको तेजपालजी ? आपको भी याद तो होगा ही ?"

"खूब याद है राणाजी ! तेजपाल को भूलने की आदत नही है।"

तेजपाल का यह उत्तर सुनकर राणा लवणप्रसाद मूँछो ही मूँछो मे मुस्करा उठे। बोले—

"तेजपालजी का क्रोध अभी मुझ पर से उतरा नही लगता है। खैर, इनकी यह तेजस्विता बनी रहे तो अच्छी, गुजरात के काम आएगी। तो मैं कहता था कि उस दिन से ही आप दोनो भाइयो की गतिविधि का लेखा-जोखा लवणप्रसाद ने रखा है। और अब आप चाहे

मेरा निमंत्रण मानो चाहे यह मानो कि गुजरात के प्रति आपका कर्त्तव्य आपको बुलाता है, लेकिन अपना निर्णय दो। आपको, वस्तुपाल जी, अमात्य पद सम्हालना है। और तेजपालजी को गुजरात का सैन्य। बोलो, स्वीकार है?"

वस्तुपाल ने उत्तर दिया—

"आपके भव्य व्यक्तित्व में मैं तो अपने गुजरात को मूर्त्त हुआ देखता हूँ राणाजी! अतः मेरे लिए आपकी आज्ञा सारे गुजरात का आदेश है। मुझे इसे स्वीकार करना ही चाहिए। किन्तु दो-एक बातें मैं पहले कह देना उचित समझता हूँ। आज्ञा हो तो निवेदन करूँ?"

"अवश्य कहिए वस्तुपालजी!"

"मैं यह निवेदन करना चाहता था कि जो अच्छे थे वे तीनों युग तो व्यतीत हो चुके। अब तो कलियुग है। इस युग में सेवक और स्वामी के बीच में जो कृतज्ञता-भाव होना चाहिए वह दिखाई नहीं देता। अज्ञानवश राजाओं की दृष्टि प्रायः नष्ट हो जाती है और वे ऐसे लोभी और स्वार्थी सेवकों को अधिकारी बना देते हैं जो राजा और राज्य को विनाश की ओर ले जाते हैं।"

"राणाजी! केवल पेट तो पशु भी भर लेता है। किन्तु सुज्ञजन राजाओं का आश्रय इसलिए लेते हैं कि वे अपनी बुद्धि और योग्यता से अपने देश की कोई सेवा कर सकें। उनका उद्देश्य दुर्जनों को दण्ड देना तथा सज्जनों की सहायता करना होता है।"

"अस्तु, राजन्! यदि न्याय की साक्षी में दुर्जनों और शत्रुओं को दण्ड देना आपका लक्ष्य हो तो मैं आपके आदेश का पालन करने के लिए प्रस्तुत हूँ। यदि मैं गुजरात के अमात्य के पद को स्वीकार करता हूँ तो मेरा प्रयत्न होगा कि गुजरात के समस्त शत्रुओं का विनाश करूँ। राज्य-कोष को धन-सम्पन्न करने के साथ-साथ प्रजा का हित-चिन्तन करना भी मेरा कर्त्तव्य होगा। प्रजा सुख से रहे, उसका अभाव दूर हो और वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन-यापन कर सके ऐसी मेरी

भावना सदा ही रहेगी।"

"क्या मैं आशा करूँ राजन् ! कि आप मुझे इस प्रकार उक्त लक्ष्यो की पूर्ति करने के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की आज्ञा देंगे ?"

दोनो राणा चुपचाप वस्तुपाल के कथन को सुन रहे थे। उनकी आँखो मे इस समय जो चमक थी उसे देखने से प्रतीत होता था कि उनके मन मे वस्तुपाल की दृढ़ता और स्पष्टता के प्रति प्रशंसा का भाव उदित हो रहा है।

अन्त मे राणा लवणप्रसाद ने उत्तर दिया—

"वस्तुपालजी आपने जो कहा ठीक ही कहा है। यह कलियुग है। इसीलिए राजा के पास आपके जैसा एक कुशल अमात्य होना और भी अधिक आवश्यक है। राजगुरु सोमेश्वरजी की साक्षी मे राणा वीरधवल की ओर से मैं आपको वचन देता हूँ कि अमात्य के रूप मे आपकी नीति मे कोई अवरोध नही डाला जायगा। वस्तुतः हम स्वयं यही चाहते है कि गुजरात मे जो गिरावट और शिथिलता आ गई है वह दूर हो जाय और वह फिर से उठकर खडा हो और मुझे विश्वास है कि आपके जैसा अमात्य यदि प्रयत्न करेगा तो ऐसा अवश्य होगा।"

"तब राणा लवणप्रसाद और राणा वीरधवल की तलवारो की छाया मे गुजरात के अभ्युदय के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करना मैं स्वीकार करता हूँ राजन्!"

"मैं उम्र मे तुमसे बडा हूँ वस्तुपालजी! ज्ञान मे और बुद्धि मे तो छोटा ही हूँ। लेकिन बूढ़ा हूँ इसीलिए तुम्हे आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा यश दिग्-दिगन्त मे फैले।"

राणा लवणप्रसाद ने वस्तुपाल का यह आशीर्वाद दिया। वस्तुपाल ने राणा को नमन करते हुए कहा—

"आपका आशीर्वाद हम बालको के लिए बहुमूल्य है राजन्! केवल एक बात मैं और भी कहना चाहता हूँ। आज आपकी हम पर

कृपा है, जिनदेव करें कि यह कृपा सदैव बनी रहे। किन्तु जैसा कि मैंने आरम्भ में निवेदन किया था, इस कलियुग में प्रायः स्वार्थी और कुटिल व्यक्ति राजाओं के कान भर दिया करते हैं। दुर्भाग्य से कभी ऐसा दिन आ ही जाय और राजा रुष्ट हों तो मैं यह निवेदन करता हूँ कि राज-सेवा में आने से पूर्व हमारे घर की समस्त सम्पत्ति की गणना कर ली जाय और यदि कभी राज-सेवा से मुक्त होने का प्रसंग आए तो उतनी ही सम्पत्ति हमें लौटा दी जाय। मैं यह नहीं चाहता कि कभी कोई व्यक्ति यह कहे कि वस्तुपाल ने राजशक्ति का दुरुपयोग किया है।"

वस्तुपाल की इस निर्लोभी वृत्ति तथा स्पष्टवादिता से राणा अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने उत्तर दिया—

"वस्तुपालजी ! हमें आपके वचन पर पूर्ण विश्वास है। यदि आप ऐसा चाहते है तो स्वयं ही बता दीजिए कि इस समय आपके पास कितनी सम्पत्ति है। गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"तीन लाख द्रम्म।"

"ठीक है। यह आपकी निजी सम्पत्ति है। इसका ध्यान रहेगा।"

"ऐसा मैंने केवल कलंक से बचने के लिए कहा है राजन् ! अन्यथा मेरी कोई निजी सम्पत्ति नहीं है। आवश्यकता होने पर यह सारी सम्पत्ति मेरे देश की ही है।"

"ठीक है वस्तुपालजी ! यह आपकी उदारता है। तब यह मानूँ कि आपने मेरा निमंत्रण स्वीकार किया ?"

"मुझे स्वीकार है।"

"और तेजपालजी ! गुजरात के महासेनापति का पद आपको भी स्वीकार है न ?"

"अ…………मुझसे क्या पूछते है राणाजी ! बड़ेभैया जैसा कहें वैसा मुझे तो करना है।"

राणा हँसे। वस्तुपाल भी हँसे। उन्होंने कहा—

"स्वीकार कर लो तेजपाल ! कर्त्तव्य पुकारता है।"

"तो जैसा आप लोग ठीक समझें..........।"

"चलो हुआ, आप दोनों ने इस बूढ़े की बात को टाला नहीं इसकी मुझे खुशी है। वरना मुझे तो डर था..........इन तेजपालजी से तो बहुत डरता हूँ।"

हँसते-हँसते बाघेला राणा ने यह बात कही और तेजपाल के कंधे पर स्नेहपूर्वक अपनी बाँह रख दी।

तेजपाल लज्जित होकर जमीन पर देखता रह गया।

इसके बाद राणा लवणप्रसाद ने राणा वीरधवल से कहा—

"अपने हाथ से अमात्य-मुद्रिका वस्तुपालजी की अँगुली में पहना दो।"

राणा वीरधवल ने समीप ही एक सोने की तश्तरी में रखी हुई मुद्रिका वस्तुपाल के हाथ में पहनाते हुए कहा—

"अमात्यवर वस्तुपालजी ! इसी क्षण से गुजरात का हित-अहित आपको सौंपता हूँ।"

"अपनी शक्तिभर मैं इस गंभीर दायित्व को निभाने की शपथ लेता हूँ, राणाजी ! आप चिन्ता न करें।"

राणा लवणप्रसाद ने अपनी कमर में बँधी लम्बी तलवार खोलकर तेजपाल को देते हुए कहा—

"तेजपालजी ! यह तलवार अब गुजरात के महासेनापति के हाथ में ही शोभा देगी। लीजिए ! आशा करता हूँ इसका उचित उपयोग करने में आप कसर नहीं छोड़ेंगे।"

तेजपाल ने घुटने टेककर सम्मान-सहित वह तलवार अपने दोनों हाथों में ले ली और इतना ही कहा—

"महामण्डलेश्वर बाघेला राणा लवणप्रसाद की तलवार अपने हाथ में थामने के योग्य मैं साबित हो सकूँ तो अपने जीवन को धन्य मानूँगा।"

फिर कुछ देर बाद वस्तुपाल ने कहा—

"इस समय हमारे पास कितना सैन्य होगा, राजन् ?"

उत्तर लवणप्रसाद ने दिया—

"एक राणा लवणप्रसाद और दूसरा राणा वीरधवल। ये दो सिपाही हैं अमात्यवर !"

वस्तुपाल ने क्षणभर चुप रहकर कहा—

"ये दो सैनिक तो पर्याप्त हैं राजन् ! इनकी शक्ति से मैं पूर्व और पश्चिम दो दिशाओं में गुजरात का ध्वज फहरा दूँगा। तीसरी दिशा में तेजपाल की तलवार प्रकाश करेगी, और........"

"और चौथी दिशा में वस्तुपाल की बुद्धि।"—राणा लवणप्रसाद ने जोड़ दिया। राणा वीरधवल ने कहा—

"इस तरह चारों दिशाओं में गुजरात के यश-विस्तार का प्रबन्ध हो गया। लेकिन अमात्यवर, सबसे पहले मैं सोरठ से निबट लेना चाहता हूँ।"

"हाँ राजन् ! सोरठ से तो निबटना ही है, किन्तु जल्दबाजी करने से काम नहीं चलेगा। मेरा अनुमान है कि राज्य-कोष खाली पड़ा है..........।"

"आपका अनुमान ठीक है। इसीलिए पिताजी ने जो भी सैनिक पाटन मे धोलके भेजे थे वे सब एक-एक नौकरी छोड़कर चले गए। उन्हें राज्य से समय पर वेतन ही नहीं दिया गया तब वे करते ही क्या ?"

"इस अव्यवस्था के लिए कौन उत्तरदायी है राजन् ?"

"अब यह पता लगाना और अपराधियों को दण्ड देना आपका काम है वस्तुपालजी ! हमने तो सब कुछ आपको सौंप दिया है।"

गहरा विचार करते हुए वस्तुपाल ने कहा—

"ठीक है, मैं देखूँगा। सोरठ से निबटने के पहले मैं खम्भात की व्यवस्था कर डालना चाहता हूँ राणाजी ! वहां उस सिद्दीकसेठ ने

बडी गडबड मचा रखी है। जलीय और स्थलीय व्यापार से जो कर राज्य-कोष मे जमा होना चाहिए उसकी एक पाई भी वह सिद्दीक यहाँ आने नही देता, ऐसा मुझे पता लगा है। तो सबसे पहले इसे एक पाठ पढादूँ तब आगे चलना होगा।"

"मेरा भी यही विचार है", राजा लवणप्रसाद ने कहा, "जब तक राज्य-कोष मे धन एकत्र नहीं होता, हम सैन्य की व्यवस्था नही कर सकते।"

अब वस्तुपाल ने तेजपाल से कहा—

"तेजपाल ! एक महीने का समय देता हूँ। इस अवधि मे मुझे अधिक नहीं, तुम केवल तीन सौ सैनिक तैयार करके दो। बोलो दोगे ?"

"दूँगा।" छोटा सा उत्तर।

"मैं इन तीन सौ सैनिको को लेकर खम्भात पर चढूँगा। और देखूँगा कि सिद्दीक कौन से शस्त्र की ताकत पर अकडा बैठा है। उसके बाद—सोरठ।'

फिर कुछ देर तक राज्य-व्यवस्था सबधी अन्य बातो पर विचार करने के बाद राजा और मत्री विदा हुए।

***

चोर या सिपाही ?

राज-प्रसाद के समीप ही एक विशाल प्रौढ़ मन्दिर राणा वीरधवल ने वस्तुपाल-तेजपाल के रहने के लिये प्रदान किया। मंत्री और सेनापति सपरिवार उस प्रौढ़ मंदिर में आकर निवास करने लगे।

प्रातःकाल की वेला थी। शीतल और मन्द पवन उद्यानों में लता-वृक्षों की शाखाओं को स्नेह से दुलराता हुआ धोलके के ऊँचे मकानों और मन्दिरों के शिखरों पर फहराती हुई ध्वजाओं से अठखेलियाँ कर रहा था।

गुजरात का महामात्य अभी-अभी जिन-भगवान् की पूजा से निवृत्त होकर अपनी बैठक में आया था।

एक सेवक ने आकर निवेदन किया—

"मन्त्रिवर, कोई राजसेवक द्वार पर उपस्थित है। आपसे भेंट करना चाहता है।"

"भेज दो।"

आगन्तुक व्यक्ति डीलडौल मे आकर्षक था। उसका वदन कसा हुआ, मजबूत था। किन्तु उसके वस्त्र सामान्य थे और चेहरे पर बुझी काति थी।

वस्तुपाल ने तीखी निगाह से उस व्यक्ति को देखा। फिर पूछा—

"कौन हो?"

"प्रणाम, मन्त्रीजी! मैं तो भूवड हूँ। राणाजी का चाकर हूँ।"

"तुम्हे महल मे मैंने देखा है।"

"हमेशा राणाजी की सेवा मे रहता हूँ प्रभु!"

"कैसे आए हो?"

अब भूवड कुछ देर के लिये चुप्पी मार गया। वह जो कुछ कहने आया था वह कैसे कहे, सो सोच नही पाया। उसे लगा जैसे किसी ने उसका कठ पकड लिया हो।

वस्तुपाल ने उसकी झिझक को देखा और फिर कहा—

"डर रहे हो? मुझसे डरने की आवश्यकता नही है। कहो, क्या कहना चाहते हो?"

"मन्त्रीजी! मुझे' • ।"

कहता-कहता वह फिर अटक गया। मन्त्री ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा—

"वेतन नही मिला? यही कहना चाहते हो कि और कुछ?"

वस्तुपाल की मुस्कराहट मे जादू था। उसने अपना असर दिखाया और कुछ आश्वस्त होकर भूवड बोला—

"मन्त्रीजी अपराध क्षमा हो, मैं चोर हूँ।'

गुजरात के अमात्य ने एक बार फिर उस व्यक्ति को ऊपर से नीचे तक देखा—इतना बलिष्ठ व्यक्ति और चोर? राजा की सेवा मे है, और चोरी? और फिर चोरी करके मुझे कहने आया है? उन्होंने कहा—

"तुम चोर नहीं हो सकते। हुआ क्या है ठीक-ठीक बताओ।"

"एक दिन राणा वीरधवल संध्या के समय चन्द्रशाला में लेटे हुए थे। मैं उनके पैर दबा रहा था। धीरे-धीरे राणाजी को नींद आ गई—मैंने सोचा कि उन्हें नींद आ गई है, गरीब आदमी हूँ मंत्रीजी! मेरे मन में लालच आ गया। घरवाली रोज़ खर्चे को लेकर ताना देती थी। कहती थी कि बड़े राजा के सेवक बने हो, घर पर खाने को दाना तक नहीं है। सो मेरे मन में नीच विचार आ ही गया। राणाजी के हाथ में एक बहुमूल्य मुद्रिका थी। मैंने धीरे से वह मुद्रिका राणाजी की अँगुली में से निकाल ली…।

"मंत्रीजी, राणाजी सोए नहीं थे, वे जाग रहे थे। किन्तु फिर भी वे चुपचाप चादर ओढ़े वैसे ही पड़े रहे। उन्होंने जान लिया कि मैंने मुद्रिका चुरा ली है, किन्तु वे कुछ नहीं बोले। मैं मुद्रिका लेकर अपने घर चला गया।"

"उसके बाद?"—अमात्य ने पूछा।

"मंत्रीजी! आदमी एक बार नीच काम करले तो फिर आगे भी वैसे ही करता चला जाता है। मेरी अकल मारी गई थी। दूसरे दिन राणाजी फिर संध्या को चन्द्रशाला में लेटे हुए थे—उसी तरह जैसे पहले दिन। चादर से उन्होंने अपना मुँह ढक लिया था। मैं उनके पैर दबा रहा था। मैंने देखा राणाजी की अँगुली में ठीक वैसी ही दूसरी मुद्रिका पड़ी हुई थी। अब मेरी मूर्खता और लोभ की बात देखिए कि मैंने सोचा कि एक की जगह दो मुद्रिकायें मेरे पास हों तो कितना अच्छा हो?

"राणाजी सो रहे थे। यानी सोचा कि वे सो गए हैं। असल में वे पहले दिन की तरह ही जाग रहे थे। मैंने धीरे-से उनके हाथ में से वह मुद्रिका निकालने का प्रयत्न किया। यह जानकर अपना मुँह ढके-ढके ही राणाजी ने कहा—'भूवड, अब मेरे पास ऐसी दूसरी मुद्रिका नहीं है भाई।'—मंत्रीजी मुझे काटो तो खून नहीं। राणाजी ने मेरी

चोरी पकड ली। अब क्या वे मुझे जीवित छोडेंगे ? मैं तो भय के मारे थर-थर कांप गया और किसी तरह अपना काला मुँह लेकर वहाँ से चला आया।"

"हूँ! फिर राणाजी ने तुम्हे क्या सजा दी ?"

"मन्त्रीजी! जुग-जुग जियें मेरे राणा! आज के जमाने मे ऐसे राजा होते है क्या ? दूसरे दिन मुझे राणाजी ने अपने पास बुलाया। मैं तो घरवाली से सदा-सदा के लिये विदा लेकर भगवान् को याद करता हुआ गया। लेकिन राणाजी ने मुझसे कहा—'अरे भूवड! मैं जानता हूँ तूने लाचारी मे चोरी की है। इसम तेरा अपराध नही है। अपराध तो मेरा है कि मैं अपने सेवको के सुख-दु ख का विचार नही करता। तुझे कई महीनो से वेतन ही नही मिला तो तू खाएगा क्या ? सेवा क्या करेगा ?'

'उसके बाद मन्त्रीजी! राणा जी ने मुझे कुछ धन दिया और मेरा पद भी ऊँचा कर दिया।"

"हूँ! ठीक किया। अब तू क्या कहना चाहता है ?"

"आपने गुजरात का मन्त्री-पद सम्भाला है, प्रभु! राजा तो दयालु है। किन्तु मन्त्री के सामने भी मैं अपनी चोरी का सच्चा किस्सा कह देना चाहता था। मेरा मन व्याकुल हो रहा था। अब आपके सामने सब कुछ कह देने के बाद मेरा मन हल्का हो गया है। दण्ड की मुझे चिंता नही है। अपराधी को दण्ड तो मिलना ही चाहिये।"

उस समय तेजपाल ने बैठक म प्रवेश किया। वस्तुपाल ने भूवड को उत्तर दिया—

"तुझे दण्ड मैं दूँगा। स्वीकार करेगा न ?"

"मेरे मन को तभी शान्ति मिलेगी मन्त्रीजी!"

"ठीक है। तब तू आज से राणाजी की सेवा म नही रहेगा, गुजरात के सेनापति के साथ रहेगा।"

तेजपाल! वस्तुपाल ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम्हारी

"तुम चोर नहीं हो सकते। हुआ क्या है ठीक-ठीक बताओ।"

"एक दिन राणा वीरधवल संध्या के समय चन्द्रशाला में लेटे हुए थे। मैं उनके पैर दबा रहा था। धीरे-धीरे राणाजी को नींद आ गई—मैंने सोचा कि उन्हें नींद आ गई है, गरीब आदमी हूँ मंत्रीजी! मेरे मन में लालच आ गया। घरवाली रोज खर्चे को लेकर ताना देती थी। कहती थी कि बड़े राजा के सेवक बने हो, घर पर खाने को दाना तक नहीं है। सो मेरे मन में नीच विचार आ ही गया। राणाजी के हाथ में एक बहुमूल्य मुद्रिका थी। मैंने धीरे से वह मुद्रिका राणाजी की अँगुली में से निकाल ली..."।

"मंत्रीजी, राणाजी सोए नहीं थे, वे जाग रहे थे। किन्तु फिर भी वे चुपचाप चादर ओढ़े वैसे ही पड़े रहे। उन्होंने जान लिया कि मैंने मुद्रिका चुरा ली है, किन्तु वे कुछ नहीं बोले। मैं मुद्रिका लेकर अपने घर चला गया।"

"इसके बाद?"—अमात्य ने पूछा।

"मंत्रीजी! आदमी एक बार नीच काम करले तो फिर आगे भी वैसे ही करता चला जाता है। मेरी अक्ल मारी गई थी। दूसरे दिन राणाजी फिर संध्या को चन्द्रशाला में लेटे हुए थे—उसी तरह जैसे पहले दिन। चादर से उन्होंने अपना मुँह ढक लिया था। मैं उनके पैर दबा रहा था। मैंने देखा राणाजी की अँगुली में ठीक वैसी ही दूसरी मुद्रिका पड़ी हुई थी। अब मेरी मूर्खता और लोभ की बात देखिए कि मैंने सोचा कि एक की जगह दो मुद्रिकायें मेरे पास हों तो कितना अच्छा हो?

"राणाजी सो रहे थे। यानी सोचा कि वे सो गए हैं। असल में वे पहले दिन की तरह ही जाग रहे थे। मैंने धीरे-से उनके हाथ में से वह मुद्रिका निकालने का प्रयत्न किया। यह जानकर अपना मुँह ढके-ढके ही राणाजी ने कहा—'सुवड, अब मेरे पास ऐसी दूसरी मुद्रिका नहीं है भाई।'—मंत्रीजी मुझे काटो तो खून नहीं। राणाजी ने मेरी

चोरी पकड ली। अब क्या वे मुझे जीवित छोडेंगे ? मैं तो भय के मारे थर-थर कांप गया और किसी तरह अपना काला मुँह लेकर वहां से चला आया।"

"हूँ ! फिर राणाजी ने तुम्हे क्या सजा दी ?"

"मत्रीजी ! जुग-जुग जियें मेरे राणा ! आज के जमाने मे ऐसे राजा होते है क्या ? दूसरे दिन मुझे राणाजी ने अपने पास बुलाया। मैं तो घरवाली से सदा-सदा के लिये विदा लेकर भगवान् की याद करता हुआ गया। लेकिन राणाजी ने मुझसे कहा—'अरे भूवड ! मैं जानता हूँ तूने लाचारी मे चोरी की है। इसमे तेरा अपराध नही है। अपराध तो मेरा है कि मैं अपने सेवको के सुख-दु ख का विचार नही करता। तुझे कई महीनो से वेतन ही नही मिला तो तू खाएगा क्या ? सेवा क्या करेगा ?'

"उसके बाद मत्रीजी ! राणा जी ने मुझे कुछ धन दिया और मेरा पद भी ऊँचा कर दिया।"

"हूँ ! ठीक किया। अब तू क्या कहना चाहता है ?"

"आपने गुजरात का मत्री-पद सम्भाला है, प्रभु ! राजा तो दयालु है। किन्तु मत्री के सामने भी मैं अपनी चोरी का सच्चा किस्सा कह देना चाहता था। मेरा मन व्याकुल हो रहा था। अब आपके सामने सब कुछ कह देने के बाद मेरा मन हल्का हो गया है। दण्ड की मुझे चिंता नही है। अपराधी को दण्ड तो मिलना ही चाहिये।"

उस समय तेजपाल ने बैठक मे प्रवेश किया। वस्तुपाल ने भूवड को उत्तर दिया—

"तुझे दण्ड मैं दूँगा। स्वीकार करेगा न ?"

"मेरे मन को तभी शान्ति मिलेगी मत्रीजी !"

"ठीक है। तब तू आज से राणाजी की सेवा मे नही रहेगा, गुजरात के सेनापति के साथ रहेगा।"

तेजपाल ! वस्तुपाल ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम्हारी

सेना का सबसे पहला और सबसे विश्वस्त सैनिक मैं तुम्हें देता हूँ। यह भूवड है, देख रहे हो इसका डीलडौल ? और भीतर से यह जो कुछ है उसे मैंने देख लिया है। इसे मैं तुम्हारी सेना का प्रथम नायक नियुक्त करता हूँ। राज्य की ओर से इसे एक अश्व दे देना।"

भूवड विस्मय से अवाक् रह गया और सोचने लगा—जैसा राजा वैसा ही मंत्री ! हो गया इस राज्य का कल्याण !

तेजपाल ने गौर से भूवड को देखते हुए बड़े भाई की बात की स्वीकृति में सिर हिला दिया। वस्तुपाल ने फिर भूवड से कहा—

"लेकिन भूवड नायक ! तुम्हारा नाम हमें कुछ जँचा नहीं। तुम्हारा असली नाम है भुवनपाल। क्यों ठीक है न ?"

"आप जैसा कहें वह ठीक है प्रभु ! लेकिन लोग मुझे 'भूवड-भूवड' ही कहते हैं।"

"अब लोग तुम्हें भुवनपाल नायक कहेंगे। अच्छा, अब तुम जा सकते हो।"

गुजरात के अमात्य के घर पर एक चोर आया था लेकिन वह वहाँ से गुजरात का एक सैनिक होकर लौटा। दरिद्री भूवड तेजस्वी नायक भुवनपाल बन गया।

कौन जाने पारस पत्थर का स्पर्श पाकर लोहा सोना कैसे बन जाता है !

***

चन्द्रसागर के तट पर

सभी तरह के लोग होते है। कुछ ऐसे होते है जिन्हे जो कुछ ऊपर से दीखता है उसे ही सत्य समझ लेते है। कुछ ऐसे भी होते हैं जिनकी दृष्टि भीतर तक जाती है। वे लोग व्यक्ति अथवा वस्तु के भीतरी यथार्थ को जान पाते हैं।

धोलके मे जिस दिन संग्रामसिंह वाली घटना घटित हुई थी उसी दिन से लोग अपने-अपने विचार से अपनी-अपनी अटकलें लगा रहे थे। अधिकांश लोग कहते थे—

"संग्रामसिंह राणा वीरधवल का साला था। राणाजी को जब खबर पड़ेगी तो वे वस्तुपालजी से रुष्ट हो जायेंगे।"

"वस्तुपालजी ने विचारपूर्वक काम नही किया। अब उनका धोलके मे रहना सम्भव नही।"

"अपने सगे साले का अपमान भला कौन राजा सहन करेगा? जो

कुछ होना था होता रहता, वस्तुपाल सेठ को बीच में टाँग अड़ाने की जरूरत ही क्या थी ?"

किन्तु कुछ लोग जन्मजात विद्रोही और साहसी होते हैं। ऐसे लोग कहते थे—

वस्तुपालजी ने जो किया वह ठीक किया। क्या हम 'लोग भेड़' बकरी हैं कि राजा जैसा चाहे हमें हाँकता चले ?

राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा के सुख-दुःख का विचार करे। प्रजा के साथ अत्याचार करके कोई राजा अपना अधिकार सुरक्षित नहीं रख सकता।

कुछ लोग तो इतने उत्साही थे कि वे कहते—

यदि वस्तुपालजी के साथ राणा ने कुछ भी दुर्व्यवहार किया तो हम उसे बर्दाश्त नहीं करेंगे। जो होना है वह हो जाय। जीना-मरना परमात्मा के हाथ है। किन्तु अब हम अन्याय सहन नहीं करेंगे।

और जब महाराज भीमदेव की स्वीकृति से राणा द्वारा वस्तुपाल को गुजरात का अमात्य बना दिया गया तथा वे राजा द्वारा प्रदत्त प्रौढ़ मन्दिर में आकर रहने लगे तब बहुत से लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। कुछ लोगों को, धोलके की अधिकांश प्रजा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुपाल के चरित्र तथा बुद्धि-कौशल का प्रभाव जनता पर पड़ चला था। ऐसे समय जब वे गुजरात के अमात्य बन गए तो प्रजा में आशा की एक लहर उठ आई।

अवश्य ही कुछ लोग ऐसे भी थे जो ईर्ष्या की आग में जलने लगे। ऐसे लोग वे थे जो किसी न किसी उपाय से राजशक्ति का दुरुपयोग करते थे और अपना स्वार्थ साधते थे।

जनसाधारण में अमात्य तथा सेनापति की नियुक्ति से जो प्रतिक्रिया हो रही थी वह नगर के किसी भी सार्वजनिक स्थान पर देखी-सुनी जा सकती थी।

चन्द्रसागर के घाट पर, दिन भर, स्नानार्थियों की भीड़ लगी रहती

थी। लोग आते, स्नान-ध्यान करते, सूर्यवन्दन करते, वस्त्रादि स्वच्छ करते, किनारे के शिवालय मे कुछ घड़ी पूजा-पाठ, विश्रामादि करते, और गपशप करके घर लौट जाते। उस दिन घाट पर जो लोग स्नानादि कर रहे थे उनमे बात चली—

"सुना लोगो ! वस्तुपाल सेठ मन्त्री हो गए है। कितने आश्चर्य की बात ?"

"और तेजपाल बन गए हैं सेनापति ! दोनो भाई बड़े जबर निकले भला !"

"अरे, तो उसमे आश्चर्य की क्या बात है ? जिसमे योग्यता होगी वह मन्त्री बनेगा, राजा बनेगा। तुम्हारा इसमे क्या गया ?"

"आने-जाने की क्या बात है भाई ! हम तो चर्चा कर रहे है। कोई राजा हो, कोई मत्री हो, हमे तो ऐसे ही पिसना है।"

"ऐसी बात मत कहो। अब हमारे खटने-पिसने के दिन गए। जानते हो वस्तुपाल सेठ—अब तो कहना चाहिए अमात्य वस्तुपालजी बड़े नीतिवान् व्यक्ति है। यदि उन्होने अमात्य का पद स्वीकार किया है तो कुछ सोच-समझ कर ही किया होगा।"

"तुम ठीक कहते हो जी ! उस दिन कुँवरपछेडे वाली घटना भूल थोड़ी गए हैं हम लोग ? अकेले वस्तुपालजी ही थे कि अन्यायी के सामने अड़ गए थे। अब वे अमात्य हुए है तो क्या प्रजा के हित को भूल जायेंगे ?"

"अजी हमने तो सुना है कि वस्तुपालजी ने राजा से शर्त कराली है कि वे उनके और प्रजा के बीच मे कुछ नही बोलेंगे। अब सच क्या है यह तो भगवान् जाने !"

"जो कुछ भी हो, लेकिन वस्तुपालजी प्रजा के हित को भूल नही सकते यह निश्चित है।"

लोग इसी प्रकार की अनेक बातें कर रहे थे। इन लोगो मे-से कुछ अलग हटकर पडित जगन्नाथ "हर हर गंगे" कर रहे थे। वे चुपचाप लोगों की बात सुनते भी जा रहे थे। वैसे वे मितभाषी थे और फिर

प्रातःकाल विजया का सेवन कर लेने के पश्चात् तो वे और भी कम बोलते थे। अपनी प्रातःकालीन विजया को वे 'कागाबासी' कहते थे।

इस समय पंडित जगन्नाथ पूरी तरंग में थे। भीतर विजया की तरंग और बाहर चन्द्रसागर की चपल तरंग। लोगों की बातें सुनते-सुनते उन्हें अचानक क्या सूझी कि समीप के लोगों को पुकारकर वे बोले—

"इधर आओ जी तुम लोग!"

पंडित जगन्नाथ का लोग आदर करते थे। भारतवर्ष में उस युग में पंडितों-विद्वानों का आदर जनता करती ही थी। फिर पंडित जगन्नाथ का स्वभाव भी बड़ा मधुर था। जब बात करते, बड़े प्रेम से, हँसते-हँसते।

सो पंडितजी के आदेश को सुनकर लोग एक-एक कर उनके समीप खिसक आए। पंडितजी घाट की सीढ़ियों पर कमर तक जल में थे। एक लोटे से वे जल भर-भर कर अपने मस्तक पर उँड़ेल रहे थे। जब आस-पास के सब लोग उनके पास आ गए तब उन्होंने कहा—

"क्या चर्चा चल रही थी?"

"कुछ नहीं पंडितजी! आजकल तो धोलके में एक ही विषय की चर्चा है। वस्तुपालजी के बारे में बात चल रही थी।"—एक ने उत्तर दिया।

"वही पूछता हूँ, क्या बात चल रही थी?"—दो लोटे पानी पंडित जी ने मस्तक पर उँड़ेल लिया।

"कोई खास बात नहीं पंडितजी! हम लोग सोच रहे थे कि राणा जी ने कैसे वस्तुपालजी को अमात्य बना दिया? हुआ तो यह अच्छा ही, किन्तु आश्चर्य अवश्य है। लोग तो सोचते थे कि राणा उनसे रुष्ट होंगे।"—दूसरे ने उत्तर दिया।

विजया के प्रभाव से पंडित जगन्नाथ की आँखें सुर्ख हो रही थीं। ठण्डे जल ने उसमें भरपूर सहयोग दिया था। अब एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए, जल से बाहर निकलते हुए उन्होंने कहा—

देवी का आदेश है।

लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। यह तो कोई रहस्य की बात है। रहस्य की बात तो जाननी चाहिये। लोग चुप लगाकर प्रतीक्षा करने लगे कि पंडितजी आगे भी कुछ कहें। किन्तु वे तो चुपचाप आकर गीली धोती उतार कर सूखी धोती पहनने लगे और मौन बने रहे।

यह देखकर एक व्यक्ति ने कहा—

"पंडितजी ! यह आपने क्या रहस्य-वाक्य कह डाला ? हम लोग तो कुछ समझे ही नहीं।"

"अज्ञानी हो। यदि सभी बातें तुम लोग जान जाते तो पंडित जगन्नाथ को कौन पूछता ?"

लोगों ने जान लिया कि आज पंडितजी पूरी मस्ती में हैं। ऐसे समय वे बड़ी मजेदार और ज्ञान की बातें कह जाते हैं। यदि प्रयत्न किया गया तो आज वे कुछ न कुछ कहेंगे। एक ने पंडितजी को प्रसन्न करने के लिये उनकी उतारी हुई गीली धोती लपककर उठा ली और उसे धो डालने के लिये लेकर सीढ़ी उतर चला। दूसरा बोला—

"धोती तो जगना धो देगा पंडितजी ! आप तो विराजिए।"

"अरे नहीं भाई ! मैं धोए लेता हूँ—अभी धोए लेता हूँ, कष्ट न करो।"

"कष्ट काहे का पंडितजी ! पंडितों की सेवा में भी कोई कष्ट होता है भला ? यह तो पुण्यवानों को ही नसीब होता है। हाँ तो, आप कह रहे थे कि देवी का आदेश है·····।"

"और नहीं तो क्या है ? पंडित जगन्नाथ असत्य नहीं बोलता।"

"लेकिन पंडितजी कौन सी देवी ? किसको आदेश ? कैसा आदेश ?"

"तुम लोग मानोगे नहीं। अच्छा सुनो। गुजरात के प्राचीन इतिहास की कथा है—

"कान्यकुब्ज देश के तिलक के समान तथा सम्पत्ति से भरपूर

कल्याणकटक नामके नगर में लाख ग्रामों के ऐश्वर्य से इन्द्र के समान शोभित तथा अतिशय तेज के भंडार स्वरूप 'भूमड' नामका राजा था। उसने प्रसन्न होकर महणल्ल नामकी अपनी पुत्री को दहेज स्वरूप यह गुर्जर भूमि प्रदान की।

"पिता के प्रसाद से गुजरात का स्वामिनी-पद प्राप्त करके अत्यन्त तेजयुक्त महणल्ल देवी ने चिरकाल तक इस भूमि का भोग किया। अन्त में शुभ ध्यानपूर्वक मृत्यु को प्राप्त कर वह उसी नाम से इस गुर्जर भूमि की अधिष्ठात्री देवी हुई—इतना तो तुम जानते हो न ?"

"देवी के विषय में कौन नहीं जानता, पंडितजी ! लेकिन आगे......।"

"वही तो बता रहा हूँ। एक दिन रात्रि में राणा वीरधवल के पूर्वकृत-पुण्य कर्मों से प्रसन्न होकर देवी उनके सामने प्रगट हुईं और बोली—'हे राजन् ! पूर्वकाल में गुजरात के चापोत्कट (चावडा) वंश में सूर्य के समान तेजस्वी और महा भुजाओं वाला वनराज नाम का राजा हो गया है। उसने विक्रम संवत् ८०२ में इस पृथ्वी पर विख्यात अणहिल्लपुर नामका नगर बसाया। उसने श्री शीलाचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा सहित तथा सुवर्ण-कुंभ से शोभायमान पंचासर नामका जिनचैत्य उस नगर में बनवाया तथा न्यायपूर्वक साठ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद योगराज नामके उसके पुत्र ने पैंतीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद शत्रुओं का नाश करने वाले क्षेमराज ने धर्म तथा न्याय की सहायता से पच्चीस वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उन्तीस वर्ष तक भूमड राजा ने तथा बीस वर्ष तक वैरिसिंह ने राज्य किया। उसके बाद सूर्य के समान तेजस्वी रत्नादित्य ने पन्द्रह वर्ष इस पृथ्वी का पालन किया।

'कान्यकुब्ज के स्वामी भूमड राजा के कर्ण के समान तेजस्वी कर्णादित्य नाम का पुत्र था। उसका पुत्र चन्द्रादित्य, उसका सोमादित्य तथा उसका पुत्र भुवनादित्य, इस प्रकार से अनुक्रम से चार राजा

हुए। भुवनादित्य के राज, बीज तथा दडक नामके तीन पुत्र हुए। उनमे से पुरुष-श्रेष्ठ, विद्यावान, कौतुकी राज घूमता-घामता अनुक्रम से पाटन आ पहुँचा। वह, अश्वक्रीड़ा मे अत्यन्त निपुण था। उसकी अश्वक्रीड़ा से प्रसन्न होकर सामन्तसिंह ने अपनी बहिन लीलावती का विवाह उससे कर दिया। उनके मूलराज नामका पुत्र हुआ जो शभु समान अतुल बलशाली था। यह मूलराज विक्रम सम्वत् ९०० मे राजा बना। वह चौलुक्य-वश मे चन्द्र के समान शोभायुक्त था। पचपन वर्ष तक उसने राज्य का सुख भोगा। उसके बाद तेज मे सूर्य के समान चामुण्डराज भूपति ने तेरह वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद अपने शत्रुओं को अपना दास बनाने वाला वल्लभराज राजा हुआ जिसने केवल छह महीने तक ही राज्य किया किन्तु उन छह महीनो मे ही वह अपनी प्रजा को राम के समान प्रिय हो गया।

वल्लभराज के पश्चात् कल्पवृक्ष के समान दातार तथा प्रजा को सुख पहुँचाने वाले दुर्लभराज ने साढे ग्यारह वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद पराक्रम मे भीम के समान तथा सोमवश का शृगार करने वाला भीमदेव नामक राजा हुआ जिसने शत्रुओं की परम्परा को नष्ट करके बयालीस वर्ष तक एक छत्र राज्य किया। उसके बाद कर्णदेव राजा हुआ उसके हृदय मे देवभक्ति की भावना प्रबल थी। उसके बाद पृथ्वी के भार को धारण करने मे समर्थ जयसिंह राजा हुआ। उसने पवित्र शत्रुञ्जय तीर्थ पर जिनेश्वर भगवान् की पूजा के निमित्त बारह ग्राम अर्पण किए थे। पाटन म उसने त्रैलोक्यसुन्दर नामका मन्दिर भी बनवाया जिसमे सारे जगत् का वैभव एक ही स्थान पर देखा जा सकता है। सिद्धपुर मे उसने कैलास पर्वत के समान उच्च शिखरो वाला शिव-प्रासाद भी बनवाया था। इस शिव-प्रासाद मे उसने राजा मदनपुत्र से दण्ड स्वरूप प्राप्त किए छियानवे करोड द्रम्म का व्यय करके चौदह सौ पुतलियों सहित शम्भु की मूर्ति स्थापित कराई थी।

गिरनार तीर्थ पर भी राजा जयसिंह ने तीनों जगत् में उत्कृष्ट श्री नेमिनाथ भगवान् का चैत्य बनवाया। उसमें ऊँचे सुवर्ण-बिम्ब की स्थापना कराने में उसने बहत्तर करोड़ द्रुम्म का व्यय किया। अर्थीजनों को उनका अभीष्ट प्रदान करने वाले इस राजा ने पचास वर्ष तक गुर्जर-भूमि पर राज्य किया और 'सिद्धराज' का विरुद प्राप्त किया।

'सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् करुणा के अमृत के सागर के समान तथा विक्रमादित्य जैसे श्री कुमारपाल राजा हुए। कहते हैं कि अपने तीस वर्ष और आठ मास के राज्य-काल में इस राजा ने अपने राज्य में से हिंसा को समाप्त कर दिया। तथा चौदह सौ जिन बिम्बों की स्थापना कराई जो आज भी उसकी कीर्ति की कथा कहते हैं।

'कुमारपाल के पश्चात् शत्रुमण्डल को भय से भ्रमित करने वाले अजयपाल ने सत्ताईस वर्ष राज्य किया। उसके बाद विज्ञजनों में प्रख्यात मूलराज सोलंकी राजा हुआ। उसने तीन वर्ष, आठ मास तथा दो दिन राज्य किया। उसके बाद भीमराज ने एक वर्ष, एक मास तथा चौबीस दिन राज्य किया और उसके बाद अर्णोराज राजा हुआ जो अपने शरीर की कान्ति में कामदेव के समान था तथा तेज और लक्ष्मी का तो भंडार ही था।

'उसी अर्णोराज के वंशज आज तुम दोनों पिता-पुत्र—राणा लवणप्रसाद तथा राणा वीरधवल हो।

'राणा वीरधवल ! मैं गुर्जर-भूमि की अधिष्ठात्री देवी तुम्हें आदेश देती हूँ कि तुम वस्तुपाल और तेजपाल इन दोनों भाइयों को अपना मंत्री बनाओ। समय विकट आ गया है और इस विकट समय में तुम्हें उन दोनों परम पुरुपार्थी भाइयों का सहयोग प्राप्त करना अनिवार्य है। यदि तुम ऐसा करोगे तो गुजरात का अभ्युदय होगा।"

पंडित जगन्नाथ ने अन्त में कहा—

"गुजरात की अधिष्ठात्री देवी राणा वीरधवल को यह आदेश देकर अपनी देहकान्ति से नभस्थल को बिजली के समान प्रकाशित करती हुई अदृश्य हो गई।"

पडितजी के श्रोता बडे धैर्यपूर्वक, एकचित्त होकर इस रोचक रहस्योद्घाटन को सुन रहे थे। जब कथा समाप्त हुई, उसके बाद भी सब लोग कुछ देर तक चुपचाप बैठे रह गए।

अन्त मे एक जिज्ञासु ने कहा—

"तो पडितजी ! इस प्रकार देवी ने स्वय राजा को आदेश दिया कि वे वस्तुपाल को मत्री बनाएँ ?"

"और नही तो क्या ? क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ?"

"शिव, शिव ! आप झूठ काहे को कहोगे ! भला मैं तो पूछ रहा था वैसे ही।"

"लेकिन पडितजी ! इस बात का ज्ञान आपको कैसे हुआ ? क्या राणाजी से आपकी भेंट हुई थी ? अथवा देवी आपको स्वय आकर यह घटना कह गई ?"

"इससे तुम्हे क्या प्रयोजन ? जो हुआ इसका ज्ञान पडित जगन्नाथ शास्त्री को न होगा तो क्या तुम गधा का होगा ? जाओ यहाँ से अब, मेरा कठ सूख रहा है।"

"जल लाता हूँ पडितजी !"—कहकर एक व्यक्ति रेत म लोटा माँजकर साफ जल भर लाया। पडितजी ने प्रेमपूर्वक जलपान किया और बोले—

"अच्छा अब चलता हूँ।"

पडित जगन्नाथ के चन्द्रसागर क घाट से चले जान के बाद लोग आपस म बोले—

"आज पडित जी ने जम के जमाई है।"

"यह देवी वाली बात मुझे तो विजया का ही प्रताप दिखाई देता है, वरना कौनसी देवी और कौन से दर्शन ?"

यह कैसा अमात्य आया गुजरात का ? क्या कविता कर करके ही गुजरात की गई शक्ति को लौटा लाया जा सकेगा ? लोगों ने सोचा था कि वस्तुपाल वीर हैं, धीर हैं, नीतिज्ञ हैं, तो वे आमात्य होने के पश्चात् राज्य-व्यवस्था में शीघ्र ही सुधार करेंगे, गुजरात के शत्रुओं पर चढ़ दौड़ेंगे। किन्तु यहाँ तो किसी परिन्दे ने पर तक नहीं फड़फड़ाए ! अमात्य के आवास पर कवियों तथा विद्वानों का जमघट लगा रहता है—राजनीति की कोई चर्चा नहीं। आखिर यह माजरा क्या था ?

यह वस्तुपाल की एक चाल थी। वे जानते थे कि इस समय गुजरात एकदम निर्वल था। न सेना थी और न ही राज्यकोप में धन। यदि ऐसे समय में वे अपनी अनेक तैयारियों को प्रगट होने देते तो गुजरात के पुराने शत्रु आशंकित हो जाते और वहुत सम्भव था कि वे गुजरात पर चढ़ दौड़ते, इससे पूर्व कि गुजरात उनसे लोहा लेने के लिए प्रस्तुत हो चुका होता।

इसलिए वस्तुपाल इन दिनों में काव्य-सृजन कर रहे थे और गुजरात के शत्रु समझ रहे थे कि गुजरात का अमात्य भाँग पीकर पड़ा है।

औरों की क्या वात. स्वयं राणा वीरधवल वैचेन हो रहे थे और मन ही मन कुढ़ रहे थे कि इस वस्तुपाल को हुआ क्या है ? क्या ऐसे ही राज्य चलाएगा ?

किन्तु वे कहें तो किसको कहें ? ले-देकर एक दिन वे राजगुरु सोमेश्वर से ही वोले—

"सोमेश्वरजी ! यह क्या तमाशा हो रहा है ?"

"कैसा तमाशा, राजन् !"

"यह वस्तुपाल तो दिन-रात कविता करता है। मेरे गुजरात का क्या होगा? मैं महाराज भीमदेव को क्या उत्तर दूँगा ?"

सोमेश्वर को मन ही मन हँसी आई। उन्होंने उत्तर दिया—

"राजन् आपको चिन्ता किस बात की है ?"

"तुम भी कमाल करते हो सोमेश्वरजी ! जैसा अमात्य वैसे ही राजगुरु। तुम लोग यदि इसी तरह दिन-रात कविता लिखते रहोगे तो क्या होगा ? खंभात का क्या होगा ? वनथली का क्या होगा। देवगिरि''''''।"

"राजन् ! आप चिन्ता न करें। आपका अमात्य जाग रहा है।"

"जैसा जाग रहा है वह मैं देख तो रहा हूँ।"

"भीतर ही भीतर सब तैयारियाँ चल रही है राजन् ! एक मास के अन्दर ही खम्भात का सिद्दीक सेठ और उसकी पीठ पर उछलता हुआ लाट का शख ठिकाने लग जाएँगे।"

"लेकिन कैसे ?"

"उसकी व्यवस्था हो रही है। गुजरात के सैन्य में एक-एक कर जान पर खेलने वाले सैनिक जमा हो रहे हैं। राज्यकोष में धन एकत्र किया जा रहा है।"

"लेकिन मुझे तो कुछ नहीं मालूम।"

"प्रगट में सब कुछ वैसा ही रखा जा रहा है राजन् ! जैसा पहले था। ताकि शत्रु सावधान न हो जाय। किन्तु भीतर ही भीतर वस्तुपाल जी की तीव्र दृष्टि राज्य के भीतर और बाहर घूम रही है। और अब तो खंभात पर चढ़ने की तैयारी है।"

"ऐसा !"

"हाँ, देव।"

"लेकिन सेना ?"

"वस्तुपालजी का कहना है खंभात लेने के लिए बल से अधिक चातुर्य की आवश्यकता होगी। दो-तीन सौ सैनिक ही उसके लिए पर्याप्त होंगे।"

"कमाल करता है यह वस्तुपाल ! तीन सौ सैनिकों से खम्भात लेगा ?"

"लेंगे राजन् ! वस्तुपालजी जो कहते हैं वह होकर ही रहता है।"

कुछ समय राणा वीरधवल विचार करते रहे फिर बोले—

"मुझे कुछ समझ में नहीं आता। किन्तु आप कहते हैं तो ठीक है। मैं तो बैठा-बैठा उकता रहा हूँ। रानी मेरे प्राण लेती है और बार-बार पूछती है कि वनथली का क्या कर रहे हो ? क्या उत्तर दूँ ?"

"कहिए कि छह महिने में वनथली से निबट लिया जायगा, जैसा कि निश्चय किया जा चुका है।"

राणा फिर चुप हो गए। सोमेश्वर उन्हें प्रणाम करके विदा हुए।

राणा से विदा लेकर सोमेश्वर वस्तुपाल के आवास पर पहुँचे। उस समय वस्तुपाल ने खेमसिंह को बुलाया था और वे उसे आदेश दे रहे थे—

"पाटन जाकर गुरुदेव कुमारदेव को मेरा प्रणाम कहना और कहना कि कीर्तिदेव को भेज दो उसकी मुझे जरूरत है।"

इतने में ही सोमेश्वर वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर वस्तुपाल ने कहा—

"अरे आओ पण्डितराज ! तुम्हारी सलाह भी ले लूँ। कीर्तिदेव को यहाँ बुला लेता हूँ। उससे मुझे काम लेना है। बुला लूँ न ?"

"यदि काम लेना है तो अवश्य ही बुलाना होगा। बुला लीजिए, वह बड़ा चतुर है।"

"मेरा भी यही विचार है। ठीक है, खेमसिंह ! जो कहा वह सुन लिया न ? अब तुम जा सकते हो। ज्यादा शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है, समझे न !"

खेमसिंह समझ गया कि सारा कार्य अत्यन्त गुप्त रूप से करने का आदेश अमात्य दे रहे है। आखिर वह पुराना राजसेवक था। सिर झुकाकर उसने उत्तर दिया—

"खेमसिंह ने क्या किया और क्या नही इसे हवा भी नही जान पाएगी अमात्यवर !"

वस्तुपाल हँसे। खेमसिंह चला गया।

एकात होने पर सोमेश्वर ने कहा—

"राणा बेचैन हो रहे हैं वस्तुपालजी !"

"क्यो ?"

"कहते हैं कि वस्तुपाल तो भाँग पीकर पोथो से सिर मारता रहता है, उसे राज्य की व्यवस्था से क्या लेना देना है ?"

"तब ?"

"तब क्या यह तो आप ही जानें ! मैंने तो आपको सूचित किया है।"

"आपने क्या उत्तर दिया ?"

"अब मैंने तो जो कहना था सो कह ही दिया। किन्तु जल्दी ही कुछ करने का समय आ गया है ऐसा आपको लगता है कि नही ?"

"और जो करना है वह मैं कर रहा हूँ ऐसा आपको लगता है कि नही ?"

वस्तुपाल ने यह उत्तर हँसते हुए दिया और सुनकर सोमेश्वर भी हँस पडे। फिर वस्तुपाल ने कहा—

"आज सप्तमी है। इस अमावस्या को खभात के विशाल ग्रन्थागार को टटोलने जाने का विचार है सोमेश्वरजी। सुना है वहाँ बहुमूल्य ग्रन्थ भरे पडे है।"

सोमेश्वर समझ गए कि खभात के किस विशाल 'ग्रन्थागार' का 'टटोलने' की बात अमात्य कह रहे है। हँसते हुए उन्होने उत्तर

दिया—

"और पंडित कीर्तिदेव को क्या इसी शुभ कार्य में सहायता लेने के लिए बुलाया गया है ?"

"हाँ, मैं खंभात जाऊँ उससे पूर्व कीर्तिदेव एक चक्कर वहाँ पहले लगा लेगा और वर्षों से जो धूल उन बहुमूल्य ग्रन्थों पर पड़ गई है उसे थोड़ा झाड़-पोंछ देगा।"

"लेकिन आपके वे बहुमूल्य ग्रन्थ जिस आदमी के अधिकार में हैं वह कीर्तिदेव को कुछ गिनेगा ?"

"कीर्तिदेव को क्या करना है ? थोड़ी जानकारी करके मुझे सूचित करना ही तो है जिसमें मेरा अधिक समय नष्ट न हो।"

"हाँ, ठीक तो है।" कुछ सोचते हुए सोमेश्वर ने कहा।

"मैं अभी थोड़े समय में राणाजी से मिलने आऊँगा। आप मिलें तो सूचित कर दीजिएगा।"

"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

"पधारिए।"

सोमेश्वर के जाने के बाद वस्तुपाल ने कोषाध्यक्ष वामनदेव को बुलाया। जब वे आकर विनीत भाव से एक आसन पर बैठ गए तब वस्तुपाल ने पूछा—

"वामनदेवजी ! मैंने आपको जो कहा था उसके विषय में क्या प्रगति हुई ?"

हिचकते हुए कोषाध्यक्ष ने उत्तर दिया—

"अमात्यवर ! प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन जो ग्राम-प्रमुख, पट्टलिक आदि राज्य का धन दबाकर बैठे गए हैं वे आसानी से धन देना नहीं चाहते।"

उत्तर सुनकर वस्तुपाल की भौंहों में बल पड़ गए। कठोर स्वर में उन्होंने कहा—

"वामनदेवजी ! आप ब्राह्मण है, इसलिए मैंने आपको अपने पद से पृथक् नही किया । एक अवसर आपको दिया है । वर्षों से आपने और आपके आश्रय मे पल रहे बेईमानो ने राज्यकोष को लूट लिया है । मैं तो बनिया हूँ न ! बहियाँ देख सकता हूँ । हिसाब समझ सकता हूँ । एक पाई भी जो राज्य की है वह मैं छोड़ूँगा नही । अमावस्या को प्रातःकाल मैं आपका हिसाब देखूँगा तब तक की मोहलत आप अपने लिए और समझलें । जो करना हो वह व्यवस्था करलें, किन्तु उस दिन मुझे हिसाब बराबर नही मिला तो आपके हित मे अच्छा नही होगा, यह कहे देता हूँ । आपको और कुछ कहना है ?"

सकपकाया हुआ कोषाध्यक्ष पसीने-पसीने हो गया था, किसी तरह उसने उत्तर दिया—

"अमात्यवर ! क्षमा करें ब्राह्मण हूँ, जो भूल हो गई वह हो गई, आगे नही होगी । मैं तो राज्य की पाई-पाई लौटा दूँगा प्रभु ! किन्तु दूसरे लोग······।"

"दूसरे लोगो से भी कह दीजिएगा कि अमावस्या की तिथि अन्तिम तिथि है । समझ गए आप ? अन्यथा वस्तुपाल को टेढी अँगुली से घी निकालना भी आता है, अब जाइये आप ।"

कोषाध्यक्ष वामनदेव चुपचाप अमात्य को प्रणाम करके खिसक गए । अमात्य वस्तुपाल राणा वीरधवल से मिलने जाने की तैयारी मे लग गए । वे बाहर जाने को ही थे कि तेजपाल आए । उन्हे देखकर वस्तुपाल ने पूछा –

"क्यो तेजू ! किधर घूम आए ?"

"घूमना किधर है बडे भैया ! आपके सैनिक ही खोजता फिर रहा हूँ ।"

"गुजरात मे तुम्हे सैनिक खोजने जाना पड रहा है क्या ?"

"नही भैया, ऐसी बात तो नहीं । अब तो सख्या हजारो पर पहुँच

रही है। किन्तु उनमें से पाँच सौ सैनिक ऐसे छाँट रहा हूँ जो खड़े होकर एकवार काल को भी ललकारें तो काल सहम जाय।"

"शावास तेजू ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। और सब कार्य सावधानी से, चुपचाप चल रहा है न ?"

"इसीलिए तो कुछ विलम्ब हो रहा है भैया ! अन्यथा इस समय तक तो धोलके से खंभात तक गुजरात की सेना खड़ी कर देता।"

वस्तुपाल हँस पड़े। वोले—

"अमावस्या की रात्रि, तेजू !"

और यह कहकर वह वाहर निकल पड़े।

***

रेशम का व्यापारी

दूसरे ही दिन कीर्तिदेव आ पहुँचा। वह छरहरे बदन का साँवले रंग का युवक था। उसके अंगों में चपलता भरी हुई थी और वे बलिष्ट भी थे।

पाटन से जब कीर्तिदेव धोलके आया तो सबसे पहले वह वस्तुपाल से ही मिलने उनके प्रौढ मन्दिर में गया। वस्तुपाल ने उसका स्वागत करते हुए उससे पहले पाटन के सब समाचार पूछे, गुरुदेव के स्वास्थ्य के बारे में प्रश्न किया और फिर कहा—

"कीर्तिदेव! गुरुदेव की कृपा से काफी योग्य हो गए हो। अब कुछ कर डालो।"

"आज्ञा दीजिए आप। मैं प्रस्तुत हूँ।"

"एक चक्कर खंभात का लगाना है कीर्तिदेव! मैं वहाँ आने वाली अमावस्या को पहुँचूँगा। उससे पहले तुम एक बार हो आओ तो मुझे

खोज-ख़बर मिले।"

"ठीक है। लेकिन वहाँ जाकर मुझे करना क्या है ?"

"आँखें खुली रखकर देखना है कि सिद्दीक क्या कर रहा है। लाट का शासक शंख खंभात से कितना दूर है और सिद्दीक और शंख ने गुजरात का कितना धन आपस में बाँटकर अपने कोपागारों में भर रखा है। कर सकोगे न यह काम ?"

"क्यों नहीं ? तीन दिन के भीतर आपको लौटकर सब समाचार दे दूँगा अमात्यवर !"

"जल्दी नहीं है, अमावस्या तक भी लौटो तो चलेगा। और यदि किसी कारण लौटना सम्भव न भी हो सके तो फिर मुझे खंभात में ही मिलना।"

"समझ गया।"

"मुझे अपने गुप्तचरों द्वारा अबतक जो समाजार मिले हैं उनके अनुसार तो खंभात पके हुए फल जैसे किसी भी क्षण टपक पड़े ऐसा हो गया है। सिद्दीक के जुल्मों से लोग परेशान हो गए हैं लेकिन कीर्तिदेव ! तुम्हारी आँख जो कुछ खंभात में देखेगी वह मेरे लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा।"

"चिन्ता न करें। सिद्दीक सेठ को एकाध पटखनी कीर्तिदेव भी दे सकता है।"

"नहीं, नहीं, कीर्तिदेव ! ऐसा कुछ करना नहीं। चुपचाप सारी स्थिति का लेखा-जोखा लगा लेना बस। मैं नहीं पहुँचूँ तबतक कोई झगड़ा-फसाद करना तो दूर, सिद्दीक को सन्देह भी नहीं होना देना है। वह पुराना घाघ है। यद्यपि मेरे गुप्तचरों ने अबतक उसे चकमा दिया है और वह मान बैठा है कि मैं तो यहाँ भाँग पीकर कविता से सिर मारता रहता हूँ किन्तु वह फिर भी चालाक और तेज है। जरा सा शक होते ही वह अपनी किलेबन्दी कर लेगा।"

"कर भी लेगा तो कबतक छिपकर बैठेगा ? बकरे की माँ अब

कबतक खैर मनाएगो ?"—कीर्तिदेव ने मस्ती से कहा।

किन्तु वस्तुपाल ने अपनी गंभीरता का त्याग नही किया उन्होंने कहा—

"कीर्तिदेव! यह तो ठीक है कि सिद्दीकसेठ के दिन पूरे हुए, लेकिन मैं कम से कम रक्तपात चाहता हूँ। गुजरात के एक-एक सैनिक का जीवन बहुमूल्य है। ये बहुमूल्य ज़िन्दगियाँ मैं यूँ ही नष्ट नही कर देना चाहता। इसलिए यह अपने हित मे है कि सिद्दीक गफलत मे रहे।"

"ठीक है अमात्यवर! मैंने तो यूँही हँसी मे कहा था।"

"वह मैं समझ गया था कीर्तिदेव! किन्तु मैं तुम्हे कह देना चाहता हूँ कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त सावधानी से पूरा होना चाहिए।"

"ऐसा ही करने का प्रयत्न करूँगा।"

"मैंने सुना है कि तुम लोग वेश बदलने को कला मे भी निपुण हो गए हो। चपलता तुम्हारी देह मे भरी ही है। अब कोई कसर बची नही। अस्तु, तुम मेरे गुरुभाई हो, किन्तु आयु मे छोटे हो, इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद और उपदेश देने का अधिकारी हूँ। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर सको। सिद्दीक को यह भरोसा दिलाने की कोशिश करना कि मैं तो काव्य-शास्त्र का प्रेमी हूँ, खभात के ग्रन्थागार मे-से कुछ ग्रन्थ देखने के लिए ही खभात आ रहा हूँ।"

"आप चिन्ता न करें वस्तुपालजी'' '''अमात्यवर!"

"वस्तुपाल ही ठीक है। अमात्य को रहने दो। गुरुभाई को नाम लेकर पुकारने का पूरा अधिकार है और वही उचित भी है।"

वस्तुपाल और कीर्तिदेव मे इतनी बातें हो पाई थी कि बैठक मे बहिन वयजुका आई। उसने पहले कभी कीर्तिदेव को देखा नही था इसलिए एकाएक वह थोडी झिझक गई और वापस लौटने को हुई। वस्तुपाल ने कहा—

"अरे वयजुका! इन्हे जानती नही? ये मेरे गुरुभाई हैं—

खोज-खबर मिले।"

"ठीक है। लेकिन वहाँ जाकर मुझे करना क्या है?"

"आँखें खुली रखकर देखना है कि सिद्दीक क्या कर रहा है। लाट का शासक शंख खंभात से कितना दूर है और सिद्दीक और शंख ने गुजरात का कितना धन आपस में बाँटकर अपने कोषागारों में भर रखा है। कर सकोगे न यह काम?"

"क्यों नहीं? तीन दिन के भीतर आपको लौटकर सब समाचार दे दूँगा अमात्यवर!"

"जल्दी नहीं है, अमावस्या तक भी लौटो तो चलेगा। और यदि किसी कारण लौटना सम्भव न भी हो सके तो फिर मुझे खंभात में ही मिलना।"

"समझ गया।"

"मुझे अपने गुप्तचरों द्वारा अबतक जो समाजार मिले हैं उनके अनुसार तो खंभात पके हुए फल जैसे किसी भी क्षण टपक पड़े ऐसा हो गया है। सिद्दीक के जुल्मों से लोग परेशान हो गए हैं लेकिन कीर्तिदेव! तुम्हारी आँख जो कुछ खंभात में देखेगी वह मेरे लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा।"

"चिन्ता न करें। सिद्दीक सेठ को एकाध पटखनी कीर्तिदेव भी दे सकता है।"

"नहीं, नहीं, कीर्तिदेव! ऐसा कुछ करना नहीं। चुपचाप सारी स्थिति का लेखा-जोखा लगा लेना बस। मैं नहीं पहुँचूँ तबतक कोई झगड़ा-फसाद करना तो दूर, सिद्दीक को सन्देह भी नहीं होना देना है। वह पुराना बाघ है। यद्यपि मेरे गुप्तचरों ने अबतक उसे चकमा दिया है और वह मान बैठा है कि मैं तो यहाँ भाँग पीकर कविता से सिर मारता रहता हूँ किन्तु वह फिर भी चालाक और तेज है। जरा सा शक होते ही वह अपनी किलेबन्दी कर लेगा।"

"कर भी लेगा तो कबतक छिपकर बैठेगा? बकरे की माँ अब

कबतक खैर मनाएगी ?"—कीर्तिदेव ने मस्ती से कहा।

किन्तु वस्तुपाल ने अपनी गभीरता का त्याग नही किया उन्होंने कहा—

"कीर्तिदेव ! यह तो ठीक है कि सिद्दीकसेठ के दिन पूरे हुए, लेकिन मैं कम से कम रक्तपात चाहता हूँ। गुजरात के एक-एक सैनिक का जीवन बहुमूल्य है। ये बहुमूल्य जिन्दगियाँ मैं यूँ ही नष्ट नही कर देना चाहता। इसलिए यह अपने हित मे है कि सिद्दीक गफलत मे रहे।"

"ठीक है अमात्यवर ! मैंने तो यूँही हँसी मे कहा था।"

"वह मैं समझ गया था कीर्तिदेव ! किन्तु मै तुम्हे कह देना चाहता हूँ कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त सावधानी से पूरा होना चाहिए।"

"ऐसा ही करने का प्रयत्न करूँगा।"

"मैंने सुना है कि तुम लोग वेश बदलने की कला मे भी निपुण हो गए हो। चपलता तुम्हारी देह मे भरी ही है। अब कोई कसर बची नही। अस्तु, तुम मेरे गुरुभाई हो, किन्तु आयु मे छोटे हो, इसलिए मैं तुम्हे आशीर्वाद और उपदेश देने का अधिकारी हूँ। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर सको। सिद्दीक को यह भरोसा दिलाने की कोशिश करना कि मैं तो काव्य-शास्त्र का प्रेमी हूँ, खभात के ग्रन्थागार मे-से कुछ ग्रन्थ देखने के लिए ही खभात आ रहा हूँ।"

"आप चिन्ता न करें वस्तुपालजी······अमात्यवर !"

"वस्तुपाल ही ठीक है। अमात्य को रहने दो। गुरुभाई को नाम लेकर पुकारने का पूरा अधिकार है और वही उचित भी है।"

वस्तुपाल और कीर्तिदेव मे इतनी बातें हो पाई थी कि बैठक मे बहिन वयजुका आई। उसने पहले कभी कीर्तिदेव को देखा नही था इसलिए एकाएक वह थोडी झिझक गई और वापस लौटने को हुई। वस्तुपाल ने कहा—

"अरे वयजुका ! इन्हे जानती नही ? ये मेरे गुरुभाई हैं—

कीर्तिदेव ! इनके बारे में मैंने कितनी ही बार तुमसे चर्चा की है।"

आश्रम-जीवन की बात जब भी चला करती थी तब प्रायः कीर्तिदेव का जिक्र आ ही जाया करता था। नाम लेने पर वयजुका पहिचान गई और उसने अपने दोनों कोमल हाथ जोड़कर कीर्तिदेव को नमस्कार किया। कीर्तिदेव ने भी प्रतिनमस्कार में अपने हाथ जोड़ दिए।

वयजुका ने तब कहा—

"मैं आपसे नाश्ते के लिए पूछने आई थी भैया ! अच्छा हुआ कीर्तिदेवजी भी उपस्थित हैं। ले आऊँ न ?"

"हाँ, हाँ, अवश्य। लेकिन तेजू कहाँ है ?"

"उनका तो आजकल कोई ठौरठिकाना ही नहीं है। दिनरात सैनिकों की छावनी में ही पड़े रहते हैं। कहते हैं कि भैया का आदेश है, गुजरात के गर्वीले लड़वैये एकत्र कर रहा हूँ।"

सुनकर वस्तुपाल हँसे। कहा—

"ठीक कर रहा है। मुझे उनकी जरूरत है न ! अच्छा तू हमारे लिए नाश्ता ला दे। तेजू आ जाए तो पहले इधर ही भेज देना।"

वयजुका नाश्ता लाने चली गई। दोनों गुरुभाई फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

कीर्तिदेव जब जाने लगा तब वस्तुपाल ने उसे एक बात और भी कही—

"अरे हाँ, कीर्तिदेव, मैं भूल गया था—खंभात में तुम्हारी मदद के लिए एक और भी व्यक्ति है। उसे खोज लेना। वह काम आएगा। सिद्दीक के पास ही गुलामी करता है वह, नाम है रदीवा। उसके सामने मेरा नाम लोगे तो वह तुम्हारी आज्ञानुसार करेगा। जरा देखना कि कि वह किस काम आ सकता है।"

"ठीक है, उसे खोज लूँगा। तो अब मैं चलता हूँ। पंडित सोमेश्वर से भेंट करता हुआ निकल जाऊँगा। तेजपालजी भी मिल गए तो आनन्द रहेगा, वरना लौटकर ही मिलूँगा फिर उनसे।"

कीर्तिदेव ! इनके बारे में मैंने कितनी ही बार तुझसे चर्चा की है।"

आश्रम-जीवन की बात जब भी चला करती थी तब प्रायः कीर्तिदेव का जिक्र आ ही जाया करता था। नाम लेने पर वयजुका पहिचान गई और उसने अपने दोनों कोमल हाथ जोड़कर कीर्तिदेव को नमस्कार किया। कीर्तिदेव ने भी प्रतिनमस्कार में अपने हाथ जोड़ दिए।

वयजुका ने तब कहा—

"मैं आपसे नाश्ते के लिए पूछने आई थी भैया ! अच्छा हुआ कीर्तिदेवजी भी उपस्थित हैं। ले आऊँ न ?"

"हाँ, हाँ, अवश्य। लेकिन तेजू कहाँ है ?"

"उनका तो आजकल कोई ठौरठिकाना ही नहीं है। दिनरात सैनिकों की छावनी में ही पड़े रहते हैं। कहते हैं कि भैया का आदेश है, गुजरात के गर्वीले लड़वैये एकत्र कर रहा हूँ।"

सुनकर वस्तुपाल हँसे। कहा—

"ठीक कर रहा है। मुझे उनकी जरूरत है न ! अच्छा तू हमारे लिए नाश्ता ला दे। तेजू आ जाए तो पहले इधर ही भेज देना।"

वयजुका नाश्ता लाने चली गई। दोनों गुरुभाई फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

कीर्तिदेव जब जाने लगा तब वस्तुपाल ने उसे एक बात और भी कही—

"अरे हाँ, कीर्तिदेव, मैं भूल गया था—खंभात में तुम्हारी मदद के लिए एक और भी व्यक्ति है। उसे खोज लेना। वह काम आएगा। सिद्दीक के पास ही गुलामी करता है वह, नाम है रदीवा। उसके सामने मेरा नाम लोगे तो वह तुम्हारी आज्ञानुसार करेगा। जरा देखना कि कि वह किस काम आ सकता है।"

"ठीक है, उसे खोज लूँगा। तो अब मैं चलता हूँ। पंडित सोमेश्वर से भेंट करता हुआ निकल जाऊँगा। तेजपालजी भी मिल गए तो आनन्द रहेगा, वरना लौटकर ही मिलूँगा फिर उनसे।"

"राजगढ में होकर जाओगे तो सम्भव है दोनों व्यक्ति तुम्हे वही मिल जाय।"

"अच्छी बात है। नमस्कार........"

"नमस्कार कीर्तिदेव ! अरे हाँ, तुम्हे अश्व बदलने की आवश्यकता तो नहीं है ?"

"नही, मेरा अश्व सधा हुआ है।"

"तब ठीक है, विदा !"

"विदा !"

× × × ×

सयोगवश पडित सोमेश्वर और तेजपाल दोनों ही राजमहल से साथ-साथ लौट रहे थे और वे कीर्तिदेव को द्वार पर ही मिल गए। उनसे भेंटकर, कुशल-मगल पूछकर और दो एक बातें बीते जमाने की करके वह अपनी यात्रा पर चल पडा।

कीर्तिदेव के पास आयुध के नाम पर केवल एक छोटी-सी कटार थी जिसे उसने बडे गुप्तरूप से अपने वस्त्रों मे छिपा रखा था। इसके अतिरिक्त एक थैले मे उसने कुछ और गटर-पटर सामग्री रख छोडी थी जो उसके आवश्यकता पडने पर वेश बदलने के काम आती थी।

गुजरात की हरी-भरी भूमि का और स्थान-स्थान पर बहते हुए निर्झरों का आनन्द लेते हुए कीर्तिदेव मस्ती मे गुनगुनाता हुआ, लेकिन तेजी से आगे बढता जा रहा था। मार्ग में वह कभी-कभी विश्राम के लिए ठहर जाता और थोडे समय बाद ही आगे चल पडता।

चलते-चलते जब वह खभात की सीमा पर पहुँचा तब उसने अपने अश्व को रोककर इधर-उधर दृष्टि दौडाई। आसपास कोई व्यक्ति आता-जाता नही दीख रहा था। कीर्तिदेव एक झुरमुट की ओर अपना अश्व लेकर चला गया और देखते-देखते घनी हरियाली म अदृश्य हो गया।

कुछ ही देर वाद उस झुरमुट में-से एक यवन व्यापारी अश्व पर सवार होकर बाहर आया। यह यवन-व्यापारी और कोई नहीं, कीर्तिदेव ही था। जिस व्यक्ति ने कीर्तिदेव के साथ बहुत-सा समय व्यतीत न किया हो और उसकी चालढाल का गहरा अध्ययन न किया हो उस व्यक्ति के लिए उसे पहिचानना असम्भव ही था।

इस वेश-परिवर्तन के बाद कीर्तिदेव खंभात के पाटन-दरवाजे की ओर बढ़ गया।

जिस समय कीर्तिदेव ने खंभात में प्रवेश किया उस समय सूर्यास्त में लगभग दो घड़ी शेष थी। कीर्तिदेव ने इस समय का उपयोग इधर-उधर घूम-फिरकर नगर के रंग-ढंग देखने में किया। नगर के मुख्य बाजारों में-से होता हुआ वह सिद्दीकसेठ की विशाल महलनुमा हवेली तक भी हो आया। हवेली के चारोंओर एक चक्कर लगाकर कीर्तिदेव ने उसके भूगोल का ठीक तरह से अध्ययन कर लिया—कौन जाने किस समय कैसी जरूरत पड़ जाय।

खम्भात उस जमाने में व्यापार का वड़ा भारी केन्द्र था। रातदिन वहाँ दूर-दूर देश के हजारों व्यापारी आते-जाते रहते थे। इसलिए खम्भात में आए हुए इस नए यवन-व्यापारी की ओर किसी ने कोई कोई विशेष लक्ष्य नहीं किया।

गोधूलि वेला घिर आई। खंभात के घरों और दूकानों में सहस्रों दीपक जल उठे और नगर जगमग-जगमग करने लगा। अव कीर्तिदेव को अपने रैन-बसेरे की चिन्ता हुई। नगर-प्रवेश के बाद अब तक वह इधर-उधर भटकता ही रहा था। इस समय भी वह खंभात के समुद्र तट पर खड़ा किनारे से लगते और किनारा छोड़कर अगाध जलराशि में अदृश्य हो जाते हुए अनेक जलयानों को देख रहा था।

रात्रि हो गई है अब कहीं जाकर विश्राम करना चाहिए यह सोच कर वह समुद्रतट से नगर की ओर चलने को हुआ ही था कि उसने दूर समुद्र में किसी विशाल जलयान को आते हुए देखा। अँधेरा घिर

"आपका नाम ?"

"अ······नाम है······गयासुद्दीन। रेशम का व्यापार करता हूँ।"

"आप जरा ठहरिए, अभी मालिक को इत्तला करता हूँ।"

कीर्तिदेव द्वार पर ही ठहर गया। रक्षक भीतर अनेक विशाल दालानों और चौकों को पार करता हुआ जाने कहाँ अदृश्य हो गया।

रक्षक ने सिद्दीकसेठ के कक्ष में प्रवेश करके सूचित किया—

"मालिक कोई व्यापारी आया है। आपसे मिलना चाहता है।"

राजा-महाराजाओं को भी कठिनाई से नसीब हों एसे भव्य, बहुमूल्य प्रसाधनों से सुसज्जित उस विशाल कक्ष में एक ऊँचे पलंग पर सिद्दीकसेठ लेटा हुआ पान चबा रहा था। पलंग ठोस सोने का बना हुआ था। उस पर रेशमी और सोने-चाँदी के तारों से बुने हुए गद्दे और चादरें पड़े हुए थे। कक्ष में चारोंओर अनेक द्वार तथा खिड़कियाँ भी थीं। जिन पर ऐसे ही सोने-चाँदी के काम वाले परदे पड़े हुए थे। पलंग के समीप ही एक चौकी पड़ी हुई थी जिस पर पैर रखकर सिद्दीकसेठ उस ऊँचे पलंग पर चढ़ा करता था। वह चौकी भी ठोस सोने की थी।

रक्षक की बात सुनकर सिद्दीकसेठ झल्लाकर बोला—

"गधे कहीं के, कोई वक्त-बेवक्त भी देखते हो ? जाओ कह दो सुबह मुलाकात होगी। व्यापारी है तो मेहमानखाने में जगह दे दो। रदीवा ! जरा जमकर पैर दबा।"

उस समय रदीवा ही सेठ के पाँव दबा रहा था। ऐसा हुक्म रदीवे को तब मिला करता था जब सिद्दीकसेठ को उससे कोई बात करनी होती या कोई समाचार पूछना होता। अन्यथा बूढ़े सिद्दीक के हाथ-पैरों का मर्दन करने के लिए दसियों जवान और सुन्दर यवन दासियाँ नियुक्त थीं।

मालिक का आदेश सुनकर रक्षक उल्टे पैर लौट चला।

किन्तु वह द्वार तक पहुँचा ही था कि जाने सिद्दीकसेठ को कौनसी

प्रेरणा हुई कि उसने रक्षक को पुकार कर वापिस बुलाया और कहा—

"अबे घोंघे की औलाद ! उस व्यापारी का कुछ नाम-पता भी है कि नहीं ?"

"हुजूर, उसने अपना नाम गयासुद्दीन बताया है। रेशम का व्यापारी है।"—डरते-डरते रक्षक ने उत्तर दिया।

"आया कहाँ से है ?"

'जहन्नुम से'—मन ही मन रक्षक ने खीझकर कहा—"मेरी जान लेने को कहाँ से आ मरा यह व्यापारी ? किन्तु प्रगट मे उसने उत्तर दिया—

"हुजूर ! मालिक ! कहता है कहीं दूर से आया हूँ।"

"दूर के बच्चे ! कोई नाम भी होता है दूर की जगह का कि नहीं ? जा उससे पूछ कर आ कहाँ से आया है। रदीवा ! पैर ज़रा जमकर तो दबा।"

रदीवा जमकर सिद्दीकसेठ के पैर दबाने लगा।

कुछ ही देर मे रक्षक लौटकर आया और उसने कहा—

"मालिक ! वह व्यापारी शहर दिल्ली का रहने वाला है। इस वक्त पाटन से होकर आ रहा है ?"

"पाटन से ? पाटन में क्या वह पत्थरों का व्यापार करने गया था ?"—यह कहकर क्षणभर सिद्दीकसेठ ने कुछ विचार किया और फिर रक्षक को आदेश दिया—

"अच्छा ज़रा उसे मेरे पास भेज दे। रदीवा ! पैर ज़रा·····।"

"जमकर दबाता हूँ हुजूर !"—कहकर रदीवा उचककर उकड़ूँ बैठ गया और जमकर अपने मालिक के पैर दबाने लगा।

रक्षक के साथ कीर्तिदेव भीतर चला। लम्बे-चौड़े चक्करदार दालानों, चौकों और गलियारों में से गुज़रते वक्त वह सोच रहा था कि शेर की माँद मे सीधा प्रवेश करके उसने कहीं भूल तो नहीं की ? आसार जो दिखाई दे रहे है उनसे तो लगता है, कि खम्भात का यह

बूढ़ा व्यापारी एक ही घाघ होना चाहिए। तब यदि भूल हो गई तो ? लेकिन देखा जायगा। जब एक बार आमना-सामना होना ही था तो वह जितनी जल्दी हो जाय वही ठीक।

आखिर अपने मालिक के निजी कक्ष के द्वार पर कीर्तिदेव को पहुँचा कर रक्षक ने कहा--

"आप भीतर तशरीफ ले जाइये।"

कीर्तिदेव ने कक्ष में प्रवेश किया। सिद्दीकसेठ बिल्ली जैसी आँखों से कीर्तिदेव को दूर से ही घूर रहा था। नज़दीक पहुँचकर कीर्तिदेव ने सलाम किया। जवाब में सिद्दीकसेठ ने पहले पास में रखी हुई पान की सुनहरी डिबिया में से एक गिलौरी निकालकर अपने मुहँ में रखी और फिर डिबिया कीर्तिदेव की ओर बढ़ाते हुए कहा--

"पान लीजिए, तशरीफ रखिए। पान में थोड़ी तम्बाकू है आप तम्बाकू तो खाते होंगे न ?"

संकेत के अनुसार एक ऊँची-सी चौकी पर कीर्तिदेव बैठे गया और उसने उत्तर दिया।

"माफ़ करें। मैं पान नहीं खाता। और तम्बाकू तो यदि भूल से भी खाने में आ जाय तो सिर चकरा जाय।"

सिद्दीकसेठ की एक आँख ज़रा दब गई। कीर्तिदेव के चेहरे पर तीखी निगाह जमाए हुए उसने कहा—

"कोई मुजायका नहीं, कोई मुजायका नहीं। लेकिन खम्भात में आकर अच्छे-अच्छे चक्कर खा जाते हैं यह हकीकत है।"

"आपका खम्भात बड़ा शानदार है, सेठ। मैं तो पहली बार ही इधर आया हूँ। घड़ी-दो-घड़ी में जितना घूम फिर कर देखा उसे देखकर कह सकता हूँ कि ऐसे शहर हिन्दोस्तान में बहुत कम हैं।"

"अजी यह भी कोई बात हुई ! आप तो दिल्ली के रहने वाले हैं। मैंने दिल्ली पचासों बार देखी है। दिल्ली जैसा शहर हिन्दोस्तान तो क्या सारी दुनियाँ में ढूँढ़े नहीं मिलेगा।"

"हाँ जी, सेठ, वैसे दिल्ली दिल्ली ही है।"—कीर्तिदेव ने कुछ भी कहने के लिए कह डाला। असल में वह सोच ही नहीं पा रहा था कि इस धूर्त के साथ किसी तरह से बात करनी चाहिए। सिद्दीक की आँखों में झाँकने से उसे विश्वास हो गया था कि वह बड़ी सावधानी से कीर्तिदेव की जाँच कर रहा था

कुछ क्षण बाद सिद्दीक सेठ ने ही कहा—

"तो आप अभी कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं ? पाटन से ?"

"जी हाँ, कुछ व्यापार करना था। वह हो गया···।" वह फिर बोला—

"फिर आपने सोचा कि लगे हाथ एक चक्कर खम्भात का भी लगा लिया जाय। क्यों सेठ ?"

"यही बात है। आपका बड़ा नाम सुना है। सोचा कि इतनी दूर आया हूँ तो खम्भात के बन्दरगाह के राजा सिद्दीकसेठ से भी मुलाकात करता चलूँ।"

"ठीक किया आपने। व्यापारी को व्यापारी से रफ्त बनाए ही रखना चाहिए।"

"यही सोचा था।"

"कुछ माल है आपके पास ?"

"नहीं। पाटन में सब बिक गया। इस बार सीधा खम्भात आने का इरादा करता हूँ। यहाँ आपके जैसे पारखी लोग रहते हैं न !"

उजड़े हुए पाटन में दिल्ली के व्यापारी का सारा माल बिक गया यह सुनकर सिद्दीकसेठ को मन ही मन हँसी आ रही थी किन्तु उसने अपनी हँसी को रोक लिया। कहा—

"तब और कुछ सुनाइये, पाटन कैसा लगा आपको ?"

"व्यापारी को अपने व्यापार स मतलब, सेठ ! व्यापार हो गया तो सब ठीक।"

आदमी चालाक मालूम होता है—सिद्दीकसेठ ने सोचा। इस सारी बातचीत के दौरान वह कीर्तिदेव के चहरे का गौर से अध्ययन कर रहा

था। एकाएक उसकी आँखों में एक चमक-सी आ गई। उसे याद आया—इस आदमी को उसने पाटन में अवश्य देखा है। कहाँ देखा है, कब देखा है यह तो ठीक याद नहीं आता, लेकिन यह दिल्ली का व्यापारी हरगिज़ नहीं है। यह सोचकर सिद्दीकसेठ ने कहा—

"अच्छा सेठ, अब आप इस गरीब के मेहमानखाने में आराम फरमाएँ, थक गए होंगे। आपका जी चाहे तबतक खम्भात को मजे से घूम फिरकर देखिए। और आगे जब व्यापार के लिए निकलें तो सिद्दीकसेठ को याद जरूर करें। जारे, रदीबा, सेठ को मेहमानखाने में ठहरा दे। और देख उन्हें कोई तकलीफ न हो।"

रदीबा का नाम सुनकर कीर्तिदेव कुछ चौंका किन्तु प्रगट में वह शान्त ही बना रहा। उसने सोचा—चलो यह भी अच्छा हुआ, वस्तुपालजी ने रदीबा को खोजने के कहा था सो वह स्वयं ही आसानी से मिल गया। एक निगाह उसने रदीबा को देखा, एक नजर सिद्दीकसेठ के उस कक्ष में सावधानी से घुमाई, छत की ऊँचाई का ही आँखों आँखों में अनुमान किया और कहा—

"आपको इस वक्त मैंने नाहक तकलीफ दी सेठ, माफ करें।"

"क्या बात कहते हैं आप! हमारे मेहमान हैं। जरा भी खयाल न करें। रदीबा जरा पैर······।"

"सेठ को मेहमान खाने में छोड़ आऊँ फिर जमकर पैर दबाता हूँ मालिक!"

"अरे हाँ रे, जा जा। अच्छा सेठ, कल मिलेंगे।"

कीर्तिदेव और रदीबा उस कक्ष से बाहर निकल आए। उसी समय सिद्दीकसेठ ने अपने एक विश्वस्त नौकर को बुलाकर एक आँख दबाकर आदेश दिया—

"यह जो दिल्ली का सेठ अपने मेहमानखाने में ठहरा है इसका खास खयाल करना। समझा न? यह कहाँ-कहाँ जाता है, क्या-क्या करता है, सारी हरकत की खबर मुझे मिलनी चाहिए। भूल हुई तो

तेरी खैर नहीं।"

"फिक्र न करें हुजूर! बन्दे ने आपके काम में कभी गफलत की हो तो कहें।"

"ठीक है, ठीक है। जा अपना काम देख। होशियारी से।"

मेहमानखाने में पहुँचकर जब रवीना पोलितेव को उसका कमरा बताकर तथा वहाँ उपस्थित नौकरों से कहकर उसके खाने-पीने आदि की सारी व्यवस्था करके लौटने लगा तो पोलितेव ने फुसफुसाकर उससे कहा—

"रवीना! बहादुरपाल जी ने तुम्हें याद किया है।"

रवीना चौंक गया और क्षणभर में ही समझ गया कि वह दिल्ली दरबारी कौन है। उसने उसी प्रकार धीमे स्वर में फुसफुसाकर कहा—

"बहुपाल! अभी इन्तजार ठीक है। मालिक के पास से लौटता हुआ आपके पास आऊँगा तब।"—इतनी बात उसने धीरे से आस-पास खड़े सेवकों को सुनाकर कहा—"आप इत्मीनान से खाने-पीने से निबटकर आराम फरमाएँ। आपको किसी और चीज की जरूरत हुई तो मैं थोड़ी देर बाद आकर पूछ जाऊँगा।"

पोलितेव के होठों पर रहस्यभरी मुस्कान खेल रही थी। दिन भर घोड़े की पीठ पर चढ़ा-चढ़ा और फिर यहाँ पहुँचकर चक्कर मारता हुआ वह थक भी गया था। अतः रवीना के चले जाने पर वह विश्राम के लिए निश्चिन्त होकर बिस्तर पर पैर फैलाकर लेट गया।

•••

था। एकाएक उसकी आँखों में एक चमक-सी आ गई। उसे याद आया—इस आदमी को उसने पाटन में अवश्य देखा है। कहाँ देखा है, कब देखा है यह तो ठीक याद नहीं आता, लेकिन यह दिल्ली का व्यापारी हरगिज़ नहीं है। यह सोचकर सिद्दीकसेठ ने कहा—

"अच्छा सेठ, अब आप इस गरीब के मेहमानखाने में आराम फरमाएँ, थक गए होंगे। आपका जी चाहे तबतक खम्भात को मजे से घूम फिरकर देखिए। और आगे जब व्यापार के लिए निकलें तो सिद्दीकसेठ को याद जरूर करें। जारे, रदीबा, सेठ को मेहमानखाने में ठहरा दे। और देख उन्हें कोई तकलीफ न हो।"

रदीबा का नाम सुनकर कीर्तिदेव कुछ चौंका किन्तु प्रगट में वह शान्त ही बना रहा। उसने सोचा—चलो यह भी अच्छा हुआ, वस्तुपालजी ने रदीबा को खोजने के कहा था सो वह स्वयं ही आसानी से मिल गया। एक निगाह उसने रदीबा को देखा, एक नजर सिद्दीकसेठ के उस कक्ष में सावधानी से घुमाई, छत की ऊँचाई का ही आँखों आँखों में अनुमान किया और कहा—

"आपको इस वक्त मैंने नाहक तकलीफ दी सेठ, माफ करें।"

"क्या बात कहते हैं आप! हमारे मेहमान हैं। जरा भी खयाल न करें। रदीबा जरा पैर······।"

"सेठ को मेहमान खाने में छोड़ आऊँ फिर जमकर पैर दबाता हूँ मालिक!"

"अरे हाँ रे, जा जा। अच्छा सेठ, कल मिलेंगे।"

कीर्तिदेव और रदीबा उस कक्ष से बाहर निकल आए। उसी समय सिद्दीकसेठ ने अपने एक विश्वस्त नौकर को बुलाकर एक आँख दबाकर आदेश दिया—

"यह जो दिल्ली का सेठ अपने मेहमानखाने में ठहरा है इसका खास खयाल करना। समझा न? यह कहाँ-कहाँ जाता है, क्या-क्या करता है, सारी हरकत की खबर मुझे मिलनी चाहिए। भूल हुई तो

तेरी खैर नही।"

"फिकर न करें हुजूर ! बन्दे ने अपने काम में कभी गफलत की हो तो कहें।"

"ठीक है, ठीक है। जा अपना काम देख। होशियारी से।"

मेहमानखाने में पहुँचकर जब रदीवा कीर्तिदेव को उसका कमरा बताकर तथा वहाँ उपस्थित सेवकों से कहकर उसके खाने-पीने आदि की सारी व्यवस्था करके लौटने लगा तो कीर्तिदेव ने फुसफुसाकर उससे कहा—

"रदीवा ! वस्तुपालजी ने तुम्हें याद किया है।"

रदीवा चौंक गया और क्षणभर में ही समझ गया कि यह दिल्ली का व्यापारी कौन है। उसने उसी प्रकार धीमे स्वर में फुसफुसाकर कहा—

"चुपचाप ! अभी इधर-उधर लोग हैं। मालिक के पास से लौटता हुआ आपके पास आऊँगा, तब।"—इसके बाद उसने जोर से आस-पास जाते हुए सेवकों को सुनाकर कहा—"आप इतमीनान से खाने-पीने से निबटकर आराम फरमायें। आपको किसी और चीज की जरूरत हुई तो मैं थोड़ी देर बाद आकर पूछ जाऊँगा।"

कीर्तिदेव के ओठों पर रहस्यभरी मुस्कान खेल रही थी। दिन भर घोड़े की पीठ पर चढा-चढा और फिर खंभात पहुँचकर चक्कर मारता हुआ वह थक भी गया था। अत रदीवा के चले जाने पर वह विश्राम के लिए निश्चिन्त होकर बिस्तर पर पैर फैलाकर लेट गया।

***

था। एकाएक उसकी आँखों में एक चमक-सी आ गई। उसे याद आया—इस आदमी को उसने पाटन में अवश्य देखा है। कहाँ देखा है, कब देखा है यह तो ठीक याद नहीं आता, लेकिन यह दिल्ली का व्यापारी हरगिज़ नहीं है। यह सोचकर सिद्दीकसेठ ने कहा—

"अच्छा सेठ, अब आप इस गरीब के मेहमानखाने में आराम फरमाएँ, थक गए होंगे। आपका जी चाहे तबतक खम्भात को मजे से घूम फिरकर देखिए। और आगे जब व्यापार के लिए निकलें तो सिद्दीकसेठ को याद जरूर करें। जारे, रदीवा, सेठ को मेहमानखाने में ठहरा दे। और देख उन्हें कोई तकलीफ न हो।"

रदीवा का नाम सुनकर कीर्तिदेव कुछ चौंका किन्तु प्रगट में वह शान्त ही बना रहा। उसने सोचा—चलो यह भी अच्छा हुआ, वस्तुपालजी ने रदीवा को खोजने के कहा था सो वह स्वयं ही आसानी से मिल गया। एक निगाह उसने रदीवा को देखा, एक नजर सिद्दीकसेठ के उस कक्ष में सावधानी मे घुमाई, छत की ऊँचाई का ही आँखों आँखों में अनुमान किया और कहा— .

"आपको इस वक्त मैंने नाहक तकलीफ दी सेठ, माफ करें।"

"क्या बात कहते हैं आप! हमारे मेहमान हैं। जरा भी खयाल न करें। रदीवा जरा पैर······।"

"सेठ को मेहमान खाने में छोड़ आऊँ फिर जमकर पैर दबाता हूँ मालिक!"

"अरे हाँ रे, जा जा। अच्छा सेठ, कल मिलेंगे।"

कीर्तिदेव और रदीवा उस कक्ष से बाहर निकल आए। उसी समय सिद्दीकसेठ ने अपने एक विश्वस्त नौकर को बुलाकर एक आँख दबाकर आदेश दिया—

"यह जो दिल्ली का सेठ अपने मेहमानखाने में ठहरा है इसका खास खयाल करना। समझा न? यह कहाँ-कहाँ जाता है, क्या-क्या करता है, सारी हरकत की खबर मुझे मिलनी चाहिए। भूल हुई तो

तेरी खैर नही।"

"फिकर न करें हुजूर ! बन्दे ने अपने काम मे कभी गफलत की हो तो कहे।"

"ठीक है, ठीक है। जा अपना काम देख। होशियारी से।"

मेहमानखाने मे पहुँचकर जब रदीवा कीर्तिदेव को उसका कमरा बताकर तथा वहाँ उपस्थित सेवको से कहकर उसके खाने-पीने आदि की सारी व्यवस्था करके लौटने लगा तो कीर्तिदेव ने फुसफुसाकर उससे कहा—

"रदीवा ! वस्तुपालजी ने तुम्हे याद किया है।"

रदीवा चौक गया और क्षणभर मे ही समझ गया कि यह दिल्ली का व्यापारी कौन है। उसने उसी प्रकार धीमे स्वर मे फुसफुसाकर कहा—

"चुपचाप ! अभी इधर-उधर लोग है। मालिक के पास से लौटता हुआ आपके पास आऊँगा, तब।"—इसके बाद उसने जोर से आस-पास जाते हुए सेवको को सुनाकर कहा—"आप इतमीनान से खाने-पीने से निवटकर आराम फरमायें। आपको किसी और चीज की जरूरत हुई तो मैं थोडी देर बाद आकर पूछ जाऊँगा।"

कीर्तिदेव के ओठो पर रहस्यभरी मुस्कान खेल रही थी। दिन भर घोडे की पीठ पर चढा-चढा और फिर खभात पहुँचकर चक्कर मारता हुआ वह थक भी गया था। अत रदीवा के चले जाने पर वह विश्राम के लिए निश्चिन्त होकर बिस्तर पर पैर फैलाकर लेट गया।

***

छोटी आँख से बडी बारीकी से देखता है।"

"देखता होगा। मैं तेरे सिद्दीकसेठ से डरता नही हूँ।"

"मैं डरने की बात नही कहता कीर्तिदेवजी ! लेकिन अगर सेठ को शक हो गया तो फिर खैर नही है। जितना धूर्त है, उतना ही जालिम भी है वह।"

"लेकिन मैं क्या उसकी कोई चोरी कर रहा हूँ ?"

"कमाल करते है आप भी। आप सेठ के ही घर मे घुसकर उसकी खानगी बातो का पता लगाने आए है और कहते हैं कि चोरी थोडे ही कर रहा हूँ। यह तो चोरी करने से भी जियादह खतरनाक बात है।"

"होगी। रदीवा, तू यह बता कि तेरा सेठ किसके बलबूते पर इतना अकड कर रहता है ? खाली पैसे के बल पर तो इतनी अकड उसमे आ नही सकती।"

"पैसा भी है कीर्तिदेवजी और वह वडूय का शख भी है। दोनो की मिली भगत है।"

"शख यहाँ आता-जाता रहता है ?"

"जब जी चाहे। समुद्र के रास्ते आता है और उसी रास्ते से लौट जाता है। उसके पास बडी-बडी नावें है। नावें क्या जहाज है। जहाज क्या, पानी पर चलने वाली पूरी फौज है।"

कीर्तिदेव ने यह सुनकर कुछ देर तक कुछ विचार किया। उसकी आँखो के सामने फिर वही जलयान तैर गया। फिर उसने कहा—

"वडूय से खभात आने का पानी के अलावा भी कोई रास्ता है ?"

"होगा तो मुझे नही मालूम। मैं तो इतना जानता हूँ कि शख जब आता है पानी के रास्ते ही आता है।"

कीर्तिदेव फिर कुछ देर चुप रहा। फिर अचानक उसने पूछा—

"अच्छा रदीवा ! खम्भात के लोग सिद्दीकसेठ के बारे मे क्या राय रखते हैं ?"

"इसे जानवर समझते है। इसके सख्त खिलाफ हैं। मगर कोई

चूँ नहीं कर सकता जनाव । कहते हैं न कि जवर आदमी मारे और रोने न दे । वही वात है ।"

"यहाँ व्यापारी लोग क्या करते हैं ?"

"झख मारते हैं कीर्तिदेवजी ! सवके सव इस ज़ालिम के पंजे में हैं । यह चाहे तो उन्हें भूखा मार दे ।"

"मतलव यह कि कोई दिल से तेरे सेठ को नहीं चाहता ?"

"अजी क़तई नहीं । इससे पिंड छूटे तो सव घी के चिराग़ जलाएँ । मैं तो खुद ही घवराकर और उसके जुल्मों से तंग आकर यहाँ से भाग गया था । भागा तो अच्छे के लिए था लेकिन जान पर वन आई । वह तो वस्तुपालजी ने बचा दिया वरना वे पंडित तो मुझे मार ही डालते ।"

रदीवा ने सारी घटना कीर्तिदेव को सुनाई और कहा—

"मैं वस्तुपालजी का गुलाम हूँ, कीर्तिदेवजी ! उन्हीं के हुक्म से यहाँ वापिस आकर पड़ा हूँ ।"

कीर्तिदेव ने मौन रहकर कुछ देर तक विचार किया और फिर कहा—

"अच्छा रदीवा ! अब तू जा । मैं सोऊँगा । तू कहाँ सोता है ?"

"वड़े फाटक के पास उल्टे हाथ पर जो कोठरियाँ हैं उन्हीं में । नम्वर दो की कोठरी मेरी ही है ।"

"ठीक है, अव तू जा । अधिक देर यहाँ रहेगा तो किसी को शक होगा । मुझे कोई ज़रूरत पड़ेगी तो तुझे वुला भेजूँगा ।"

"हर वक्त हाज़िर रहूँगा । लेकिन कीर्तिदेवजी ! एक वार फिर कहे देता हूँ, होशियारी से रहियेगा ।"

"तू चिन्ता मत कर ।"

रदीवा चला गया । कीर्तिदेव पलंग पर से उठकर कमरे में इधर-उधर चक्कर काटता हुआ कुछ सोचता रहा । उसने उस कमरे को ध्यान से निगाह घुमा-फिरा कर देखा । दरवाज़े के अतिरिक्त दो वड़ी-वड़ी खिड़कियाँ थीं । एक रोशनदान था जो काफी ऊँचाई पर था और

वह सभवत- पीछे बगीचे में खुलता था। कीर्तिदेव ने उस रोशनदान की ऊँचाई को आँखो से मापा और मुस्करा पडा।

अभी रात गहराई नही थी। अर्धरात्रि मे अभी काफी विलम्ब था। यह देखकर कीर्तिदेव ने एक झपकी ले लेने का निश्चय किया और विस्तर पर आकर लेट गया।

ठीक आधी रात का गजर जब बजा तब कीर्तिदेव चौंककर उठ बैठा। उसे झपकी आगई थी। आँखें मलता हुआ वह बिस्तर से नीचे उतरा और कमरे का दरवाजा आधा इच भर खोलकर उसने बाहर झाँका। बाहर दालान मे रोशनी हो रही थी, शायद कोई पहरेदार उधर होगा—वह रास्ता सकटपूर्ण है।

कीर्तिदेव ने दरवाजा फिर से भीतर से मजबूती से बन्द कर लिया और वह खिडकियो के पास गया। एक-एक कर उसने दोना खिडकियो मे-से भी उसी तरह सावधानी स बाहर की ओर देखा—उधर भी रोशनी थी, सभव है कोई पहरेदार उस तरफ भी जागता हो!

अब तो बचा केवल रोशनदान। यही ठीक रहेगा। कीर्तिदेव ने अपने थैले म-से निकालकर कपडे के जूते पहने और अपनी कटार को एक बार हाथ से टटोलकर देख लिया। कटार उसकी अभिन्न सहचरी की तरह उसके सीने से सटी हुई थी।

इसके बाद रोशनदान के नीचे जाकर कीर्तिदेव बिजली की तरह उछला। दूसरे ही क्षण वह रोशनदान की दीवाल को अपनी मजबूत बाहो से पकडे लटक रहा था।

धीरे-धीरे ऊपर सरककर कीर्तिदेव रोशनदान मे-स दूसरी ओर बाहर निकल आया। बाहर घुप्प अँधेरा था। सिद्दीकसेठ की हवेली का यह पिछवाडे वाला बगीचा था और वहाँ सन्नाटा था।

कीर्तिदेव ने कुछ क्षण तक आहट ली। और जब देखा कि सब सुनसान है तब उसने नीचे जमीन पर छलाँग लगा दी।

कुछ देर तक चुपचाप खडा रहकर कीर्तिदेव ने अपनी आँखो को

यूँ नहीं पर बकवास लगाता। कहते हैं न कि जबर मारे और रोने न दे। वही बात है।"

"यहाँ आपके लोग क्या करते हैं?"

"सब मारे हैं कौशिकजी! सबके सब इस बाजार के पंजे में हैं। यह भाई तो उन्हें भुला चुके हैं।"

"मतलब यह कि कोई दिल से तेरे रोष को नहीं जानता?"

"अभी सफाई नहीं। इसमें सिख छूटे तो सब भी के विरुद्ध जाएँ। मैं तो शुरू ही मजबूरन और इनकी जूतों से तंग आकर यहाँ से भाग गया था। भागा तो अच्छे के लिए था लेकिन जान पर बन आई। यह तो नरसूपालजी ने बचा लिया वरना ये पंडित तो मुझे मार ही डालते।"

रशीद ने सारी घटना कौशिक को सुनाई और कहा—

"मैं नरसूपालजी का गुलाम हूँ, कौशिकजी! उन्हीं के हुक्म से यहाँ नौकर आकर पड़ा हूँ।"

कौशिक ने मौन रहकर कुछ देर तक विचार किया और फिर कहा

"अच्छा रशीद! अब तू जा। मैं सोऊँगा। तू कहाँ सोता है?"

"नीचे फाटक के पास उनकी लाश पर जो कोठरियाँ हैं उन्हीं में। सरकार दो की कोठरी मेरी ही है।"

"ठीक है, अब तू जा। अधिक देर यहाँ रहेगा तो किसी को शक होगा। मुझे कोई जरूरत पड़ेगी तो तुझे बुला भेजूँगा।"

"हुजूर जरा होशियार रहिएगा। लेकिन कौशिकजी! एक बार फिर कहे देता हूँ, होशियारी से रहिएगा।"

"तू चिन्ता मत कर।"

रशीद चला गया। कौशिक पलंग पर से उठकर कमरे में इधर-उधर टहलकर काटता हुआ कुछ सोचता रहा। उसने पूरे कमरे को ध्यान से बिलकुल पुनर्निरीक्षण कर लिया। दरवाजों के अतिरिक्त दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं। एक रोशनदान था जो काफी ऊँचाई पर था और

वह सभवतः पीछे बगीचे म खुलता था। कीर्तिदेव ने उस रोशनदान की ऊँचाई को आँखो से मापा और मुस्करा पड़ा।

अभी रात गहराई नही थी। अर्धरात्रि मे अभी काफी विलम्ब था। यह देखकर कीर्तिदेव ने एक झपकी ले लेने का निश्चय किया और बिस्तर पर आकर लेट गया।

ठीक आधी रात का गजर जब बजा तब कीर्तिदेव चौंककर उठ बैठा। उसे झपकी आगई थी। आँखें मलता हुआ वह बिस्तर से नीचे उतरा और कमरे का दरवाज़ा आधा इच भर खोलकर उसने बाहर झाँका। बाहर दालान मे रोशनी हो रही थी, शायद कोई पहरेदार उधर होगा—वह रास्ता सकटपूर्ण है।

कीर्तिदेव ने दरवाजा फिर से भीतर से मजबूती से बन्द कर लिया और वह खिडकियो के पास गया। एक-एक कर उसने दोनो खिड़कियो मे-से भी उसी तरह सावधानी से बाहर की ओर देखा—उधर भी रोशनी थी, सभव है कोई पहरेदार उस तरफ भी जागता हो!

अब तो बचा केवल रोशनदान। यही ठीक रहेगा। कीर्तिदेव ने अपने थैले मे-से निकालकर कपडे के जूते पहने और अपनी कटार को एक बार हाथ से टटोलकर देख लिया। कटार उसकी अभिन्न सहचरी की तरह उसके सीने से सटी हुई थी।

इसके बाद रोशनदान के नीचे जाकर कीर्तिदेव बिजली की तरह उछला। दूसरे ही क्षण वह रोशनदान की दीवाल को अपनी मजबूत बाहो से पकडे लटक रहा था।

धीरे-धीरे ऊपर सरककर कीर्तिदेव रोशनदान मे-से दूसरी ओर बाहर निकल आया। बाहर घुप्प अँधेरा था। सिद्दीकसेठ की हवेली का यह पिछवाडे वाला बगीचा था और वहाँ सन्नाटा था।

कीर्तिदेव ने कुछ क्षण तक आहट ली। और जब देखा कि सब सुनसान है तब उसने नीचे जमीन पर छलांग लगा दी।

कुछ देर तक चुपचाप खडा रहकर कीर्तिदेव ने अपनी आँखो को

अन्धकार से अभ्यस्त किया। फिर जब उसे सूझने लगा तब वह बगीचे की ऊँची दीवार की ओर बढ़ गया।

दीवार काफी ऊँची थी, लेकिन साधारण आदमियों के लिए। कीर्तिदेव के लिए तो वह मामूली-सी खेलने-कूदने के लिए बनाई गई पाल की तरह ही थी। एक ही बार में उचककर वह उस पर चढ़ गया और फिर कूदकर बाहर अदृश्य हो गया।

सीधी सड़क को छोड़कर कीर्तिदेव अन्धकारमय गलियों में से होता हुआ खंभात के पाटन दरवाजे पर जा पहुँचा। नगर का वह द्वार सारी रात खुला रहता था और देश-देश के व्यापारी इस मार्ग से खम्भात आते-जाते रहते थे। इसलिए कीर्तिदेव को इस दरवाज़े से बाहर जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

नगर से बाहर आकर वह सीधा समुद्रतट की ओर गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि आधी रात के समय भी उस बन्दरगाह पर काफी चहल-पहल है। सैकड़ों जहाजी इधर-उधर आ-जा रहे थे और जहाजों पर से माल-असबाब उतार-चढ़ा रहे थे।

भीड़ में घुसकर कीर्तिदेव एक स्थान पर खड़ा हो गया और ध्यान से उस दूर रुके हुए जलयान पर उसने अपनी दृष्टि गड़ा दी। इस समय वह जलयान बहुत धुँधला-सा दीख रहा था और ऐसा दिखाई देता था जैसे किसी अन्धकारमय पर्वत का कोई ऊँचा शिखर बर्फ से आच्छादित हो।

इस जलयान में कौन था, वहाँ क्या हो रहा था, यह जानने के लिए कीर्तिदेव अधीर हो रहा था किन्तु साफ-साफ कुछ दिखाई दे नहीं रहा था। इससे उसकी अधीरता प्रति क्षण बढ़ती ही जा रही थी।

कुछ समय प्रतीक्षा करने और विचार करने के बाद कीर्तिदेव ने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह कोई छोटी-सी नाव कहीं से लेकर एक चक्कर उस जलयान तक लगाकर अवश्य हो आयगा। यह विचार खतरनाक था, किन्तु कीर्तिदेव खतरे से खेलने के लिए कटिबद्ध हो

चुका था। इस आधी रात को, इतने सकट झेलकर वह यहाँ तक आया है तो अब इस रहस्य को जाने बिना ही लौट जाना तो उसे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था।

यह विचार करके वह किसी नाव की तलाश में इधर-उधर घूमने लगा। नाव की तलाश भी वह कर रहा था किन्तु इस बीच उसकी दृष्टि बराबर उस जलयान पर टिकी हुई थी। अचानक उसने देखा कि उस जलयान के समीप से एक विशाल मगरमच्छ पानी पर तैरता हुआ किनारे की तरफ आ रहा है। कीर्तिदेव ध्यान से उस मगरमच्छ को देखने लगा।

ज्यों-ज्यों वह मगरमच्छ किनारे की तरफ आता गया त्यों-त्यों उस की आकृति बडी और स्पष्ट होती गई। और जब वह किनारे के इतना समीप आ गया कि तट पर लगे हुए दीपस्तम्भों की झिलमिल रोशनी उस पर स्पष्ट रूप से पडी तब कीर्तिदेव को एकाएक बडा आनन्द आ गया। उसने देखा कि वह काली छाया जो दूर से मगरमच्छ जैसी दीख रही थी, एक नाव थी, जिसमें तीन व्यक्ति बैठे हुए थे—दो मल्लाह और एक तीसरा व्यक्ति।

वह तीसरा व्यक्ति कौन था ?

कीर्तिदेव एक दीपस्तम्भ की आड लेकर अंधेरे में खडा हो गया।

एकदम निकट आ-जाने पर कीर्तिदेव ने देखा कि वह तीसरा व्यक्ति राजसी तेज से दीप्त है। उसके रौबीले चेहरे पर बडी-बडी स्याह गलमुच्छें थी और उसकी आंखो से अधिकार का मद झरता-सा प्रतीत होता था।

कीर्तिदेव ने सोचा—यह तो कोई व्यापारी नहीं है। तब कौन होगा यह ? क्या वह्रूय का शंख है ? अवश्य वही होना चाहिए। उसका परिश्रम आखिर सफल हुआ। सिद्दीकसेठ और उसके अभिन्न मित्र शंख से खम्भात आते ही मुलाकात हो गई यह अच्छा हुआ, अधिक समय यहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं होगी और वस्तुपालजी को वह समय पर सब सूचना दे सकेगा।

नौका किनारे से आ लगी। मल्लाहों ने रस्सा पकड़कर उसे ठेठ रेत के ऊपर तक घसीट लिया और सम्मान के साथ एक तरफ खड़े हो गए। नौका में बैठा हुआ वह तीसरा व्यक्ति उतरकर तट पर आ-गया और तेज़ी से भीड़ में मिलकर पाटन दरवाज़े की ओर चल पड़ा।

कीर्तिदेव को पहले से ही ऐसा आभास हो रहा था कि वह विशाल जलयान अन्य किसी व्यक्ति का नहीं वडूय के शंख का ही होना चाहिए। और अब उस व्यक्ति को देखकर तो उसे निश्चय ही होगया था कि अन्य कोई नहीं, अवश्य ही शंख है।

कीर्तिदेव छाया की तरह उस व्यक्ति के पीछे-पीछे चल पड़ा।

पाटन दरवाज़े में प्रवेश करके वह व्यक्ति सीधा सिद्दीकसेठ की हवेली की ओर बढ़ गया। उसे उधर जाता देखकर कीर्तिदेव का रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। एक क्षण रुककर उसने विचार किया और फिर उस व्यक्ति का पीछा छोड़कर वह अँधेरी गलियों में होता हुआ तेज़ी से सिद्दीकसेठ की हवेली की ओर चल पड़ा। वह चाहता था कि हवेली पर वह उस व्यक्ति के पहुँचने से पूर्व ही जा पहुँचे। इसलिए वह सुनसान गलियों में लगभग दौड़ता हुआ ही चला गया।

जब कीर्तिदेव हवेली पर पहुँचा तब उसे दूर से वह व्यक्ति उधर ही आता हुआ दिखाई दिया। कीर्तिदेव ने संतोष की एक साँस ली और हवेली के पिछवाड़े से अपने पूर्व परिचित मार्ग से दीवार फाँदकर चुपचाप भीतर प्रविष्ट हो गया। उसके हवेली के बाहर जाने और फिर लौटकर आने की खबर किसी चिड़िया तक को नहीं लग पाई।

कीर्तिदेव अपने कमरे की ओर न जाकर लुकता-छिपता और सावधानी से पंजों के बल चलता सीधा सिद्दीकसेठ के निजी कक्ष की ओर गया। सामने के दरवाज़े पर एक पहरेदार बैठा ऊँघ रहा था। कीर्तिदेव पीछे की ओर गया और एक बड़ी खिड़की पर उचककर चढ़ गया। सावधानी से उसने भीतर झाँककर देखा सिद्दीकसेठ जाग रहा था। उसकी पीठ उस खिड़की की ओर थी जिस पर कीर्तिदेव चढ़ा

नौका किनारे से आ लगा। मल्लाहों ने रस्सी पकड़कर उसे ०० रेत के ऊपर तक घसीट लिया और सम्मान के साथ एक तरफ खड़े हो गए। नौका में बैठा हुआ वह तीसरा व्यक्ति उतरकर तट पर आ-गया और तेज़ी से भीड़ में मिलकर पाटन दरवाज़े की ओर चल पड़ा।

कीर्तिदेव को पहले से ही ऐसा आभास हो रहा था कि वह विशाल जलयान अन्य किसी व्यक्ति का नहीं वडूय के शंख का ही होना चाहिए। और अव उस व्यक्ति को देखकर तो उसे निश्चय ही होगया था कि अन्य कोई नहीं, अवश्य ही शंख है।

कीर्तिदेव छाया की तरह उस व्यक्ति के पीछे-पीछे चल पड़ा।

पाटन दरवाज़े में प्रवेश करके वह व्यक्ति सीधा सिद्दीकसेठ की हवेली की ओर बढ़ गया। उसे उधर जाता देखकर कीर्तिदेव का रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। एक क्षण रुककर उसने विचार किया और फिर उस व्यक्ति का पीछा छोड़कर वह अँधेरी गलियों में होता हुआ तेज़ी से सिद्दीकसेठ की हवेली की ओर चल पड़ा। वह चाहता था कि हवेली पर वह उस व्यक्ति के पहुँचने से पूर्व ही जा पहुँचे। इसलिए वह सुनसान गलियों में लगभग दौड़ता हुआ ही चला गया।

जब कीर्तिदेव हवेली पर पहुँचा तब उसे दूर से वह व्यक्ति उधर ही आता हुआ दिखाई दिया। कीर्तिदेव ने संतोष की एक साँस ली और हवेली के पिछवाड़े से अपने पूर्व परिचित मार्ग से दीवार फाँदकर चुपचाप भीतर प्रविष्ट हो गया। उसके हवेली के बाहर जाने और फिर लौटकर आने की खबर किसी चिड़िया तक को नहीं लग पाई।

कीर्तिदेव अपने कमरे की ओर न जाकर लुकता-छिपता और सावधानी से पंजों के बल चलता सीधा सिद्दीकसेठ के निजी कक्ष की ओर गया। सामने के दरवाज़े पर एक पहरेदार बैठा ऊँघ रहा था। कीर्तिदेव पीछे की ओर गया और एक बड़ी खिड़की पर उचककर चढ़ गया। सावधानी से उसने भीतर झाँककर देखा सिद्दीकसेठ जाग रहा था। उसकी पीठ उस खिड़की की ओर थी जिस पर कीर्तिदेव चढ़ा

हुआ था।

कीर्तिदेव ने सोचा—अवश्य यह धूर्त अपने मित्र की प्रतीक्षा में ही अब तक जाग रहा है। धीरे-से वह खिड़की में-से कूदकर कक्ष में एक अंधेरे कोने में दुबक कर बैठ गया।

कुछ ही देर बाद कक्ष के द्वार पर हलचल हुई और उसके साथ ही वह व्यक्ति भीतर आया जो समुद्रतट पर नौका से उतरा था।

आहट सुनकर सिद्दीकसेठ उठकर पलंग से नीचे उतरा और आगे बढ़कर उसने आगन्तुक व्यक्ति का स्वागत किया—

"बड़ी देर की शंखराज! मैं तो बेचैन हो रहा था।"

"बेचैनी की क्या बात सेठ? मैं तो कब का पहुँच गया था लेकिन तुमने ही कहलवाया था कि मैं आधी रात के बाद आऊँ।"—कहते हुए शंखराज आराम से पलंग पर बैठ गया। सिद्दीकसेठ भी उसके समीप आ बैठा।

पलंग के समीप एक ऊँची चौकी पर प्याले और सुराही रखे हुए थे। हाथ बढ़ाकर सिद्दीकसेठ ने सुराई उठाई और प्यालों में लाल रंग की सुवासित मदिरा डालकर एक प्याला शंखराज को दिया और दूसरा स्वयं ले लिया।

एक घूँट पीकर शंखराज ने कहा—

"क्या बात है सेठ, इस बार तुमने मुझे इस तरह चोरों की तरह छिपकर आने के लिए क्यों कहा?"

"शंखराज! मुझे दाल में कुछ काला नज़र आता है।"

"क्या मतलब?"

"वैसे तो सब ठीक है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि वस्तुपाल कुछ गड़बड़ करना चाहता है।"

"वह कैसे?"

"आजकल उसके गुप्तचर खंभात में खूब घूमने लगे हैं।"

"तो उससे क्या हुआ? उस बनिए मंत्री की क्या मजाल जो

खंभात में आकर तुमसे छेड़छाड़ करे ?"

"शंखराज ! आपके रहते हुए मुझे किसी बात का ज़रा भी डर नहीं है, लेकिन फिर भी होशियारी तो बरतना ही चाहिए।"

"लेकिन इस बीच में क्या कोई नई बात हुई है जो तुम इतनी होशियारी बरतने की बात कह रहे हो ?"

सिद्दीकसेठ ने अपना प्याला खाली करके दुबारा भर लिया। शंखराज ने भी सेठ का अनुकरण किया। फिर सिद्दीकसेठ बोला—

"शंखराज ! वैसे तो वस्तुपाल यही कहता है कि उसे एक बार खम्भात में कुछ किताबें-विताबें देखने आना है, लेकिन मुझे भरोसा नहीं होता।"

"क्या भरोसा नहीं होता ?"

"यही कि वह केवल इसीलिए खंभात आ रहा है।"

"इसके अलावा और उसे यहाँ क्या करना है ?"

"यह तो खुदा जाने, लेकिन यदि उसने कुछ उखाड़-पछाड़ की तो ?"

"कैसी उखाड़-पछाड़ ?"

"अरे शंखराज ! वह बनिया है। हिसाब-किताब के मामले को समझता है।"

हिसाब-किताब का ज़िक्र आने पर शंखराज के ओठों पर एक रहस्यमय मुस्कान आई। उसने कहा—

"ठीक याद दिलाई, सेठ ! पिछले महीने का हिसाब अभी आपने किया नहीं क्या ?"

सिद्दीकसेठ शंखराज का आशय समझ गया। तुरन्त बोला—

"उसकी क्या चिन्ता करते हैं शंखराज ! कल ही लेते जाइयेगा। सब कुछ आपका ही है। मैं तो आपके आने की खबर सुनकर ही रुक गया था कि आपके साथ ही भेज दूँगा।"

"ठीक है, ठीक है, सेठ ! ऐसी चिन्ता मुझे नही है। मैंने तो याद दिलाई है बस।"

"सो अच्छा किया शखराज ! लेकिन मैं कह रहा था······।"

"हाँ, सेठ, तुम जो कह रहे थे कि वस्तुपाल कुछ उखाड-पछाड करना चाहता है सो क्या बात थी ?"

सिद्दीकसेठ ने सीधे बैठने की कोशिश करते हुए कहा—

"वस्तुपाल के बारे मे मुझे जितने समाचार अब तक मिले है उससे जाहिर होता है कि वह होशियार और ईमानदार आदमी है। और बनिया तो वह है ही। खभात मे क्या हो रहा है और क्या नही, यह सब जब वह यहाँ आयेगा तो क्या जान नही लेगा ?"

"जान लेगा तो क्या कर लेगा ?"

"अरे शखराज ! आप तो हमेशा ऐसी ही बातें करते हो। आप रहोगे वडूथ मे और मैं रहूँगा खम्भात मे। वस्तुपाल क्या मेरे अकेले के बस का है ?"

"कौन कहता है तुम अकेले हो ? तुम्हारे साथ शखराज है। सेठ, बेकार की फिकर मत करो। यदि वस्तुपाल ने खभात आकर कुछ गडबड करने की कोशिश की तो मैं उसे मसलकर रख दूँगा।"

इसके बाद कुछ देर तक कोई कुछ नही बोला। दोनो मित्र चुपचाप नशीली मदिरा का आनन्द लेते रहे। फिर शखराज ने ही पूछा—

"लेकिन सेठ, वस्तुपाल के क्या कोई नए समाचार तुम्हे मिले हैं ? तुम तो कहते थे कि वह धोलके मे भाँग पीता है और कविता करता बैठा रहता है। अब नया क्या हो गया ?"

"बराबर उसके आदमी खभात के चक्कर लगा रहे है। अगर वह खाली भाँग पीता और कविता करता तो मुझे क्या फिकर थी ? लेकिन अब तो मुझे लगता है कि वह सीधे मेरे घर मे ही दुश्मन घुसाने लगा है।"

कीर्तिदेव के कान खड़े हो गए। वह कोने में कुछ और अधिक दुवक गया और सतर्क होकर सुनने लगा।

शंखराज ने पूछा—

"घर में दुश्मन घुसाने लगा है ? क्या मतलव ?"

"ऐसा ही लगता है। आज शाम को ही एक व्यापारी आया है। मैंने उसे अपने मेहमानखाने में ठहरा दिया है।"

"व्यापारी को मेहमान खाने में ठहरा दिया तो क्या फिकर की वात हुई ?"

"अरे शंखराज ! सिद्दीक की आँख ने देखा है कि वह व्यापारी नहीं है।"

"अभी कहते हो व्यापारी है, अभी कहते हो व्यापारी नहीं है। अरे भाई, आखिर वह है क्या वला ?"

"मुझे शक है कि वह वस्तुपाल का भेदिया है।"

"भेदिया ! और सीधे तुम्हारे घर में ! यह तो वड़े मजे की वात हुई।"—कहकर शंख हँस पड़ा। सिद्दीक ने चिढ़कर कहा—

"यह भी कोई हँसने की वात हुई ?"

"नहीं तो क्या रोने की वात हुई ? अरे भेदिया है तो लगा दो उसे ठिकाने।"

सिद्दीकसेठ ने कोई उत्तर नही दिया। उस विशाल कक्ष में कुछ ...ांति छाई रही। चुपचाप वैठा सिद्दीकसेठ कुछ सोचता रहा। ...ा की रेखाएँ दीख रही थीं।

... की इस चिन्ता को लक्ष्य किया और तव

बाज की तरह झपट पड़ूँगा। बस ?"

अब सिद्दीकसेठ को कुछ राहत मिली। सुराही में-से एक-एक प्याला और ढालकर उसने अपने मित्र को दिया, स्वयं लिया और बोला—

"आप पास में रहोगे राखराज ! तभी काम चलेगा।"

इसके बाद सिद्दीकसेठ राखराज को रात्रि-विश्राम के लिए उनके लिए नियत सुसज्जित कमरे में छोड़ने चले गए। कीर्तिदेव जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से फिर अपने कमरे में लौट गया।

***

कीर्तिदेव की कारस्तानी

प्रातःकाल कीर्तिदेव बड़े आराम से सोकर उठा। उसने कोई जल्दी नहीं मचाई। निश्चिन्ततापूर्वक नहा-धोकर, नाश्ता इत्यादि करके ही उसने अपने आगे के कार्यक्रम के विषय में सोचना आरम्भ किया।

सिद्दीकसेठ तथा शंखराज की योजना का पता उसने लगा ही लिया था, यह एक बड़ा काम हो गया। दूसरे, उसने यह भी जान लिया था, कि खंभात के बन्दरगाह से करोड़ों रुपयों का माल प्रतिदिन व्यापार के लिए आता-जाता है और उससे प्राप्त होने वाले राज्य के कर को ये दोनों व्यक्ति चुपचाप डकार जाते हैं। खंभात के दूसरे व्यापारियों के हिस्से में बहुत थोड़ा, टुकड़े के बराबर ही भाग जा-पाता है। राज्य के कोष में तो नहीं के बराबर ही राशि जमा हो पाती है।

फिर भी इस विषय में कुछ अधिक जानकारी मिल सके तो अच्छा रहे, यह सोचकर कीर्तिदेव ने खंभात के कुछ अन्य व्यापारियों से मिल

लेने का निश्चय किया। सन्ध्या तक यह कार्य हो जाय तो वह उसी दिन धोलके लौट सकता है और वस्तुपाल को सारी स्थिति से अवगत करा सकता है। निर्णय करके वह सिद्दीकसेठ के पास जा पहुँचा।

सिद्दीकसेठ ने बडे आवभगत के साथ कीर्तिदेव को अपने पास बिठाया और कहा--

"कहिए सेठ, गरीब की झोपडी में आपको कुछ कष्ट तो नही है ? रात को नींद तो ठीक से आई होगी ?"

कीर्तिदेव ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"अगर यह झोपडी है तो फिर महल कैसा होता होगा सेठ ? मुझे आपके यहाँ कोई तकलीफ नही है। रात को खूब मजे से सोया।"

"अभी दो-एक दिन तो आप खम्भात मे ठहरेंगे न ? इतमीनान से शहर देखिए।"

"मुझे दिल्ली जल्दी पहुँचना है सेठ ! अगली बार व्यापार के लिए कुछ माल लेकर आऊँगा तब अधिक वक्त ठहरूँगा ही। आज तो दिन मे थोडा बहुत इधर-उधर घूम लूँगा और शाम को यहाँ से चला जाऊँगा।"

"अच्छा ? बडी जल्दी कर रहे है आप। लेकिन जैसी आपकी मर्जी।"—फिर अपनी एक आँख को कुछ दबाकर सिद्दीकसेठ ने कहा—"लेकिन सेठ, क्या खम्भात से दिल्ली तक का सफर घोडे की पीठ पर ही करेंगे ? और अकेले ?"

'धत्तेरे की, बडा चालक है यह आदमी', कीर्तिदेव ने मन ही मन कहा और फिर उत्तर दिया—

"सेठ, असल मे बात यह है कि मैं अपने आदमियो को पाटन ही छोड आया हूँ। एक दिन के लिए तो खम्भात आना ही था सो घोडे पर चला आया। अब लौटकर पाटन होकर ही जाऊँगा। वहाँ सब इन्तजाम है।"

सिद्दीकसेठ की दबी हुई आँख कुछ खुली और फिर वैसे ही दब गई।

उसने मन ही मन कहा--'भेदिये के बच्चे ! देखूँगा तुझे भी और तेरे आदमी, जिन्हें तू पाटन में ही छोड़ आया है, उनको भी जानता हूँ। देख लूँगा सबको।'

प्रगट में उसने कहा--

"खम्भात आकर आपने बड़ी मेहरबानी की। मेरे लायक और कोई काम हो तो बताइये।"

"मेहरबानी तो आपकी है सेठ ! मज़े से आपके दौलत खाने पर ठहरा, आपने इतने प्रेम से मुझे अपने यहाँ ठहराया। मैं इसके लिए आपका शुक्रगुज़ार हूँ।"

'सब अल्लाह का करम है, सेठ !"

"हाँ, खैर, सो तो है ही। अच्छा, अब मुझे इज़ाजत दीजिए।"

"बस जाइयेगा ?"

"हाँ, थोड़ा इधर-उधर घूमफिरकर जल्दी ही पाटन के लिए चल पड़ूँगा।"

मन में सिद्दीकसेठ ने कहा- 'मैं तुझे जाने दूँगा, तब न।' फिर अपने आसन से उठते हुए उसने कीर्तिदेव से कहा—

"अच्छा, फिर जैसी आपकी मर्ज़ी।"

कीर्तिदेव भी उठा और विदा लेकर चला आया। अश्वशाला में-से उसने अपना अश्व लिया और उस पर सवार होकर हवेली के बड़े दरवाज़े से बहार निकल गया। बाहर आने से पूर्व वह आतुरता से इधर-उधर निगाह फेंक रहा था और सोच रहा था कि रदीवा यदि मिल जाता तो अच्छा होता। जाने से पूर्व उसे कुछ सूचनाएँ दे जाता। किन्तु रदीवा कहीं दिखाई नहीं पड़ा। उसकी दो नंबर की कोठरी बन्द थी।

किन्तु संयोग से, जब कीर्तिदेव सड़क पर पहुँचा ही था तब सामने से भूत की तरह भागता हुआ रदीवा आ ही गया। उसे रोककर कीर्तिदेव ने कहा—

"अरे रदीवा ! मैं जा रहा हूँ। अच्छा हुआ तू मिल गया। देख, मेरा इरादा आज शाम तक धोलके लौट जाने का है। लेकिन किसी कारण यदि मैं न जा सकूँ तो तू सावधानी से रहना। मुझे तेरे सेठ पर शक है कि वह कुछ गडबड कर सकता है ... ।"

"कैसी गडबड ?"

"किसी भी तरह की। वह मुझे क़ैद करने की भी कोशिश कर सकता है। और मार डालने की भी।"

"नौबत यहाँ तक पहुँच गई है क्या ? कीर्तिदेवजी मैंने आपको पहले ही कहा था कि यह धूर्त अपनी छोटी आँख से बडा गहरा देखता है। लेकिन आपको ऐसा अंदेशा क्या हुआ ?"

"अब सारी बात कहने का समय नहीं है रदीवा ! कोई न कोई आदमी मेरे पीछे अब तक लग गया होगा। वह मुझे और तुझे यहाँ बातें करता देखेगा तो तुझ पर भी मुसीबत आ सकती है। इसलिए इतना ही सुन, कि अपनी आँख खुली रखना। ध्यान से सेठ की हरकतों को देखते रहना।"

"ठीक है। लेकिन यदि मामला ऐसा है तो फिर आप जल्दी ही निकल जाइये।"

"थोडा काम और है, वह करके निकलूँगा। अच्छा चलता हूँ।"

कीर्तिदेव ने घोडे को एड लगाई और वह चल पडा। रदीवा भी पिशाच की तरह तेजी से हवेली के दरवाजे में घुसकर अदृश्य हो गया।

रदीवा के हवेली में प्रविष्ट होने के तुरन्त बाद ही एक व्यक्ति वहाँ से बाहर निकला और कीर्तिदेव के घोडे की धूल का पीछा करता हुआ तेजी से चल पडा।

कीर्तिदेव निरुद्देश्य सडक पर घूम रहा था और विचार कर रहा था कि अब उसे क्या करना चाहिए ! वह सोच रहा था कि यदि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता जो उसके समाचार लेकर धोलके जा सकता तो फिर वह अभी कुछ समय और खंभात में ठहर सकता था

उसने मन ही मन कहा—'भेदिये के बच्चे ! देखूँगा तुझे भी और तेरे आदमी, जिन्हें तू पाटन में ही छोड़ आया है, उनको भी जानता हूँ। देख लूँगा सबको।'

प्रगट में उसने कहा—

"खम्भात आकर आपने बड़ी मेहरबानी की। मेरे लायक और कोई काम हो तो बताइये।"

"मेहरबानी तो आपकी है सेठ ! मजे से आपके दौलत खाने पर ठहरा, आपने इतने प्रेम से मुझे अपने यहाँ ठहराया। मैं इसके लिए आपका शुक्रगुज़ार हूँ।"

'सब अल्लाह का करम है, सेठ !"

"हाँ, खैर, सो तो है ही। अच्छा, अब मुझे इज़ाजत दीजिए।"

"बस जाइयेगा ?"

"हाँ, थोड़ा इधर-उधर घूमफिरकर जल्दी ही पाटन के लिए चल पड़ूँगा।"

मन में सिद्दीकसेठ ने कहा- 'मैं तुझे जाने दूँगा, तब न।' फिर अपने आसन से उठते हुए उसने कीर्तिदेव से कहा—

"अच्छा, फिर जैसी आपकी मर्ज़ी।"

कीर्तिदेव भी उठा और विदा लेकर चला आया। अश्वशाला में-से उसने अपना अश्व लिया और उस पर सवार होकर हवेली के बड़े दरवाज़े से बहार निकल गया। बाहर आने से पूर्व वह आतुरता से इधर-उधर निगाह फेंक रहा था और सोच रहा था कि रदीवा यदि मिल जाता तो अच्छा होता। जाने से पूर्व उसे कुछ सूचनाएँ दे जाता। किन्तु रदीवा कहीं दिखाई नहीं पड़ा। उसकी दो नंबर की कोठरी बन्द थी।

किन्तु संयोग से, जब कीर्तिदेव सड़क पर पहुँचा ही था तब सामने से भूत की तरह भागता हुआ रदीवा आ ही गया। उसे रोककर कीर्तिदेव ने कहा—

और देख सकता था कि सिद्दीकसेठ उसके साथ क्या सलूक करता है ! उसे विश्वास था कि सिद्दीक ने उसके पीछे अपने आदमी अवश्य लगा दिये होंगे। और कौन जाने वे लोग क्या करें ! जो कुछ भी हो, किन्तु आधी रात में जागकर और सिद्दीकसेठ के कक्ष में जाकर उसने जो महत्त्वपूर्ण समाचार एकत्र किया था वह तो गुजरात के अमात्य तक हर हालत में पहुँच ही जाना चाहिए। फिर कीर्तिदेव का जो होना हो वह होता रहे।

इसी विचार में डूबा हुआ वह सड़क पर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था कि सामने से आते हुए कुछ मुनिराज उसे दिखाई पड़े। उनमें जो सबसे आगे थे, उनका चेहरा कीर्तिदेव को दूर से कुछ परिचित-सा दिखाई पड़ा। उत्सुकता से वह सड़क के एक ओर अपने अश्व को खड़ा करके प्रतीक्षा करने लगा। वह मुनि-मंडल धीरे-धीरे, शान्त-सहज गति से जब समीप पहुँचा तब कीर्तिदेव ने उनके नेता को पहिचान लिया—वे विजयसेनसूरि थे।

विजयसेनसूरि को कीर्तिदेव ने गुरु कुमारदेव के आश्रम में अनेक बार देखा था, जब वस्तुपाल-तेजपाल और उनके बड़े भाई मल्लदेव वहाँ अध्ययन करते थे। अतः वह झट से अपने अश्व से कूदकर नीचे उतरा और आगे बढ़कर उसने आचार्य के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया।

आचार्य विजयसेनसूरि ने अपना दाहिना हाथ उठाकर कीर्तिदेव को धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया और उसी सहज-धीर गति से आगे बढ़ने लगे। वे कीर्तिदेव को यवन-वेशभूषा में पहिचान नहीं सके थे।

आचार्य आगे बढ़ जायें इससे पूर्व कीर्तिदेव ने कहा—

"आचार्य ! आपका विहार इस दिशा में हुए कितना काल व्यतीत हुआ ?"

चलते-चलते आचार्य विजयसेनसूरि थम गए। वे सोच रहे थे—एक यवन इतनी शुद्ध हिन्दी में बोल सकता है ! और उसका उच्चारण भी इतना शुद्ध हो सकता है ! उन्होंने गौर से कीर्तिदेव के चेहरे को

पास भाँग पीने, कविता लिखने और पंडितों-कवियों के साथ निरर्थक काल-यापन करने के अतिरिक्त क्या काम है ? गुजरात का अमात्य उसे इसलिए बनाया गया था न ?"

कीर्तिदेव ने सोचा कि आचार्य वस्तुपाल से रुष्ठ हैं, और उसका कारण यही है कि उन्होंने यह प्रचार कर रखा है कि वे तो साहित्य-सागर में ही गोते लगाते पड़े हैं। उन्हें खंभात, वनथली, देवगिरि आदि की कोई चिन्ता नहीं है। गुजरात की कोई फिक्र नहीं है। यह सोचकर कीर्तिदेव ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—

"आचार्य ! आप जैसा विचार करते हैं, वैसी बात नहीं है। गुजरात का अमात्य पूरी तरह सतर्क है और बड़ी सावधानी से शतरंज के मोहरे रख रहा है।"

"अर्थात् ?"

"आने वाले एक सप्ताह के भीतर खम्भात और सिद्दीकसेठ की समस्या का हल हो जायगा, आचार्य ! और उसके बाद वनथली, और उसके बाद.........।"

"तुम कैसे जानते हो ?"

"मैं ठीक निवेदन कर रहा हूँ, आचार्य ! वस्तुपालजी ने जानबूझकर यह प्रचार कर रखा है कि वे कविता-कामिनी को अपने अंक से लगाए पड़े रहते हैं। वास्तविकता इससे बिलकुल विपरीत है। तेजपालजी गुजरात की प्रबल सैन्य चुपचाप तैयार कर रहे हैं और वस्तुपालजी की आँख गुजरात की सीमाओं पर निरन्तर घूम रही है।"

इस तथ्य की जानकारी होने पर आचार्य विजयसेनसूरि की रुष्टता कुछ दूर हुई। कुछ क्षण विचार करने के पश्चात् उन्होंने कहा—

"अच्छा कीर्तिदेव ! तुम क्या कहना चाहते थे ?"

तब कीर्तिदेव ने सारी स्थिति का ब्यौरा विस्तार के साथ आचार्य को दिया और कहा—

"शंखराज प्रचंड व्यक्तित्व वाला आदमी है, आचार्य ! और

सिद्दीकसेठ धूर्तराज है। उसने मेरे पीछे अपने आदमी लगा दिए है। मैं नही जानता कि मैं सही-सलामत धोलके पहुँच भी सकूँगा कि नही, अथवा कम से कम समय पर पहुँच सकूँगा कि नही। अत आपसे निवेदन है कि किसी सदेशवाहक के साथ आप यहाँ के सारे समाचार अमात्य वस्तुपालजी के पास पहुँचा दें। आपके लिए यह सम्भव तो होगा न ?"

"हाँ, प्रतिदिन लोग धोलके से यहाँ आते-जाते रहते है। मुझसे भी मिलते रहते है।"

"तब मै निश्चित हुआ। अब जो होगा वह देखा जायगा।"

"लेकिन अब तुम्हे किसी खतरे से खेलने की आवश्यकता नही है, कीर्तिदेव ! समाचार गुजरात के अमात्य के पास पहुँच जायेगे। किन्तु तुम भी शीघ्र यहाँ से बच निकलो।"

"देखिए आचार्य, प्रयत्न तो यही करता हूँ। अच्छा मेरा वन्दन स्वीकार कीजिए और आज्ञा दीजिए।"

"धर्मलाभ ! सावधान रहना कीर्तिदेव !"

आचार्य विजयसेनसूरि तक खम्भात के समाचार पहुँचा देने के बाद कीर्तिदेव ने कुछ निश्चिन्तता का अनुभव किया, किन्तु उपाश्रय से बाहर आने पर उसके सामने यह समस्या फिर खडी हुई कि अब वह क्या करे ? वस्तुत. खम्भात मे उसे जो काम करना था, वह हो चुका था। उसने पता लगा लिया था कि सिद्दीकसेठ और शखराज मे कितनी घनिष्ठता है, जो धन गुजरात के राज्यकोप मे जाना चाहिये वह ये दोनो व्यक्ति किस प्रकार लूट रहे है, उनकी भविष्य की योजना क्या है, खम्भात के लोग सिद्दीकसेठ से कितना सहयोग अथवा घृणा करते हैं--इत्यादि।

कीर्तिदेव ने निश्चय किया कि अब उसे खम्भात मे अधिक ठहरने की आवश्यकता नही है। उसे तुरन्त धोलके के लिए चल पडना चाहिए।

किन्तु क्या सिद्दीकसेठ उसे जाने देगा ? उसके पीछे उस धूर्तराज

के जो आदमी छाया की तरह लगे हुये हैं उनका उद्देश्य क्या है ? क्या वे केवल उसकी गतिविधि पर निगरानी ही रख रहे हैं, अथवा उसे क़ैद करना चाहते हैं ? या फिर उनका इरादा कीर्तिदेव से हमेशा के लिए छुट्टी पा लेने का तो नहीं है ?

कीर्तिदेव के मस्तिष्क में विचार तेजी से चल रहे थे किन्तु ऊपर से वह एकदम शांत और वेफिक्र था, और खंभात के विभिन्न दृश्यों का आनन्द लेता जाता था। वीच-वीच में वह एक तेज निगाह अपने पीछे की ओर भी डाल लेता था, किन्तु इतनी सावधानी से कि किसी को खवर न लगे। इस समय उसकी मस्ती और वेफिक्री को देखने से तो ऐसा ही लगता था जैसे कि कोई अलवेला सैर को निकला हो।

इस वीच सिद्दीकसेठ के आदमी निरन्तर कीर्तिदेव का पीछा कर रहे थे।

इधर-उधर घूमते-घामते कुछ समय वाद अचानक कीर्तिदेव सिद्दीकसेठ की हवेली की ओर मुड़ गया।

यह देखकर उसका पीछा करने वालों को कुछ विस्मय हुआ। वे कुछ आश्वस्त भी हुए। एक ने अपने साथी से कहा—

"यह तो हवेली की तरफ ही जा रहा है।"

"शिकार खुद ही जाल में फँसने के लिए आ जाय तो इससे वढ़कर क्या चाहिए ?"

"सो तो ठीक है, लेकिन फिर इतनी देर इसने हमें वेकार ही चक्कर दिए।"

"कौन जाने अभी और कितने चक्कर देगा !"

"अव क्या खाक चक्कर देगा ! यदि यह हवेली में गया तो अव इसे वाहर नहीं निकलने देना है। इसे चुपचाप वहीं धर दवाना है और भोंयरे में ठूँस देना है। चुपचाप काम करने का इससे वढ़िया स्थान और क्या मिलेगा !"

"तव ठीक है। जरा देखें यह हवेली के भीतर जाता भी है कि

नही और यदि भीतर जाता है तो वहाँ जाकर क्या करता है ?"

सिद्दीकसेठ की हवेली के सामने जाकर कीर्तिदेव अपने अश्व से नीचे उतरा और उसे बाहर ही एक वृक्ष से कसकर बांध दिया। फिर उसने आसपास से थोडी घास इकट्ठी की और उसे अश्व के सामने चरने के लिए डाल दिया।

इस तरह कीर्तिदेव ने ऐसा प्रकट किया जैसे उसे हवेली मे काफी समय तक ठहरना हो और जाने की कोई जल्दी न हो।

इसके बाद वह हवेली मे प्रविष्ट हुआ और द्वाररक्षक से उसने पूछा—

"सेठ भीतर है न ! मै उनसे एक बात कहना भूल गया था।"

"सेठ तो अभी-अभी कही बाहर गए है। कुछ समय बाद शायद लौट आयें।"

"ओह ! तो कोई बात नही। मैं महमानखाने मे उनका इन्तजार कर लेता हूँ।"

यह कहकर कीर्तिदेव सीधा मेहमानखाने मे अपने उस कमरे की ओर चला गया जिसमे वह रात को ठहरा था। द्वाररक्षक को मालूम था कि यह वही व्यापारी है, जिसे कल रात उसके मालिक ने बड़ी आवभगत के साथ ठहराया था। अत. उसके द्वारा कोई आपत्ति किए जाने का प्रश्न हो नही उठा।

कुछ आगे बढकर कीर्तिदेव ने पलटकर ऊँची आवाज मे द्वाररक्षक से कहा—

"अरे भाई, घूमने-घूमते थक गया हूँ। भूख भी लगी है। कुछ खाने-पीने को तो भिजवा देना !"

"अभी हाज़िर किया जाता है। आप आराम फरमायें।" द्वाररक्षक ने उत्तर दिया और कीर्तिदेव आगे बढ गया।

अपने कक्ष म पहुँचकर कीर्तिदेव ने उसके द्वार को ढक लिया जैसे वह इतमीनान से कुछ आराम कर लेना चाहता हो।

कीर्तिदेव का पीछा करने वालो ने अब चैन की साँस ली। द्वाररक्षक

से कही गई कीर्तिदेव की आखिरी बात उन्होंने सुन ली थी और उससे यह भी पूछ लिया था कि वह इससे पहले क्या कह रहा था। उसने बताया था कि वह मालिक से मिलने आया है और उनके लौटने तक इन्तजार करेगा।

एक ने कहा—

"चलो छुट्टी हुई। कर लेने दो बेटे को जरा आराम और खा-पी भी लेने दो। बाद में तो उसका जो हश्र होना है, वह होना ही है।"

यह कहकर वे लोग भीतर जाकर दूर से ही कीर्तिदेव के कमरे पर नज़र जमाकर आराम से बैठ गए और तम्बाकू पीने लगे।

कीर्तिदेव ने द्वार की सेंध में से झाँककर देखा—चार व्यक्ति उसके दरवाज़े पर निगाह जमाये बैठे हैं और उनके बीच में चिलम चल रही है। चिलम का धुँआँ धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा है।

एक क्षण का विलम्ब भी कीर्तिदेव ने अब नहीं किया। वह रोशनदान के नीचे पहुँचा और उछलकर उस पर चढ़ गया। दूसरे ही क्षण उसने रोशनदान में-से बाहर बगीचे में झाँककर देखा, पुराना और घना बगीचा सुनसान पड़ा था।

कूदकर कीर्तिदेव ज़मीन पर आ गया और वृक्षों की आड़ में होता हुआ बगीचे की दीवाल फाँदकर बाहर निकल आया। चक्कर मारकर वह हवेली के मुख्यद्वार के बाहर पहुँचा और रक्षकों की नजर बचाकर अपने अश्व पर सवार होकर बिजली की गति से खम्भात के पाटन दरवाजे की ओर चल पड़ा। अपने अश्व को थपथपाकर उसने कहा—'चल भैया! उड़ता हुआ चल। धोलके चलकर ही रुकना है अब।'

कीर्तिदेव को अब पकड़ सके ऐसा कोई व्यक्ति खम्भात में नहीं था। वह धोलके के मार्ग पर तेज़ी से बढ़ रहा था।

कुछ समय बाद जब एक सेवक कीर्तिदेव के लिए कुछ खाने-पीने की सामग्री लेकर मेहमानखाने में पहुँचा तो कमरा खाली पड़ा था।

जब वह सेवक खाने का थाल वैसा ही लेकर वापिस लौटा तो उन

चार व्यक्तियों में से एक ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—

'सरोजा, गाना वापिस कैसे न आया?'

'और क्या करता वहाँ तो बाद है रहा।'

उत्तर सुनकर चारों व्यक्ति विस्मय में पड़कर एकाएक खड़े हो गए। उनका नायक बोला—

"क्या कहते हो? वह अभी-अभी हमारे सामने भीतर गया है। क्या हवा में उड़ जायगा?"

'यह तो मैं क्या जानूँ? लेकिन कमरा खाली है।"

वे चारों व्यक्ति उस कमरे में गए, कमरा खाली ही था, केवल रोशनदान खुला हुआ था। खिड़कियाँ भी भीतर से बन्द थीं। द्वार पर निगाह जमाकर वे बैठे हुए ही थे। तब क्या वह रोशनदान में से कूदकर बाहर कूद गया! गजब हो गया, इतनी ऊँचाई पर से कोई आदमी कूदकर बच सकता है!

भागकर वे चारों हवेली से बाहर आए। रानिदेव का अंदर भी वहाँ से गायब था।

अन्तिम गिद्दीरगढ़ अब उनके साथ क्या सुलूक करेगा यह सोचते हुए वे चारों व्यक्ति अब घोर निराशा से आँखें फाड़कर एक दूसरे का मुँह ताकते रह गए।

•••

शंखराज भागा

अमावस्या की रात्रि को धोलके के खम्भात दरवाज़े के बाहर गुजरात के सैन्य की एक छोटी-सी टुकड़ी कूच करने के लिए तैयार खड़ी थी। कीर्तिदेव और भुवनपाल नायक के नेतृत्व में पचास अश्वारोही तथा ढाई सौ पैदल सैनिक अपनी जान पर खेल जाने के लिए सन्नद्ध थे। केवल गुजरात के अमात्य के आने की प्रतीक्षा थी।

अमात्य वस्तुपाल ने कीर्तिदेव से खम्भात के सब समाचार जान लेने के पश्चात् भी अपनी योजना में कोई परिवर्तन नहीं किया था। केवल उन्होंने तेजपाल से यह कह दिया था कि वह पाँच सौ सैनिक प्रति क्षण तैयार रखे और यदि उसे सूचना भेजी जाय तो वे सैनिक शीघ्र ही खम्भात के लिए चल पड़ें।

वस्तुपाल खम्भात के लिए रवाना होने से पूर्व महामण्डलेश्वर राणा लवणप्रसाद और राणा वीरधवल मिलने गए थे। उन्होंने राणा से कहा—

"खम्भात का चक्कर लगाकर अभी लौट आता हूँ। तबतक आप धोलका छोडियेगा नही।"

राणा वीरधवल ने कुछ चिन्ता के साथ कहा—

"लेकिन वस्तुपालजी, अपने साथ कितना सैन्य आप ले जा रहे हो?"

"तीन सौ सैनिक।"

"इतने से सैनिकों को लेकर खम्भात ले लोगे? सिद्दीक और शख से मुकाबला है।"

"आप चिन्ता न करें राणाजी! मुझे वहाँ युद्ध नही लडना है। जो काम करना है वह करके सप्ताह भर मे लौट आऊँगा।"

"आप विचित्र आदमी हो वस्तुपालजी! जैसा ठीक समझो करो। किन्तु मैं तो स्वय आपके साथ चलना चाहता था।"

"उसकी क्या जरूरत राणाजी! जब युद्ध होगा तब आपको तो. चलना ही है। अभी खम्भात का हिसाब तो मैं निवटा आऊँ, फिर वनथली है, मालवा है, दिल्ली है। वहाँ आप चलना।"

"ठीक है, तुम नही मानते तो ऐसा ही करो। लेकिन जरूरत पडे तो तुरन्त समाचार भेजना।"

"हाँ, वह मैं करूँगा। अच्छा, अब आप आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए।"

"विजय करके गुजरात का अमात्य शीघ्र लौटे इसके अलावा मैं और क्या कहूँ?"

वस्तुपाल जब खम्भात दरवाजे के बाहर अपना अश्व दौडाते हुए पहुँचे तब 'वस्तुपालजी की जय!' का एक घोप हवा मे गूँज उठा। वस्तुपाल ने कहा—'महाराज भीमदेव की जय!' 'गर्वीले गुजरात की जय!'—और इन जयघोपों की प्रतिध्वनि अधकारमयी दिशाओं में गूँज उठी।

उस छोटी-सी सैन्य टुकडी के कूच और गुजरात के अभ्युदय का यह प्रथम शखनाद था।

दूसरे दिन वस्तुपाल अपने सैन्य के साथ खम्भात पहुँच गए। पाटन दरवाजे से नगर में प्रविष्ट होकर वे सीधे राजगढ़ में जाकर ठहर गए। सिद्दीकसेठ के आदमियों ने जाकर जब सेठ को बताया कि वस्तुपाल केवल तीन सौ सैनिकों के साथ खंभात आए हैं, तब सिद्दीक मन ही मन हँसा। उसे थोड़ी निश्चिन्तता हुई कि इतने से सैन्य को वह शंखराज की सहायता से जब चाहे कुचलकर रख देगा।

सारा दिन वस्तुपाल ने सिद्दीकसेठ को ज़रा भी नहीं छेड़ा। वे दिन भर खंभात के पुस्तकालयों, मन्दिरों, मसजिदों आदि का चक्कर लगाते रहे और खंभात के नागरिकों से अपना सम्बन्ध स्थापित करते रहे। उनके इस व्यवहार से खंभात के लोगों को ऐसा लगा जैसे कि कोई उनका अपना व्यक्ति ही उनसे मिलने, उनके सुख-दुःख की जानकारी करने आया है। अनेक मन्दिरों और मस्जिदों के जीर्णोद्धार के लिए वस्तुपाल ने जितना आवश्यक था उतना धन भी वितरित किया। वे साधुओं-सन्तों से मिले, मुल्ला-मौलवियों से भी मिले। उनके इस कार्य से खम्भात की प्रजा का प्रत्येक वर्ग उनका जैसे अपना ही बन गया।

सन्ध्या के समय वस्तुपाल ने कीर्तिदेव को अपने पास बुलाकर आदेश दिया—

"कीर्तिदेव ! तुम सिद्दीकसेठ के यहाँ चले जाओ और उसे मेरा सन्देश दे दो। कहना कि गुजरात का अमात्य आया है, खम्भात के बन्दरगाह से प्राप्त होने वाले कर का हिसाब करना है। वर्षों से यह कर उसने गुजरात के राज्य-कोष में जमा नहीं कराया है। अब वह कराना है। जो हिसाब है वह सेठ आकर मुझे बता दे, उसे मैं देखता-समझता रहूँगा। लेकिन इस समय वह पाँच करोड़ द्रम्म तो लेकर ही आए। इससे कम में नहीं चलेगा। समझ गए न ?"

"समझा। मैं चला जाता हूँ।"

"हाँ, लेकिन अकेले नहीं जाना। मुझे सिद्दीक का भरोसा नहीं है। अपने साथ दस-पाँच सैनिक तो ले ही जाना।"

"जरूरत भी नहीं है, किन्तु आप कहते है तो ले जाऊँगा।"

"ले ही जाओ, और शीघ्र लौटकर मुझे समाचार दो कि वह क्या कहता है?"

आदेश पाकर कीर्तिदेव चल दिया।

उसके जाने के बाद वस्तुपाल ने खंभात के अन्य व्यापारियों के पास भी आवश्यक सूचना अपने आदमियों द्वारा भिजवा दी।

रात्रि को एक-एक कर अनेक व्यापारी राजगढ़ में एकत्रित होने लगे। वस्तुपाल ने उन लोगों का हिसाब देखा और जिस व्यक्ति से जितना धन राज्य-कोष के लिए प्राप्त करना था, वह किया।

लेकिन सिद्दीकसेठ अबतक आया नहीं था।

कीर्तिदेव जब सिद्दीकसेठ की हवेली पर पहुँचा तब सेठ अपनी हवेली पर नहीं था। इसलिए उसे कुछ समय प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब सिद्दीक आया तब उसने शीघ्र ही अपने निजी कक्ष में गुजरात के अमात्य के संदेशवाहक को बुला भेजा।

कीर्तिदेव जब भीतर गया तब सिद्दीक अपने पलग पर आराम से पैर पसारे पड़ा था। उसने कीर्तिदेव को आंख उठाकर देखा और मुसकराते हुए कहा—

"कहो सेठ! बड़ी जल्दी दिल्ली से माल लेकर खंभात पहुँच गए?"

सुनकर कीर्तिदेव हँसा। उसने कहा—

"वह सेठाई तो थोड़े समय के लिए थी सेठ! अभी तो मैं गुजरात के अमात्य का दूत हूँ।"

"बड़ी जल्दी-जल्दी चोले बदल लेते हो! तुम्हारा नाम क्या है?"

"कीर्तिदेव।"

"अच्छा, तो कीर्तिदेवजी, अब कहिए, क्या सन्देश है मन्त्री वस्तुपालजी का?"

"सन्देश क्या है सिद्दीकसेठ, जरा हिसाब-किताब करना है। वस्तुपालजी इधर खंभात आए थे तो सोचा कि बहुत समय से बन्दरगाह

से उत्पन्न होने वाले कर का हिसाब नहीं हुआ है सो करते चलें।"

"क्यों नहीं ! हिसाब तो होना ही चाहिए।"

"तब आप कृपा करके राजगढ़ पधारें और जो हिसाब है सो कर डालें। और अमात्य ने यह भी कहा है कि पाँच करोड़ द्रम्म तो आप अपने साथ ही लेते आयें--हिसाब वर्षों का है न ?"

सिद्दीकसेठ की एक आँख दब गई। कुछ देर वह उस आँख से कीर्तिदेव को ऐसे घूरता रहा जैसे उसे भस्म ही कर डालेगा। फिर उसने कहा—

"कीर्तिदेवजी ! एक बात कहे देता हूँ, यह खम्भात है, पाटन या धोलका नहीं है।"

"हाँ सेठ यह खंभात है, मैं यहाँ कुछ दिन पहले ही तो आया था।"

कीर्तिदेव के इस उत्तर में सिद्दीकसेठ की छिपी हुई धमकी का कड़ा और सूक्ष्म उत्तर था। सुनकर सिद्दीक भीतर ही भीतर जल उठा। किन्तु ऊपर से वह मुसकराता ही रहा और बोला--

"हाँ, तो मैं कहता था कि यह खम्भात है कीर्तिदेवजी ! यहाँ का राज दूसरा ही है।"

"कैसा ?"

"गुजरात के किसी मंत्री को यहाँ आकर मिलना हो तो वह द्दीकसेठ की हवेली पर ही आकर मिल जाता है।"

"यानी आप अमात्य से मिलने राजगढ़ भी नहीं जायेंगे ?"

"आगे भी बहुत से अमात्य खम्भात आ चुके हैं कीर्तिदेवजी।"

सिद्दीकसेठ ने कीर्तिदेव के प्रश्न का इस तरह टेढ़ा और व्यंगपूर्ण तर दे दिया। कीर्तिदेव कुछ सोचता बैठा रहा। फिर सिद्दीक ही बोला-

"वस्तुपालजी से आप कहना कि मिलना चाहें तो यहाँ आकर मिल। बाकी हिसाब-किताब तो सामने रखा है। इस बन्दरगाह से पैदा क्या होता है ? पाँच करोड़ तो दूर पाँच हज़ार भी यहाँ से मिलना श्किल है।"

अभिमान, धूर्तता और उपेक्षा से कही गई इस बात को सुनकर कीर्तिदेव ने कहा—

"तो आपका सदेश मैं वस्तुपालजी को दे दूं ?"

"इसीलिये तो मैंने कहा है।"

"लेकिन सिद्दीकसेठ, एक बार और सोच लेते तो अच्छा होता···।"

"बकवास मत करो। जो कहा सो तुमने सुन लिया न ? अब तुम जा सकते हो।"

कीर्तिदेव इसके बाद कुछ नही बोला। चुपचाप उठकर, वह विचार करता हुआ राजगढ चला आया। वस्तुपाल से उसने सारी घटना बताते हुए कहा—

"बडा मक्कार और अभिमानी है। सीधी तरह ठिकाने लगे ऐसा नही दीखता। इसे शखराज की मित्रता का भरोसा है।"

वस्तुपाल ने सारी बात चुपचाप सुनी। कुछ देर वे चुप रहे और फिर उन्होने कहा—

"कीर्तिदेव ! अब तुम्हे बडी सावधानी से काम करना है। अपने साथ पचास अश्वारोहियो को ले जाकर सिद्दीक की हवेली को घेर लो और उस पर कडी निगाह रखो। खबरदार, एक चिडिया भी हवेली के बाहर न निकलने पाए। यदि कोई बाहर आये या हवेली के भीतर जाए तो उसका सिर धड से अलग कर देना, मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा मत करना।"

"ठीक है, मैं सब कर लूंगा।"

"देर मत करो। फौरन चले जाओ।"

कीर्तिदेव चला गया। सिद्दीकसेठ अपनी हवेली मे कैद कर लिया गया।

इसके बाद वस्तुपाल ने भुवनपाल को बुलाकर कहा—

"भुवनपाल ! कडी परीक्षा का समय आ गया है। कल तक शखराज झपट्टा मारेगा। वह समुद्र मे समीप ही अवसर की ताक मे होगा।

तबतक तुम एक काम करो। अपने ढाई सौ सैनिकों को चुपचाप, बिना किसी को खबर लगे पाटन के दरवाजे से बाहर धोलके के रास्ते पर ले जाओ और कुछ दूर जाकर, मार्ग बदलकर कर्णावती दरवाजे से खंभात में प्रवेश करो और राजगढ़ में चले आओ। ध्यान रहे, जब खम्भात में आओ तब इतनी आवाज़ करो कि लोगों को खयाल हो कि गुजरात का कोई नया सैन्य खम्भात में आया है। इसके बाद वापिस चुपचाप खम्भात से बाहर जाओ और मक्का दरवाजे से उसी तरह प्रवेश करके राजगढ़ में आ जाओ। उसके बाद पनिहारी दरवाजे से। समझ गए न ?"

इस कार्य के पीछे अमात्य की जो युक्ति थी उसे भुवनपाल समझ गया। वह मौन रहकर स्वीकृति में अपना सिर हिलाकर चला गया।

सारी रात खम्भात के अलग-अलग द्वारों से जोर-शोर के साथ गुजरात का सैन्य नगर में प्रवेश करता रहा और आकर राजगढ़ में एकत्रित होता रहा। देखने वालों को अनुमान हुआ कि हजारों की संख्या में गुजरात का सैन्य खम्भात आ चुका है।

किन्तु सचाई तो जो थी वही थी—पचास अश्वारोही और ढाई सौ पैदल सैनिक।

परिस्थिति पर विचार करके वस्तुपाल ने एक संदेशवाहक धोलके के लिये भी रवाना कर दिया और तेजपाल को कहलाया कि वह पाँच सौ सैनिक शीघ्र खंभात भेज दे। संदेशवाहक तुरन्त वहाँ से चल पड़ा। इसके बाद वस्तुपाल ने रात्रि में थोड़े समय विश्राम कर लिया।

गुजरात के अमात्य की ओर से क्या संदेश आया था और उसका क्या उत्तर दिया गया, यह सूचना सिद्दीकसेठ ने कीर्तिदेव के जाते ही अपने एक आदमी द्वारा शंखराज के पास भिजवा दी थी। उसने शंखराज को यह भी कहलवा दिया था कि वह समुद्र में खंभात के और अधिक निकट आ जाए और एकदम तैयार रहे।

सिद्दीक का यह सन्देश लेकर उसका दूत शंखराज के पास चला तो

उधर शंखराज भी उतावला हो रहा था। उसे अपने बल का काफी घमंड था और गुजरात के बनिये मंत्री को खाली हाथ लौटा देने के लिए वह भी बेचैन था।

दूसरे दिन सुबह तक भी जब सिद्दीकसेठ का कोई आदमी आगे का समाचार लेकर उसके पास नहीं आया तब उसने अनुमान किया कि उसके मित्र पर कोई संकट आया लगता है। वस्तुपाल चतुर है यह तो उसने सुन ही रखा था, इसलिए वह जल्दी से जल्दी समुद्र-तट पर उतर-कर वारा-न्यारा कर लेना चाहता था।

धीरे-धीरे शंखराज ने अपने जलयान खम्भात के समुद्र-तट की ओर बढ़ाने शुरू किए। उसके जलयानों के सफेद पाल दूर से बर्फ की तैरती हुई शिलाओं की तरह से दिखाई देते थे। ज्यों-ज्यों वे नजदीक आते गए, त्यों-त्यों यानों की आकृति स्पष्ट होने लगी।

सिद्दीकसेठ ने अपनी हवेली की छत से यह देखा और उसकी जान में कुछ जान आयी।

गुजरात के अमात्य ने राजगढ़ के ऊँचे कंगूरे पर से यह देखा और उसने भुवनपाल को बुलाकर कहा—

"भुवनपाल ! सावधान ! शंखराज आ रहा है। सैनिकों को लेकर फौरन समुद्र-तट पर पहुँचो।"

शीघ्र ही वस्तुपाल सैनिकों सहित समुद्र-तट पर पहुँच गए। उनकी आज्ञा से नगर के सारे द्वार बन्द कर दिए गए। केवल मक्का दरवाजा ही खुला रहा जो समुद्रतट के ठीक सामने था।

वस्तुपाल ने उस सँकरे समुद्र-तट पर अपने ढाई सौ सैनिकों की व्यूह-रचना इस प्रकार की कि सैनिकों की अन्तिम टुकड़ी मक्का दरवाजे के भीतर तक पहुँची दिखाई देती थी। इस प्रकार बाहर से देखने वाले के लिए यह अनुमान लगाना असंभव था कि गुर्जर सैनिकों की संख्या कितनी है। द्वार के भीतर जाने कितनी दूर तक कितनी संख्या में सैनिक हों ?

शखराज धीरे धीरे तट की ओर बढ रहा था।

तट पर छोटा सा गुर्जर सैन्य उसके स्वागत के लिए व्यूह-रचना किए खडा था।

अमात्य वस्तुपाल ने गरजकर अपने सैनिको से कहा—

'वीर गुर्जर सैनिको ! मातृभूमि का ऋण चुकाने की घडी आ गई है। खबरदार, एक सैनिक अपने स्थान से एक इच भी पीछे नही हटेगा। शखराज के सैनिको को इस समुद्र-तट पर उतरने नही देना है।"

"महाराज भीमदेव की जय !"

"अमात्य वस्तुपाल की जय !"

"गुर्जरभूमि की जय !"

खम्भात का समुद्र इन जयघोषो स गूँज उठा। यह जयघोष शखराज के आगे बढते हुए जल याना से भी जा टकराया। सुनकर शखराज कुछ समय के लिए अपने यानो को समुद्र मे ही रोककर खडा हो गया। फिर वह धीरे-धीरे आगे बढने लगा।

शखराज का यान जब किनारे के काफी समीप आ गया तो वस्तुपाल अपना अश्व आगे बढाकर बिल्कुल जल के समीप तक जा पहुँचे। अथाह सागर की चचल लहरें उमड उमडकर तट की ओर आगे बढने लगी। कभी कभी कोई चचल लहर इतने वेग से उफनकर आती कि वह आकर वस्तुपाल के अश्व के चारो पैर क्षण भर मे प्रक्षालित करके पुन लौट जाती।

नायक भुवनपाल वस्तुपाल का अगरक्षक बनकर छाया की तरह उसक पीछे खडा था। उसके एक हाथ मे नगी तलवार थी और दूसरे मे तीक्ष्ण भाला। सूर्य की किरणे उसकी नगी तलवार और भाले की नाक पर पडकर शत-शत खण्डा म विकीर्ण होकर झिलमिल झिलमिल कर रही थी।

भुवनपाल पत्थर की प्रतिमा की तरह स्थिर और दृढ खडा शखराज के यान पर दृष्टि गढाए हुए था। उसके कान अमात्य के आदेश की प्रतीक्षा म सन्नद्ध थे।

शंखराज जब इतने समीप आ गया कि उसके पास तक आवाज़ जा सके तब वस्तुपाल ने कहा--

"शंखराज ! गुजरात की धरती पर गुजरात के मित्र बनकर आओ तो स्वागत है, नहीं तो इस धरती पर पैर नहीं रखना है ।"

सीधी और सच्ची बात, किंतु एक-एक शब्द में जैसे वज्र की दृढ़ता हो !

शंखराज की आज्ञा से उसका यान ठहर गया था । उसने वस्तुपाल की बात सुनी । अपनी बड़ी, काली, घनी गुलमुच्छों पर हाथ फेरते हुए उसने वहीं से उत्तर दिया—

"शंखराज को रोके ऐसी ताकत गुजरात के बनिए मंत्री में कबसे आ गई ? वस्तुपालजी, मेरे रास्ते से हट जाओ तो अच्छा है ।"

"मुझे भी यही कहना है शंखराज ! वस्तुपाल के रास्ते पर पड़कर कुशल नहीं होगी ।"

"अरे वस्तुपालजी, यह तो लड़ाई का मैदान है । उसमें फैसले तलवार से होते हैं, जबान से नहीं । आप अपना बहीखाता और कलम-दवात छोड़कर इधर कहाँ भूल पड़े ?"

"कुछ लोग यह भूल गए हैं कि यह गुजरात है । उन्हें याद दिलाने आना पड़ा है मुझे ।"

'हो-हो' करके शंखराज ने अट्टहास किया और कहा--

"मंत्रीजी ! खम्भात में शंखराज की आज्ञा मानी जाती है ।"

"खम्भात गुजरात का है शंखराज ! और गुजरात में महाराज भीमदेव की आज्ञा का पालन होता है ।"

"उस बूढ़े नामर्द में अब इतनी ताकत आ गई क्या ?"

"ताकत का फैसला भी तलवार से होता है शंखराज !"

"तो आ जाओ मैदान में ।"

"खड़ा तो हूँ । स्वयं आओगे या अपने किसी भट को भेजोगे ? ताकत की आजमाइश करनी है न ? इन बेचारे हजारों सैनिकों की जान लेने से फायदा ?"

शखराज ने कुछ क्षण सोचा और फिर अपने पास खडे एक दैत्याकार सैनिक को सकेत किया। शखराज का यान लगभग किनारे से जा लगा। वह सैनिक यान मे-से कूदकर किनारे पर जा खडा हुआ। वस्तुपाल ने भुवनपाल से कहा—

"सूरमा ! गुजरात की लाज रखना।"

उसके बाद भुवनपाल और शखराज के सैनिक आपस मे भिड गए। घडी भर उनकी तलवारें बिजलियाँ बरसाती रही और अन्त मे भुवनपाल के एक वार से शत्रु-सैनिक का मस्तक कटकर पानी मे जा पडा। पानी लाल हो गया।

एक के बाद एक चार विकराल सैनिक शखराज की ओर के समुद्र-तट पर कूद-कूदकर भुवनपाल से भिडने गए। भुवनपाल पर आज रण-रग चढा हुआ था। वह एक महारथी की तरह सग्राम कर रहा था। जब चौथा सैनिक भी भुवनपाल के हाथो मौत क घाट उतार दिया गया तो वीर शखराज के धैर्य का बाँध टूट गया और वह स्वय तलवार हाथ म लेकर किनारे पर कूद पडा !

वस्तुपाल आगे बढकर शखराज स युद्ध ले इसके पहले ही भुवनपाल शख से जा भिडा। कहता गया—

"मत्रीजी ! आज इस धरती के अन्न-जल का ऋण चुकाने का मौका मिला है, चुका लेने दीजिए।"

भुवनपाल ने कुछ देर तक जमकर युद्ध किया। किन्तु वह थका हुआ था। और शखराज स्वय एक पराक्रमी योद्धा था अत' थोडी देर के बाद ही शखराज ने अपनी तलवार के एक वार स उसका सिर धड से अलग कर दिया।

जननी जन्मभूमि के अन्न-जल का ऋण चुकाकर सुभट भुवनपाल चिरनिद्रा मे लीन हो गया।

शखराज अब अपना भाला लेकर वस्तुपाल की ओर बढा। उसने कहा—

"आओ मंत्रीजी, तराजू और तलवार में क्या अन्तर है यह आपको आज बतादूँ।"

वस्तुपाल अपने अश्व से नीचे उतरे और अपना भाला लेकर वे शंखराज से भिड़ गए। उन्होंने कहा--

"शंखराज! तराजू थामते-थामते मुझे थोड़ा भाले-तलवार का वज़न भी मालूम हो गया है। आइये आपको भी थोड़ा बतादूँ।"

शंखराज पराक्रमी योद्धा था। वह झपट-झपट कर वार पर वार किए चला जा रहा था। किन्तु वस्तुपाल भी चट्टान की तरह अडिग थे और वे शंखराज के वारों को आसानी से काट रहे थे। इसके साथ ही वे जो वार शंखराज पर अवसर पाकर कर रहे थे वे शंखराज को भारी पड़ रहे थे, ऐसा प्रतीत हो रहा था।

भालों की टकराहट से चिनगारियाँ निकल रही थीं। शंखराज और वस्तुपाल के सैनिक दम साधे हुए इस भीषण द्वन्द्व-युद्ध को देख रहे थे और परिणाम क्या होता है यह देखने के लिए चिन्तित थे

घड़ी पर घड़ी व्यतीत होती चली गईं। गुजरात और लाट के दो अद्वितीय योद्धा उस दिन खंभात के समुद्र-तट पर मानो जीवन-मरण का फैसला कर डालने पर उतारू थे। शंखराज चिढ़ रहा था कि इस वनिए मंत्री में इतना बल और युद्ध-कौशल कहाँ से आ गया? उसने तो सोचा था कि देखते-देखते ही वह वस्तुपाल का हिसाब साफ कर देगा। किन्तु वस्तुपाल तो अब तक ऐसे युद्ध कर रहे थे जैसे किसी बच्चे को खिला रहे हों।

धीरे-धीरे शंखराज का दम फूलने लगा। उसके पाँव लड़खड़ाने लगे। उसके भाले के वार अब आड़े-तिरछे पड़ने लगे। अवसर पाकर उसने पीछे देखा कि उसका यान तट से कितनी दूर है......।

और उसी समय खम्भात के पाटन दरवाज़े की दिशा से गुजरात, महाराज भीमदेव और राणा वीरधवल की जय के घोष उठाता हुआ, गुजरात का एक नया सैन्य आकाश में धूल के बादल उठाता हुआ

अमात्य की आज्ञा से वह सारी सम्पत्ति सिद्दीकसेठ के अधिकार में-से छीन ली गई और गाड़ियों में भर-भरकर धोलके और पाटन की ओर रवाना कर दी गई।

महाराज भीमदेव, महामण्डलेश्वर राणा लवणप्रसाद और राणा वीरधवल ने जब सारा समाचार सुना तब उनके हृदयों में आशा की एक नई किरण ने जन्म लिया।

सोना-चाँदी और रत्नों की गाड़ियों के अतिरिक्त सैकड़ों गाड़ियों में सिद्दीकसेठ की हवेली के तहखानों में-से समेटकर ढेर सारी स्वर्ण-रेणु भी धोलके के लिए रवाना कर दी गई थी। राणा वीरधवल की आज्ञा से सोना-चाँदी-रत्न गुजरात के राज्यकोष में जमा कर दिए गए और वह सारी स्वर्ण-रेणु वस्तुपाल के घर भेज दी गई।

जब वस्तुपाल ने इस बात पर आपत्ति करनी चाही थी तो राणा वीरधवल ने कहा था—

"मेरे गर्वीले गुजरात के गर्वीले अमात्य! इसे राजाज्ञा मानकर स्वीकार करो। मैं जानता हूँ तुम इस सम्पत्ति का सदुपयोग ही करोगे, फिर संकोच कैसा? नहीं, मैं कुछ नहीं सुनूँगा। वह स्वर्ण-रेणु तुम्हारी है।"

विवश अमात्य ने फिर कुछ कहा नहीं था। उनकी आँखों में उस क्षण तैर गया था ऊँचे आबू-पर्वत के शिखर पर आकार ग्रहण करता होता हुआ एक अद्‌भुत जिनमन्दिर जो अपनी कला के लिए युग युग तक संसार में कीर्तिवान् रहे।

***

जैसा बाप वैसा बेटा

अमात्य वस्तुपाल ने लाट के स्वामी शखराज पर जो विजय प्राप्त की और जिस रीति से की इससे उनकी कीर्ति सारे गुजरात मे फैल गई। इस अभियान मे गुजरात का केवल एक सैनिक समाप्त हुआ था—भुवनपाल।

उस वीर सैनिक की स्मृति को अमर करने के लिए वस्तुपाल ने कोई कसर उठा नही रखी। राणा वीरधवल से उन्होने कहा—

"राजन्! खम्भात के समुद्र-तट पर भुवनपाल की स्मृति मे एक शिवालय का निर्माण कराना चाहता हूँ। आज्ञा दीजिए।"

राणा को बडा आश्चर्य हुआ। एक मामूली से सैनिक की स्मृति मे शिवालय! उन्होने कहा—

"इसकी क्या जरूरत है वस्तुपालजी? वह तो एक सामान्य सैनिक था।"

"हाँ, राजन् ! था तो वह एक सामान्य सैनिक ही। किन्तु उसने गुजरात की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने प्राण दिए हैं। साम्राज्य ऐसे ही सामान्य सैनिकों के सहारे सुरक्षित रहते हैं।"

"लेकिन यह भुवनपाल था कौन ?"

तब वस्तुपाल ने राणा को बहुत दिन पहले घटित हुई वह कथा सुनाई—

"भुवनपाल वही आपका सेवक भूवड था जिसने आपके हाथ में-से अंगूठी चुराई थी। लेकिन उसने अपने इस छोटे-से पाप का बड़ा भारी प्रायश्चित कर लिया।"

"आश्चर्य है ! वह मामूली-सा सेवक इतना वीर सुभट निकला ?"

"गुजरात की गोद में ऐसे कितने-कितने सुभट पल रहे हैं राणाजी, इसकी गिनती है क्या ?"

"राणा वीरधवल अभिभूत से होकर कुछ देर मौन रह गए। वस्तुपाल ने फिर कहा –

"तब आपकी आज्ञा है न राजन् ! मैं शिवालय का कार्य आरम्भ कराता हूँ।"

"अवश्य। यह भुवनपाल आपका ही बनाया हुआ सुभट था वस्तुपालजी ! जैसा आप ठीक समझें वह करें।"

फिर खंभात के उस समुद्र-तट पर एक विशाल शिवालय बनना आरम्भ हुआ, तेज़ी से। जब वह बनकर पूरा हुआ तब उसका नाम रखा गया भुवनपाल प्रासाद। उस शिवालय में शिव की प्रथम पूजा के अवसर पर भुवनपाल के बूढ़े माता-पिता को खोजकर सम्मान सहित बुलाया गया और राज्य की ओर से उनकी जीविका का समुचित प्रबंध भी कर दिया गया।

देखने में यह एक सामान्य घटना ही थी। किन्तु इसने गुजरात के जन साधारण में जागृति की एक लहर उठा दी। वर्षों से जिनके हौंसले पस्त हो चुके थे, वे गुजरात के नागरिक अब अपना सिर ऊँचा उठाकर

चलन लग और विचार करन लगे … णप्रसाद के पुत्र के
क निए अपन सर्वस्व का बलिदान … चा उद्घकर
मरकर अमर हो जात हैं।

इस शिवालय क निर्माण का एक
लोगा पर पडा। वस्तुपाल जैन थ। किन्तु
सबस पहला प्रभु प्रासाद जो बनवाया वह।
गुजरात म लाखा की सख्या म जो शिवापासक
ठाकुर आदि थे उनक मन म वस्तुपाल क प्रति
भाव उमडा। अपन अमात्य की उदारता का गहरा … हृदया
म समा गया।

धीर-धीर गुजरात क अमात्य की कीर्ति गुजर राष्ट्र की सीमाओं का पार करके अवन्ती और दवगिरि तक जा पहुँची। वस्तुपाल का साहित्य और कला क प्रति गहरा अनुराग देखकर देश-देश क कवि और कलाकार धारक पहुँचन लग। वस्तुपाल न उनका स्वागत किया और उन्ह पूर्ण प्रश्रय दिया। खुल हाथा स उन्होंन कविया और कलाकारा को पुरस्कार और सम्मान दिया।

गुजरात की प्रतिष्ठा एक-एक चरण ऊपर चढन लगी और वस्तुपाल का लोग नाजराज कहकर सम्बोधित करन लग।

× × × ×

खभात का हिसाब चक जान क बाद राणा वीरधवल मस्ती म आ गए थ। राज्यकोष म पर्याप्त सम्पत्ति एकत्रित हो गई थी। गुजरात क सैन्य म प्रतिदिन सैकडा वीर भरती हा रह थ। गुजरात क अनेक छोट मोट मण्डलश्वर जो किसी समय महाराज भीमदेव की आज्ञाओ की उपेक्षा करन लगे थ व अब चुपचाप भीगी बिल्ली बन गए थ।

किन्तु यह ता अभी आरम्भ ही था। अभी वनथली का वैर

"हाँ, राजन् ! थुर्र के धुधूलराज से निवटना था। भद्रेश्वर के गुजरात की प्रतिमा निकालनी थी—अभी वहुत कुछ शेप था !

ही सामादन रानी जयलता ने राणा वीरधवल से कहा—

"खंभात से तो निवट गए, अव वनथली का क्या करना है ?"

"क्यों वनथली का क्या करना है ? तुम्हें तुम्हारे आभूपणों की चिन्ता है न ?"

"धिक्कार है तुम्हें। जब देखो तव आभूपणों की ही वात करते हो। अपनी प्रतिष्ठा की वात नहीं सोचते कभी ?"

मस्ती में आए हुए राणा ने रानी को कुछ चिढ़ाते हुए कहा—

"अरे, वह तो घर की वात है जया ! आखिर वह तुम्हारे भाई हैं। जाने दो न !"

रानी को यह सुनकर क्रोध आ गया। वह सर्पिणी-सी फुफकारती हुई वोली—

"यूं क्यों नहीं कहते कि सोरठी तलवारों से डर लगता है। कभी युद्ध के मैदान में गए जो नहीं हो।"

इस तीखे व्यंग्य ने वीर राजपूत के खून में उवाल ला दिया। राणा ने एक क्षण रानी के क्रोध से लाल चेहरे को देखा और कहा—

"मुझे सोरठी तलवारों से डर लगता है ? क्या कहा तुमने ?"

"जो कहा वह तुमने सुना नहीं क्या ? आज मैं कहती हूँ और कल सारा गुजरात कहेगा कि राणा कायर है। वह युद्ध के मैदानों में स्वयं नहीं जाता, अपने अमात्यों और सेनापतियों को भेजता है। खंभात में तुमने क्या किया ? केवल तीन सौ सैनिकों के साथ वस्तुपाल को भेज दिया। क्यों ? यदि कुछ गड़वड़ होती तो ? और अव मैंने वनथली की वात कही है तव भी मैं जानती हूँ तुम क्या करोगे। तुम वस्तुपाल ...पाल से कहोगे कि जाओ और वनथली को गिरा आओ। वे ... इस तरह तुम्हारी कीर्ति का क्या होगा ? कभी

यह सुनकर वस्तुपालजी को आश्चर्य हुआ—राणा को अकेले हाथ वनथली जाने की कैसी सूझी ! वनथली वाले अकेले नहीं हैं। सोरठ के अन्य शासक भी उनके साथ हैं। और सोरठी बड़े क्रूर, भयानक लड़ाके हैं। राणा को अभी युद्ध का अनुभव भी नहीं है। ऐसे में राणा को अकेले कैसे जाने देना होगा ? कहीं कुछ गड़बड़ हो गई तो गुजरात का अमात्य कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहेगा—

कुछ देर विचार करके वस्तुपाल ने कहा—

"राणाजी ! आप पराक्रमी पिता के पराक्रमी पुत्र हैं। आपके लिए एक वनथली तो क्या, दस वनथलियाँ भी हों तो उन्हें गिराना कठिन नहीं। किन्तु मेरी एक विनय है, उसे ध्यान से सुनें—सोरठ विकट प्रदेश है। घने जंगल और वियावान मार्ग में पड़ते हैं। और सोरठी लोग बड़े धूर्त, कुटिल लड़ाके हैं। ऐसे विकट प्रदेश में आपको मैं अकेले नहीं जाने दूँगा।"

"और मैं निश्चय कर चुका हूँ कि अकेला ही जाऊँगा।"

"विस्मय है ! लेकिन राणाजी ! आप ऐसा हठ क्यों कर रहे हैं ?"

"यह हठ नहीं मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

"प्रतिष्ठा का प्रश्न ? मैं समझा नहीं।"

"लोग कहने लगे हैं कि राणा वीरधवल केवल अमात्य के बल पर युद्ध लड़ना जानता है। इससे मेरी प्रतिष्ठा को आँच आती है।"

"यह झूठ है, राणाजी ! ऐसा किसने कहा ? कौन साहस करता है ऐसा कहने का ? राणा वीरधवल को तो अभी मालवा और देवगिरि तक धावे करने हैं......।"

"वह सब ठीक है वस्तुपालजी ! किन्तु वनथली तो मैं सेना लेकर अकेला ही जाऊँगा। आपने मुझे खंभात भी नहीं जाने दिया, वह बहुत हुआ। अब इस बार आपकी बात नहीं मानूँगा।"

"आपकी आज्ञा के आगे मेरा क्या वश राजन् ! किन्तु मुझे यह

वात ठीक लगती नहीं है।"

"क्यो ? अभी तो आप कहते थे कि दस वनथलियाँ भी मेरे लिए कुछ गिनती में नहीं है।"

"वह मैं ठीक कहता था। किन्तु यदि आप मुझे अपने साथ न ले जाना चाहे तो न सही। मगर तब तेजपाल तो आपके साथ जायगा ही जायगा।"

"नही जायगा वस्तुपालजी! मैं कह चुका न ? वनथली गिराने का यश मुझे अकेले नहीं लेने दोगे ? सब जगह तुम दोनो भाई ही आगे रहोगे ?"

"यह आप क्या कहते हैं राणाजी! यश और प्रताप तो आपका ही है। हम तो आपके सेवक हैं।"

"ठीक है, यह आप कहते हो, लेकिन गुजरात की प्रजा अपने राणा को कायर समझे, यह मैं नहीं होने दूँगा।"

राणा को मनाने-समझाने मे वस्तुपाल जब असफल हो गए तब आखिर हारकर उन्होंने कहा—

"तब जैसी आपकी आज्ञा। मैं वैसा ही प्रबन्ध कर देता हूँ। लेकिन मेरी भी एक बात मानिए। आप जमीन के रास्ते सोरठ में न घुसिये। खम्भात होकर समुद्र के रास्ते गुर्जर सैन्य को लेकर जाइये और चुपचाप सोरठ के किसी वन्य प्रदेश मे किनारे पर उतरकर वहाँ से रातोरात वनथली जा पहुँचिए।"

"ऐसा क्यों ?"

"हमारा वैर तो अभी वनथली से है न ? सोरठ के अन्य शासकों को वनथली से पहले नही छेडना है। पहले वनथली गिर जाय तो दूसरे लोग स्वय ही घुटने टेक देंगे। वरना यदि वे सब इकट्ठे हो गए तो कठिनाई होगी।"

राणा वीरधवल ने इस बात पर विचार किया और अन्त मे उसे स्वीकार भी कर लिया। कहा—

"ठीक है, मैं आपकी इस योजना को मान लेता हूँ। अब वनथली के लिए कूच कब करना है ?"

"आज से पन्द्रह दिन बाद आप वनथली-विजय के लिए प्रस्थान करदें, राजन् !"

"इससे जल्दी नहीं ?"

"ऐसी जल्दी क्या है ? थोड़ा समय तो मुझे भी तैयारी के लिए दीजिए न !"

"ठीक। तब आज से पन्द्रहवें दिन।"

मन में चिन्ता लिए हुए अमात्य राणा से विदा लेकर अपने आवास पर लौटे। कुछ समय तक अपने निजी कक्ष में एकान्त में बैठकर उन्होंने समस्या पर गम्भीर विचार किया। वे जान गए थे कि राणा का स्वाभिमान जागा है और वे जिद पर चढ़ गए हैं। वीर-पुरुषों को ऐसी ज़िद शोभा भी देती है किन्तु कभी-कभी धोखा भी हो जाता है। और सोरठ तो अपनी धूर्त्तताभरी वीरता के लिए विख्यात है। ऐसे में अकेले राणा को यदि जाने दिया जाय तो कैसे ?

बहुत देर तक विचार करने के बाद उन्होंने इस समस्या का हल निकाला और तेजपाल को बुलाकर सारी स्थिति समझाकर कहा—

"तेजू ! तुझ पर एक गम्भीर उत्तरदायित्व डालता हूँ। गुजरात के भावी महाराज राणा वीरधवल की जीवन-रक्षा की जिम्मेदारी तुझे सौंपता हूँ। तू जानता है सोरठ कितना विकट प्रदेश है। उसका गिरनार जितना ऊँचा और दुर्गम है उतने ही भयानक सोरठी लड़वैये भी हैं। और इस समय वनथली के जो शासक हैं सामन्तसिंह और संग्रामसिंह उन्हें तो तू जानता ही है। वे धूर्त्त, नीच और खूँखार हैं। वे नीचता और मक्कारी की किसी भी सीमा तक उतर सकते हैं।'

"लेकिन राणाजी तो अकेले जाने की ज़िद पर हैं, तब मैं क्या करूँगा, बड़े भैया ?"

"इसी का उपाय मैंने सोचा है। राणा अकेले ही जाएँगे, अकेले ही लड़ेंगे। कम से कम राणा यही सोचेंगे कि वे वनथली में अकेले हैं। किन्तु तू भी अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ वनथली में होगा।"

"कैसे ?"

"तुझे कल ही वनथली जाना है। छिपकर और वेश बदलकर। वहाँ पहुँचकर अपने सैनिकों को इधर-उधर बिखरा देना लेकिन सम्बन्ध आपस में बनाए रखना। राणा को वनथली पहुँचने में बीस पच्चीस दिन लगेंगे। तब तक तू और तेरे सैनिक वनथली में पहुँचकर वहाँ जम जाएँगे—महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर। और जब राणा वहाँ पहुँचे तब तू छाया की तरह उनके पीछे लग जाना। इस तरह कि राणा को तनिक भी सन्देह न हो—किसी को भी पता न चले। बोल, ऐसा कर सकेगा न ?"

'हाँ, कर लूँगा।"

"तेजू ! यह अवसर किसी प्रकार की चूक करने का नहीं है, यह याद रखना।"

"चूक नहीं होगी बडेभैया !"

"यदि राणा को कुछ हो गया तो उसकी कीमत चुकाना तुझे बड़ा भारी पड़ेगा, भूलना नहीं। यह बात मैं तुझे बड़े भाई की तरह भी कहे देता हूँ और गुजरात के अमात्य के रूप में भी। बल्कि तू यही मान कि यह गुजरात के अमात्य का आदेश है।"

"आदेश सिरमाथे पर है अमात्यवर !"

"अब अमात्यवर की बात तो रहने दे, बडेभैया ही ठीक हैं, किन्तु दायित्व का निर्वाह प्राण देकर भी करना है।"

"आप चिन्ता न करें। जब तक तेजपाल जीवित है राणा का एक बाल भी बाँका नहीं होगा।"

"मुझे यही आशा है। और देख तेजू, कीर्तिदेव को अपने साथ अवश्य ले जाना।"

"उसे तो ले जाना ही होगा। उस बन्दर की सहायता के बिना वनथली के गढ़ में प्रवेश करना भी शायद कठिन पड़े।"

"मैं राणा को कहे देता हूँ कि तेजपाल चन्द्रावती जा रहा है। उधर आवश्यक राजकीय कार्य से। धारावर्षदेव से मिलकर दिल्ली के सुल्तान को गुजरात की ओर बढ़ने से रोकना है। तू पाटन होता हुआ जाना, वहाँ महाराज तथा मण्डलेश्वर से मिलते जाना। ज़रूरत पड़े तो उन्हें अपनी यह गुप्त योजना बता देना। वहाँ से चन्द्रावती के मार्ग पर कुछ दूर चलकर सोरठ में घुस जाना।"

"ठीक है बड़ेभैया! मैं सब कुछ समझ गया।"

"तब जाने की तैयारी कर ले।"

इसके बाद वस्तुपाल ने राणा वीरधवल से मिलकर उन्हें यह बता दिया कि तेजपाल चन्द्रावती जा रहा है। वे स्वयं धोलके में रहकर राज्य की रक्षा करेंगे और राणा अब निश्चिन्ततापूर्वक वनथली पर चढ़ाई कर सकते हैं।

तेजपाल दूसरे ही दिन धोलके में पाटन के लिए अपने साथियों सहित चल पड़ा। पाटन पहुँचकर वह महाराज भीमदेव और राणा लवणप्रसाद से बातचीत कर रहे थे। तेजपाल के पहुँचने पर राणा ने पूछा—

"कहो सेनापति! पाटन कैसे आना हुआ? उधर तो वनथली पर चढ़ने की तैयारी है न!"

"तैयारी तो है बापू! लेकिन मुझे तो वनथली जाना नहीं है। मैं तो चन्द्रावती जाने के लिए धोलके से निकला हूँ।"

उत्तर सुनकर महाराज भीमदेव और राणा दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। जिस समय गुजरात की सेना सोरठ पर चढ़ाई कर रही हो उस समय गुजरात का सेनापति अपनी सुसराल जा रहा है? राणा ने पूछा—

'इसका क्या अर्थ है तेजपाल ? वस्तुपालजी इस समय धोलके म रहेंगे और तुम चन्द्रावती जाओगे। तब क्या वीरधवल सोरठ पर अकेला चढेगा ?"

"सारठी लुटेरा के लिए राणाजी जैसा एक शेर ही क्या काफी नहीं है बापू ?"

यह प्रति प्रश्न सुनकर राणा लवणप्रसाद तो चुप रह गए। किन्तु महाराज भीमदेव बोले—

'तेजपाल, वीरधवल महारथी लवणप्रसाद का पुत्र है। किन्तु सोरठ भी तो विकट लडका प्रदेश है। तुम दोना भाइयो ने इस बात को क्यो नही सोचा ?"

"सोचा तो है महाराज ! किन्तु राणा मानते जो नही। बडेभैया ने उन्ह कितना समझाया, लेकिन उनकी जिद कि वनथली से बैर चुकाने और उसे गिराने का पराक्रम वे अकेले हाथो ही करेंगे।"

'जैसा बाप वैसा बेटा ! न बाप ने कभी किसी की सुनी और न बेटा सुनना चाहता है। क्यो वाघेला ! क्या कहते हो ?"

महाराज भीमदेव ने यह प्रश्न मण्डलेश्वर स किया किन्तु मण्डलेश्वर ने कुछ समय तक कोई उत्तर नही दिया। मन ही मन वे अपने पुत्र के पुरुषार्थ से प्रसन्न थे। लेकिन उन्ह चिन्ता भी अवश्य थी—वीरधवल अपना पुरुपाथ और पराक्रम दिखाना चाहता है, इससे बढकर प्रसन्नता की बात महायोद्धा लवणप्रसाद के लिए और क्या हो सकती थी ? किन्तु उस अभी युद्धा का अनुभव नही है और सोरठ दुर्जेय है। वे क्या कह और क्या न कह, इसी विचार म डूबे थे कि महाराज भीमदेव ने फिर कहा—

"वाघेला ! जिद्दी बाप का बेटा भी उसके जैसा जिद्दी निकले यह तो स्वाभाविक है। लकिन मैं उन हत्यारा के गढ़ म अपने वीरधवल को अकेला नही जाने दूँगा।'

तब मण्डलेश्वर ने उत्तर दिया—

"मैं क्या कहूँ महाराज ! वीरधवल ने निश्चय किया है तो वह अब अकेला ही जाकर मानेगा।"

"हरगिज़ नहीं। वीरधवल सोरठ में अकेला नहीं जाएगा।"—यह कहते हुए महाराज भीमदेव उठकर बैठ गए। बोले—"वह यदि तुम लोगों की बात नहीं मानता तो मैं जाता हूँ। मैं जाऊँगा उसके साथ सोरठ······।"

सचमुच रुग्ण और वृद्ध गुजरात के धनी में न जाने कहाँ से इतनी स्फूर्ति और शक्ति आ गई कि वे उठकर चलने की तैयारी करने लगे। यह देखकर तेजपाल ने आगे बढ़कर सम्मानपूर्वक उन्हें बाँह से थामकर फिर पर्यंक पर बिठाते हुए कहा—

"धीरज रखें महाराज ! बड़ेभैया ने मुझे इस समस्या का भी एक समाधन बताया है। आप सुनें।"

भीमदेव तेजपाल के चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर देखने लगे और वह क्या कहना चाहता है यह सुनने के लिए ठहर गए। तब तेजपाल ने अपनी गुप्त योजना उनके सामने प्रगट करके कहा—

"महाराज ! इस योजना के अनुसार राणाजी की ज़िद भी रह जायगी और मैं भी वहाँ पहुँच जाऊँगा। आप चिन्ता न करें, जब तक हमारी देह में लहू की एक बूँद भी बाकी है तब तक गुजरात के धनी को किस बात की चिन्ता ? मैं राणा के साथ गुप्त रीति से छाया की तरह लगा रहूँगा। उनकी रक्षा की जिम्मेवारी तेजपाल की है।"

अब महाराज भीमदेव शान्त हुए। बोले—

"तब तुमने हमें पहले से यह बात क्यों नहीं बताई थी तेजपाल ! यह योजना तो ठीक है।"

"अपकी और बड़े राणा की सम्मति क्या है, यह जानना चाहता था महाराज ! बाप-बेटे की ज़िद तो जगजानी है न !"

"ठीक है, ठीक है। वस्तुपाल की चतुराई को मैं जान गया। उसने किनारों को सम्हाल लिया है। अब मैं निश्चिन्त हुआ। लेकिन

गुजरात के महासेनापति तेजपाल ! याद रखना राणा वीरधवल को मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। मेरी अमानत मुझे सुरक्षित वापस लौटाना है।"

"राणा वीरधवल सोरठ विजय करके शीघ्र ही लौटेंगे महाराज ! इससे अधिक कहने को मेरे पास कुछ नहीं है। अब आज्ञा लूँ ?"

"हाँ जाओ, तेजपाल ! विजयी बनो। वाघेला, तेजपाल को तुम भी आशीर्वाद दो न !"

"गुजरात के सपूतों को वाघेला लवणप्रसाद का आशीर्वाद तो सदा ही है महाराज ! सावधान रहना तेजपाल !"

महाराज और मण्डलेश्वर को प्रणाम करके गुजरात का चपल, कद्दावर, गर्वीला सेनापति विदा हुआ।

***

वनथली के दुर्ग में

धोलके में चहल-पहल मची हुई थी। रणबाँकुरे गुर्जर सैनिक अपने-अपने सम्बन्धियों से प्रेम और उत्साहपूर्वक विदा ले रहे थे। बहिनें अपने भाइयों की, पत्नियाँ पतियों की, माताएँ अपने पुत्रों की कुशल मना रही थीं और उनके विजयी होकर लौटने की प्रार्थना अपने-अपने इष्ट से कर रही थीं।

कहीं काठियावाड़ी पगड़ी की छवि देखने योग्य थी, और कहीं शस्त्रों की झंकार से वातावरण में अद्‌भुत वीर-रस का संगीत फूट रहा था।

सभी जगह, सभी के मन में उत्साह का समुद्र हिलोरें मार रहा था और उमंग आकाश चढ़ रही थी।

राणा वीरधवल धोलके में मची हुई इस धूम को देख-देखकर आनन्द में डूबे हुए थे। अपने वीर सैनिकों के विश्वास से भरे हुए चेहरों

को देख-देखकर उनकी छाती गज-गजभर फैल रही थी। वनयन्त्री पर चढने की उनके मन मे इतनी आतुरता थी कि वे वार-वार अपने अमात्य से पूछते—

"अब और कितनी देर है वस्तुपालजी ?"

वस्तुपाल राणा की उमग को देखते और उत्तर देते—

"सब तैयारी हो गई है। आज पचमी है। और दो दिन धीरज रखिए, अष्टमी को तो आप कूच कर ही देंगे।"

"ओह आज पञ्चमी ही हुई क्या ? दिन वडी धीरे-धीरे व्यतीत होते हैं।"

उन्ही दिनो मे, सोरठ-अभियान आरम्भ होने मे ठीक एक दिन पूर्व, जब राणा वीरधवल अपना दरवार भरे वैठे थे तव द्वारपाल ने आकर विनयपूर्वक सूचना दी—

"राणा वीरधवल की जय ! कोई तीन परदेशी सैनिक दरवार म उपस्थित होने की आज्ञा चाहते हैं।"

"परदेशी सैनिक ?"—राणा ने वस्तुपाल की ओर देखा। अमात्य ने स्वीकृति का सकेत किया और राणा ने कहा—

"उपस्थित करो !"

द्वारपाल मस्तक झुकाकर लौट गया और कुछ ही क्षण वाद राणा के दरवार मे तीन तेजस्वी व्यक्तियो ने प्रवेश किया। इन तीन व्यक्तियों मे-से एक भी ऐसा नही था जो साढे छह फुट से कम ऊँचाई का हो। उनका वेश सैनिको जैसा था—कमर मे लटकती हुई दो-दो दुधारी तलवारें, कटार, सिर पर रगीन मारवाडी पाग और वडी-वडी आँखो वाले दवग चेहरे।

आगन्तुक व्यक्तियो ने राणा वीरधवल का प्रणाम किया। राणा ने पूछा—

"आपका नाम-ग्राम ? पधारने का प्रयोजन ?"

तीनो आगन्तुको मे-से एक ने जो आयु मे सवसे वडा प्रतीत होता

वनथली के दुर्ग में

धोलके में चहल-पहल मची हुई थी। रणबाँकुरे गुर्जर सैनिक अपने-अपने सम्बन्धियों से प्रेम और उत्साहपूर्वक विदा ले रहे थे। बहिनें अपने भाइयों की, पत्नियाँ पतियों की, माताएँ अपने पुत्रों की कुशल मना रही थीं और उनके विजयी होकर लौटने की प्रार्थना अपने-अपने इष्ट से कर रही थीं।

कहीं काठियावाड़ी पगड़ी की छवि देखने योग्य थी, और कहीं शस्त्रों की झंकार से वातावरण में अद्भुत वीर-रस का संगीत फूट रहा था।

सभी जगह, सभी के मन में उत्साह का समुद्र हिलोरें मार रहा था और उमंग आकाश चढ़ रही थी।

राणा वीरधवल धोलके में मची हुई इस धूम को देख-देखकर आनन्द में डूबे हुए थे। अपने वीर सैनिकों के विश्वास से भरे हुए चेहरों

को देख-देखकर उनकी छाती गज-गजभर फैल रही थी। वनथली पर चढने की उनके मन मे इतनी आतुरता थी कि वे बार-बार अपने अमात्य से पूछते—

"अब और कितनी देर है वस्तुपालजी ?"

वस्तुपाल राणा की उमग को देखते और उत्तर देते—

"सब तैयारी हो गई है। आज पचमी है। और दो दिन धीरज रखिए, अष्टमी को तो आप कूच कर ही देंगे।"

"ओह आज पञ्चमी ही हुई क्या ? दिन बडे धीरे-धीरे व्यतीत होते है।"

उन्ही दिनो मे, सोरठ-अभियान आरम्भ होने मे ठीक एक दिन पूर्व, जब राणा वीरधवल अपना दरबार भरे बैठे थे तब द्वारपाल ने आकर विनयपूर्वक सूचना दी—

"राणा वीरधवल की जय ! कोई तीन परदेशी सैनिक दरबार मे उपस्थित होने की आज्ञा चाहते हैं।"

"परदेशी सैनिक ?"—राणा ने वस्तुपाल की ओर देखा। अमात्य ने स्वीकृति का सकेत किया और राणा ने कहा—

"उपस्थित करो !"

द्वारपाल मस्तक झुकाकर लौट गया और कुछ ही क्षण बाद राणा के दरबार मे तीन तेजस्वी व्यक्तियो ने प्रवेश किया। इन तीन व्यक्तियो मे-से एक भी ऐसा नही था जो साढे छह फुट से कम ऊँचाई का हो। उनका वेश सैनिको जैसा था—कमर मे लटकती हुई दो-दो दुधारी तलवारें, कटार, सिर पर रगीन मारवाडी पाग और बडी-बडी आँखो वाले दबग चेहरे।

आगन्तुक व्यक्तियो ने राणा वीरधवल को प्रणाम किया। राणा ने पूछा—

"आपका नाम-ग्राम ? पधारने का प्रयोजन ?"

तीनो आगन्तुको मे-से एक ने जो आयु मे सबसे बडा प्रतीत होता

था उत्तर दिया—

"हम लोग मारवाड़ के जालोर प्रदेश के निवासी हैं। जालोर के स्वामी राजा समरसिंह हमारे पिता थे। हम तीनों भाई हैं। आजकल जालोर में हमारे सबसे बड़े भाई उदयसिंह राज्य करते हैं। मेरा नाम है सामन्तपाल, इनका अनन्तपाल और सबसे छोटे का त्रिलोकसिंह।"

"आप तीनों राजकुमारों का गुजरात की धरती पर स्वागत है! विराजिए, और अपने पधारने का प्रयोजन कहिए।"

योग्य आसन पर बैठने के बाद सामन्तपाल ने कहा—

"राणाजी! भाई उदयसिंह ने हमें राज्य में उचित हिस्सा और अधिकार नहीं दिया। तब अपमान का जीवन जीने की अपेक्षा हमने अपनी तलवार के बल पर जीवन-निर्वाह का निश्चय किया।"

"यह तो ठीक है। यह वसुन्धरा तो वीरभोग्या ही है, राजकुमार सामन्तपाल!"

"हाँ राणाजी! एक राजपूत जिसके हाथ में तलवार हो उसे इस इतनी बड़ी पृथ्वी पर कहीं-न-कहीं स्थान मिल ही जायगा।"

वस्तुपाल ने इन तीनों वीर राजकुमारों के ऊँचे तेवर देखे और विचार किया कि मारवाड़ की ओर से गुजरात को जो भय बना रहता है, उसे एक सीमा तक समाप्त करने का यह बड़ा अच्छा अवसर है। उन्होंने कहा—

"सामन्तपालजी! हम आपका स्वागत करते हैं। आप गुजरात के महाराज की सेवा में रहना स्वीकार करेंगे?"

"हमने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है अमात्यवर! और बड़े राणा महामण्डलेश्वर लवणप्रसादजी की तलवार की काट की तो घर-घर में चर्चा है। इसलिए हम मारवाड़ से निकलकर सबसे पहले गुजरात ही आए हैं। यदि गुजरात हमें रखेगा तो हम यहाँ अवश्य रहेंगे।"—सामन्तपाल ने स्पष्टतापूर्वक उत्तर दिया।

"तब आप कृपा कर अपनी शर्तें कहिए।"

"हममे से प्रत्येक को दो-दो लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिवर्ष यदि आप देना स्वीकार करें तो हम गुजरात के महाराज की सेवा मे रहने के लिए प्रस्तुत है।"

यह सुनकर राणा वीरधवल के मुख पर चिन्ता की रेखा घिर आई और इससे पूर्व कि अमात्य वस्तुपाल कुछ कहे, वे बोले—

"सामन्तपालजी ! आपकी शर्त तो बहुत बडी है।"

सामन्तपाल ने उत्तर दिया—

"राणाजी ! जो सेवा हम आपकी करेंगे उसे देखते हुए यह शर्त बडी नही है।"

"लेकिन इतनी राशि मे तो हम एक-एक के स्थान पर हजारो सैनिक रख सकते हैं।"—कुछ झिझकते हुए राणा ने कहा—

यह सुनकर सामन्तपाल के ओठो पर एक व्यगभरी मुसकान खेल गई। उसने उत्तर दिया—

"हाँ, रख तो अवश्य सकते है राणाजी ! किन्तु सामन्तपाल, अनन्तपाल और त्रिलोकसिंह उन हजारो सैनिकों मे नहीं मिलेंगे। खैर, जैसी आपकी इच्छा। तब हमे आज्ञा प्रदान करें।"

यह कहकर सामन्तपाल ने उठने का उपक्रम किया। किन्तु वस्तुपाल ने उन्हे रोकते हुए राणा वीरधवल से कहा—

"राजन् ! मूल्य मनुष्य का होता है, धन का नही। ये तीनों उत्तम पुरुष हैं। उत्तम पुरुषो के सचय करने से धन तो कदम-कदम पर प्राप्त हो जाता है। मेरी विनम्र सम्मति म सामन्तपालजी और उनके वीर बन्धुओं को हमे अपने यहाँ रख लेना चाहिए।"

किन्तु राणा वीरधवल के मन म धन का लोभ समा गया था। कुल मिलाकर छह लाख स्वर्णमुद्राएँ प्रतिवर्ष ? केवल तीन व्यक्तियो को ? यह तो बहुत अधिक है। उन्होने कहा—

"वस्तुपालजी ! ये तीनो राजपुत्र वीर हैं, मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु गुजरात के राज्यकोप मे इतनी अधिक सम्पत्ति नही है। विवशता

है।"—और फिर सामन्तपाल को सम्बोधित करते हुए वे बोले—"सामन्तपालजी ! हमारी विवशता है। लेकिन आप पधारे हैं तो स्नेह के प्रतीक पान के बीड़े तो ग्रहण करते जाइये।"

भरे दरबार में राणा से बहस किस प्रकार की जाय यह सोचते हुए वस्तुपाल चुप रह गए। वे जानते थे कि यह एक बड़ी भूल हो रही है किन्तु ज़िद्दी राणा के सामने उस समय उन्होंने मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा।

एक सेवक ने राणा के संकेत को समझकर सोने के थाल में चाँदी के वर्क़ लगे हुए पान के बीड़े तीनों आगन्तुकों की ओर बढ़ाए। तीनों राजपुत्रों ने एक-एक बीड़ा स्वीकार किया और विदा लेकर चले गए।

राणा को वनथली की पड़ी थी। दूसरे दिन ही तो कूच का नगाड़ा बजने को था। वे शीघ्र ही दरबार समाप्त करके अन्तःपुर की ओर चले गए।

× × ×

अष्टमी का अर्द्धचन्द्र भुवनपाल-प्रासाद के शिखर पर चमक रहा था। सामने समुद्र की लहरें उमड़-उमड़कर किनारे की रेत पर किसी अजानी लिपि में कोई अनकही कथा लिख-लिख जाती थीं। हलकी चाँदनी खम्भात नगर के ऊँचे भवनों और समुद्र के अथाह जल पर बरस रही थी।

राणा वीरधवल रानी जयलता और अपने पुत्र वीरमदेव के साथ शिवालय में शम्भु के दर्शन करके धीर गति से तट की ओर बढ़ रहे थे जहाँ गुजरात के युद्धपोत उन्हें और गुर्जर सैन्य को लेकर अपनी-यात्रा पर आगे बढ़ने के लिए तैयार खड़े थे।

सैनिक वेश में राणा की छवि देखने योग्य थी और रानी जयलता कनखियों से अपने पति को बार-बार निहारकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी।

वस्तुपाल खम्भात तक राणा को विदा करने आए थे। जब राणा और सारा सैन्य नौकाओं में चढ़ गया तब उन्होंने कहा—

"सोरठ विजय करके शीघ्र ही धोलके लौटें, राजन्! गुजरात आपका स्वागत करने के लिए आँखें बिछाए बैठा रहेगा।"

राणा वीरधवल के चेहरे पर स्मित झलक आया। उन्होंने उत्तर दिया—

"अमात्यवर! चिन्ता न करें, मैं शीघ्र लौटूँगा। आप धोलके और पाटन की तब तक रक्षा करें।"

"पाटन तो आपके प्रताप से अब उठ खड़ा हुआ है राणा! अब पाटन की ओर आँख उठाने वाले को दो बार सोच लेना होगा। अच्छा, अब विलम्ब होता है। प्रयाण करें।"

प्रयाण का नगाड़ा बज उठा। एक-एक करके सभी युद्धपोत गहरे और अथाह जल की ओर बढ़ते चले गए और देखते ही-देखते आँखों से ओझल हो गए।

× × × ×

तेजपाल पाटन में गुरु कुमारदेव के दर्शन करके और उनसे आशीर्वाद लेकर कीर्तिदेव और अपने पचास सैनिकों के साथ वहाँ से चन्द्रावती के मार्ग पर चल दिया था। काफी दूर चले जाने के बाद जंगल में एक स्थान पर वह छोटी-सी टुकड़ी ठहर गई। वहाँ से सोरठ की ओर मुड़ जाना था।

उस स्थान से जब वह टुकड़ी आगे बढ़ी तब वह पूरी तरह बिखर गई थी। दो दो, चार चार के समूह में वे लोग भिन्न भिन्न मार्गों से सोरठ की ओर बढ़ने लगे। वहाँ अब किसी को भी सैनिक जैसा नहीं था। अस्त्र-शस्त्र छिपा लिए गए थे। कुछ लोग साधु-सन्यासियों के रूप में, कुछ वैद्य-हकीमों के वेश में, कुछ सपेरों और नटों जैसा बाना-भेस करके और कुछ व्यापारी बनकर वहाँ से आगे बढ़े। उन्हें देखकर वह

जानना कठिन था कि वे छद्मवेश में गुजरात के सैनिक हो सकते हैं।

तेजपाल और कीर्तिदेव संन्यासियों का भेष बनाकर चिमटा बजाते हुए, भस्म रमाए हुए, 'बम-बम भोला' की रट लगाते सोरठ की सीमा में प्रविष्ट हुए। कीर्तिदेव ने तेजपाल से कहा—

"गुरुजी! वनथली अब कितनी दूर होगी? यात्रा करते-करते पैरों में छाले पड़ गए हैं।"

"घबराओ नहीं बच्चा! अब वनथली आई ही समझो। वहाँ के राजा बड़े दानी-मानी हैं। वहाँ पहुँचकर तुम्हारे सारे सन्ताप दूर हो जायँगे।"

कीर्तिदेव मुस्कराया और बोला—

"गुरुजी! वन-वन में भटकते हुए क्षुधा और पिपासा ने मेरे तो प्राण ले लिए। वनथली कहीं दिखाई नहीं देती। कहीं ऐसा न हो कि आपका यह शिष्य ब्राह्मण चन्द्रहास भूखा-प्यासा मार्ग में ही शीतल हो जाय।"

"शिव, शिव! हरे-हरे! क्या कहते हो वत्स! अब तो वनथली बस दो हाथ की दूरी पर ही है। इस प्रकार निराश नहीं हुआ करते।"

दो-चार कदम और चलकर त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण चन्द्रहास सचमुच ही भूमि पर पसर गया और बोला—

"नहीं गुरुजी! अब नहीं चला जाता। आप पधारिए, मेरी तो मुक्ति इसी बीहड़ वन में लिखी थी। प्रणाम गुरुदेव! अब आगामी भव में ही दर्शन करूँगा और चरणों की धूलि मस्तक से लगाऊँगा। हे राम!"

यह कहकर ब्राह्मण चन्द्रहास ने गुरु अखण्डानन्द के चरणों की धूलि अन्तिम बार अपने मस्तक से लगा लेने के लिए हाथ बढ़ाए। गुरु अखण्डानन्द ज़ोर से हँस पड़े और चेले का हाथ खींचकर उठाते हुए बोले—

"अब चल, कीर्तिदेव, नाटक बहुत हो लिया। जल्दी वनथली पहुँचना है।"

कीर्तिदेव भी हँसा और उठकर चलता हुआ बोला—

"पक्का चेला दिखाई देता हूँ न आपका ?"

"बिल्कुल। अब गडबड मत कर कीर्तिदेव, सब लोग बहुत आगे निकल चुके। हम सबसे पीछे रह गए हैं। जल्दी चल।"

इसी प्रकार मनोरजन करते और फिर तेज़ी मे मार्ग काटते हुए वे लोग शीघ्र ही वनथली जा पहुँचे।

वनथली पहुँचकर तेजपाल और कीर्तिदेव ने गुरु अखण्डानन्द और चेले चन्द्रहास के रूप के राजगढ मे ठीक सामने कुछ ही गज के फासले पर अपनी धूनी रमा दी। चिमटे गड गए और आठो प्रहर भोलेनाथ का जाप आरम्भ हो गया।

तेजपाल के शेष सैनिक भी अलग-अलग वेश मे वनथली म प्रविष्ट होकर अपने-अपने लिए नियत महत्त्वपूर्ण स्थलो पर अड गए।

गुरु अखण्डानन्द की धूनी पर सारे दिन भक्तो का आवागमन जारी हो गया। पहुँचे हुए सन्यासी जो थे! सीधे हिमालय की गुफाओ से निकलकर भक्तजन के कल्याण के लिए धराधाम मे अवतीर्ण जो हुए थे।

तेजपाल के सैनिक सारे नगर मे घूम-घूमकर नगर के समाचार समय पर आकर उसे दे जाते थे और स्वामीजी के चरणो की धूलि मस्तक से लगाकर फिर लौट जाते थे।

जिन सैनिको ने वैद्य और हकीमो का भेष बनाया था उनका आना-जाना राजगढ के भीतर तक हो गया था। अत राजगढ का पूरा मानचित्र भी तेजपाल ने सहज और शीघ्र ही प्राप्त कर लिया था।

सब ठीक हो गया था। प्रतीक्षा थी राणा वीरधवल के वनथली पर बिजली की तरह टूट पडने की।

× × × ×

सोरठ के एक जगली और पहाडी प्रदेश मे गुजरात का सैन्य चुपचाप उतर गया। राणा वीरधवल वहाँ से सघन वन की आड लेते

हुए सेना सहित वनथली से एक योजन दूर आ पहुँचे और वहाँ पड़ाव डालकर ठहर गए।

रानी जयलता अपनी जन्मभूमि में पहुँचकर कुछ खोई-खोई सी दिखाई पड़ रही थीं। उनके मन में एक हल्का-सा द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ था—एक ओर पितृकुल था, दूसरी ओर पति का कुल और उसकी प्रतिष्ठा। वह सोच रही थी कि कितना अच्छा होता यदि उसके भाइयों को अब भी सुमति आ जाती और वे राणा से क्षमा-याचना कर लेते।

यदि ऐसा नहीं हुआ, जिसकी पूरी आशंका थी, तब रानी के लिए तो दोनों ओर विनाश ही विनाश था। राणा की विजय होती है तो पितृकुल विनष्ट होता है, और यदि—शम्भु न करें—वनथली विजय होती है तब तो पति की प्रतिष्ठा के साथ सर्वस्व ही समाप्त हो जाता है।

रानी सोच रही थी—कुछ भी हो, राणा को तो विजयी होना ही है। उसके भाई यदि अनीति की राह पर ही आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हों तब उसे भाइयों का मोह भी छोड़ना ही पड़ेगा। बल्कि वह उस मोह को तो छोड़ ही चुकी है, उस मोह को छोड़कर ही तो, वह राणा को उत्साहित करके वनथली ले आई है।

रानी ने राणा से एकान्त में कहा—

"अब मैं वनथली जाती हूँ। एक बार प्रयत्न कर देखूँ, यदि उन्हें मेरी बात स्वीकार हुई तो ठीक अन्यथा आप प्रस्तुत रहें—अनीति के इस गढ़ को गिरा देना है मेरे राणा!"

राणा रानी की स्थिति को समझते थे। उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा—

"जया! मेरी ओर से उनसे कहना कि अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना करने और पाटन की प्रभुता को स्वीकार करने से यह संकट टल जायगा। आखिर वे लोग मेरे भी सम्बन्धी हैं। किन्तु यदि वे अपनी ज़िद पर ही अड़े रहे तब मुझे भी अपनी टेक तो रखनी ही है।"

"हाँ स्वामी! आपकी टेक तो रहेगी ही। उसके लिए मैं अपना सर्वस्व खुशी-खुशी वार सकती हूँ। आप मेरी भावनाओं की चिंता न करें।

सोमनाथ को जो स्वीकार होगा वह तो होकर ही रहना है।"

पालकी में बैठकर, अपने पुत्र वीरमदेव को साथ लेकर रानी जयलता आशा-निराशा के हिंडोले पर झूलती हुई वनथली की ओर चल पड़ी।

तेजपाल और कीर्तिदेव ने गढ़ की ओर एक पालकी को आते हुए देखा। 'बम भोलेनाथ' का एक ऊँचा घोष उन्होंने किया। उत्सुकतावश रानी जयलता ने पालकी का परदा कुछ हटाकर बाहर झांका। एक क्षण की उस झलक में ही तेजपाल ने रानी को पहिचान लिया। परदा फिर गिर गया और पालकी आगे बढ़ गई।

तेजपाल ने कीर्तिदेव से कहा—

"कीर्तिदेव! सावधान! कार्य करने की घड़ी आ पहुँची है। आओ मेरे साथ।"

गुरु और चेला चुपचाप ऊँचे राजगढ़ के पिछवाड़े की ओर खिसक गए। गढ़ के पिछवाड़े का वह हिस्सा निर्जन था और झाड़-झंखाड़ से भरा हुआ था।

रानी जयलता की पालकी जब गढ़ के मुख्य द्वार पर पहुँची तब द्वार बन्द थे। किन्तु पालकी में रानी को देखकर सैनिक ससम्मान शस्त्र झुकाकर एक ओर हट गए और द्वार रक्षकों ने द्वार खोल दिया।

पालकी गढ़ के भीतर प्रविष्ट हो गई।

गढ़ के विशाल और मजबूत द्वार चरमराहट की तेज ध्वनि करते हुए फिर से बन्द कर दिए गए।

रानी जयलता के वनथली आने का समाचार क्षणभर में उस विशाल राजगढ़ में एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया।

रानी अपने पुत्र के साथ सीधी अपने भाई चामुंड और संग्रामसिंह से मिलने चली गईं। उसका चेहरा इस समय अत्यन्त गंभीर था।

बहिन को देखकर दोनों भाई चौंक पड़े। चामुण्ड बोला—

"अरे तू कब आई जयलता? कोई खबर भी नहीं दी। और ऐसी उदास-सी, लुटीपिटी-सी कैसी दीख रही है तू?"

रानी जयलता चुपचाप एक आसन पर वैठ गई। उसने चामुण्ड को वात का एकदम कोई उत्तर नहीं दिया। फिर कुछ क्षण वाद धीरे-से किन्तु दृढ़ स्वर में कहा—

"लुटी-पिटी दीख रही हूँ ? और तुम पूछते हो कि ऐसा क्यों है ? क्या तुम्हें पता नहीं है कि मुझे किसने लूटा है ?"

"मेरी वहिन को लूटने की हिम्मत किसने की है जयलता ! जल्दी वता, मैं उसे कच्चा चवा जाऊँगा।"—चामुण्ड ने कहा।

तिरस्कार भरे स्वर में रानी ने उत्तर दिया—

"वातें वनाने की आवश्यकता नहीं है भाई, और उतना समय भी नहीं है। मुझे लूटने वाला तो मेरे सामने निर्लज्ज होकर वैठा है। उस लुटेरे को अपनी छाती से लगाने वाले तुम हो।"

"अरे, तू वड़ी क्रोधी है वहिन ! छोटी-सी वात का इतना क्या वखेड़ा ? चल, भीतर चल, थकी-माँदी आई होगी, कुछ खा-पीकर विश्राम कर ले।"—चामुण्ड ने टालते हुए कहा—

"मेरे चैन और विश्राम को तो तुम लोगों ने आग लगादी है। मैं कहने आई हूँ कि वह आग तुम लोगों को जलाकर भस्म कर दे उससे पहले ही तुम चेत जाओ तो अच्छा है।"

अव चामुण्ड ने रुख वदलते हुए कहा—

"तू कहना क्या चाहती है जयलता ?"

"कहने आई हूँ कि अपने पाप का प्रायश्चित कर डालो।"

"वह कैसे ?"

"राणा का जो अपमान इस संग्राम ने किया है उसके लिए उनसे क्षमा माँगकर।"

"रहने दे, रहने दे, वड़ी आई क्षमा मँगाने वाली", अव संग्रामसिंह खीसें निपोरते हुए वोला—"क्षमा माँगने वाले कायर वनथली में नहीं रहते।"

"वनथली के वीरों के मस्तक पर तूने कालिख पोत दी है संग्राम !

चल पड़ी।

किन्तु इस बार गढ़ के द्वार खुले नहीं। चामुण्डराज की आज्ञा से रानी जयलता और राजकुमार वीरमदेव को गढ़ में ही रोक लिया गया।

क्रोध से फुफकारती रानी विवश होकर बैठी रह गई। दूर-से उसे संग्रामसिंह का क्रूर अट्टहास सुनाई पड़ा और रानी को किसी अन्तर्प्रेरणा ने बता दिया कि निश्चय ही यह अट्टहास मौत से पहले का एक पागल व्यक्ति का अट्टहास है।

रानी जयलता बहुत थक गई थी, बहुत निराश हो गई थी, बहुत अधिक उत्तेजित हो चुकी थी। उस उत्तेजना के प्रभाव से उसके सिर में एक चक्कर-सा आ गया और वह अचेत होकर पालकी में पीछे की ओर लुढ़क गई।

× × × ×

राणा वीरधवल प्रतीक्षा करते-करते थक गए थे। रानी को वनथली गए बहुत समय हो चुका था। किन्तु वह अवतक लौटकर नहीं आई थी। राणा सोच रहे थे—क्या रानी के भाइयों को सुमति उपज आई है! यह सम्भव तो नहीं दीखता, फिर रानी के लौटने में इतनी देर क्यों?

आशंका, उत्साह और अधीरता से राणा का हृदय बेचैन था। वे अपने ऊँचे, सफेद और पानीदार अश्व उपरवट पर बैठे हुए बार-बार वनथली की ओर दृष्टि दौड़ा-दौड़ाकर देख रहे थे। किन्तु उस दिशा से किसी के आने का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था।

आखिर राणा का धैर्य समाप्त हो गया और उन्होंने अपने अश्व को एड़ लगाई। तेज तुरंग उसी क्षण आँधी की तरह वनथली की ओर दौड़ पड़ा।

गुजरात की जय का गगनभेदी घोष उठाते हुए गुर्जर-सैन्य राणा के पीछे-पीछे तेज़ी से चल पड़ा।

राजगढ के सामने पहुँचकर सिंह-द्वार से लगभग पचास गज की दूरी पर राणा ने अपने अश्व को रोक लिया। आक्रमण से पूर्व वे परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए ठहर गए थे। गुजरात का सैन्य अपने राणा के पीछे मोर्चा बांधकर सन्नद्ध होकर खड़ा हो गया।

गढ की प्राचीर पर खडे रक्षको ने दूर से ही गुर्जर-सैन्य को उफनते हुए समुद्र की भांति आगे बढ़ते हुए देखा। एक रक्षक दौडता हुआ चामुण्डराज के पास गया और उन्हे खोजकर बोला—

"महाराज ! गुजरात की सेना आ पहुँची। स्वय राणा वीरधवल उस सेना का नेतृत्व कर रहे हैं। अपने ऊँचे अश्व पर बैठे हुए वे इन्द्र के समान दिखाई दे रहे हैं......।"

"बकवास बन्द कर। गढ के तमाम द्वार और खिड़कियाँ मजबूती से बन्द रहे। प्राचीर पर धनुषधारी सैनिको की टुकड़ी तैयार रहे। मैं आता हूँ। भाग यहाँ से।"

चामुण्डराज ने घबराते हुए रक्षक को यह आदेश दिया और सग्रामसिंह के साथ वह रानी जयलता के पास पहुँचा। रानी से उसने कहा—

"राणा चढ आए है। वे इतनी जल्दी आ पहुँचेंगे इसकी कल्पना भी नही थी। अब तो तू ही इस युद्ध को टाल सकती है।"

रानी ने उपेक्षा से अपने भाइयो की ओर देखा और कहा—

"युद्ध टालने की घडी तो जा चुकी। अब अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए तुम तैयार रहो। मुझसे क्या कहने आए हो ?"

"जयलता, अब अधिक बात करने का समय नही है। उठ जल्दी और हमारे साथ गढ के द्वार पर चल।"

"क्यो ?"

"वहाँ से राणा को कह कि वे चुपचाप लौट जाँय।"

"मैं नहीं जाऊँगी, मैं नही कहूँगी।"

"नही कहेगी तो अपने लडके से हाथ धो बैठेगी।"—कहते हुए सग्रामसिंह ने वीरमदेव की गर्दन दबोच ली। अबोध बालक चीत्कार

उठा। रानी के हृदय पर जैसे वज्र का आघात हुआ। उसने देखा कि उसके नीच भाई अधम से अधम कृत्य करने से भी बाज नहीं आएँगे। उसका माता का हृदय भीतर ही भीतर हाहाकार कर उठा।

चामुण्डराज ने अपनी वहिन का हाथ पकड़कर उसे घसीटते हुए कहा—

"एक क्षण की भी देर नहीं करने दूँगा। राणा से चलकर कह कि वे चुपचाप लौट जाँय वरना वे अपने पुत्र और अपनी पत्नी से हाथ धो वैठेंगे।"

दोनों भाई अपनी विवश, अवला वहिन को घसीटते हुए गढ़ के द्वार की ओर ले चले। संग्रामसिंह के दूसरे हाथ में वीरमदेव लटका हुआ था।

रानी जयलता के हृदय में तूफान उठ खड़ा हुआ था। उसे अपने प्राणों की तनिक भी चिन्ता नहीं थी किन्तु पुत्र? कौनसी वह माता है जो अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र की निर्दयतापूर्वक हत्या की जाती हुई देख सकती हो? एक ओर पुत्र की ममता और दूसरी ओर पति की प्रतिष्ठा दो पाटों में पिसकर उसका कोमल हृदय विदीर्ण हो रहा था।

गढ़ के मुख्य द्वार के ऊपर एक अँधेरी-सी कोठरी थी। जिसमें से एक छोटी खिड़की वाहर की ओर खुलती थी। चामुण्ड और संग्राम अपनी वहिन को घसीटकर वहीं ले गए। खिड़की में-से वाहर झाँककर उन्होंने देखा—राणा वीरधवल अपने अश्व को वड़ी कठिनाई से रोके हुए द्वार की ओर ही दृष्टि गड़ाए हुए थे।

चामुण्ड और संग्राम ने रानी जयलता और उसके पुत्र को अपने वीच में लेकर उस खिड़की में-से वाहर देखा। चामुण्ड ने जोर से पुकारकर राणा से कहा—

"राणा वीरधवल! वनथली जीत लेना आसान नहीं है। ख़वरदार, यदि आक्रमण किया तो अपने पुत्र और पत्नी की लाश पर से तुमको गुजरना होगा!"

राणा यह देख और सुनकर अवाक् रह गए! पत्थर की तरह जड़

होकर फटी-फटी-सी आँखो से वे अपनी पत्नी और पुत्र को देखते रह गए। हे भगवान् ! हे शम्भु ! क्या कोई मनुष्य इतना अधम इतना नीच, इतना पातकी भी हो सकता है ? यह कैसी भयकर भूल उनसे हो गई ? क्या सोचकर उन्होंने रानी को गढ मे जाने दिया ? ये हत्यारे तो मेरे अबोध, भोले वीरम के प्राण ही लिए ले रहे हैं और रानी की हत्या भी वे अवश्य कर ही देंगे।

राणा वीरधवल की देह मे एक पिता का हृदय था जो चीत्कार कर उठा ! एक पति का हृदय था जिस पर वज्राघात होता हुआ प्रतीत हुआ !

किन्तु राणा वीरधवल की देह मे पवित्र और उज्ज्वल क्षत्रियकुल का अभिजात रक्त भी था, जो खौल उठा था !

राणा वीरधवल कुछ क्षण हतप्रभ-से होकर निश्चय-अनिश्चय के थपेड़ो मे भूल उठे थे कि ऊँचे द्वार के ऊपर की उस खिडकी मे-से अपनी पूरी शक्ति के साथ पुकारकर सोरठी राजपूतनी गरज उठी—

"वाघेला ! तुम्हे भगवान् सोमनाथ की सौगन्ध, राजपूती आन की शपथ, एक कदम भी पीछे नही हटाना ! आगे बढो, मेरे और वीरम के प्राणो की चिन्ता करके यदि पीछे हटे तो महारथी राणा लवणप्रसाद का वश कलकित हो जायगा। मेरा अन्तिम प्रणाम ! मेरे राणा ! मेरे वीर बाघेला ! आगे बढो ··· आगे बढो ······आगे·······!"

चामुण्ड और सग्राम ने रानी को पीछे खीच लिया और उसकी आवाज अन्धकार मे धीरे-धीरे विलुप्त होती चली गई।

कोठरी के द्वार पर खडे हुए दो सैनिको को चामुण्ड ने रानी और वीरम को सौंपते हुए कहा—

"ले जाओ इन्हे, पश्चिम वाले अन्धकूप मे ऊपर से ही धकेल दो। जा ऽऽ ओ !"

सैनिक रानी और राजकुमार को घसीटते हुए ले चले। चामुण्ड और सग्राम दूसरे मार्ग से बाहर निकल गए।

उस अन्धेरी कोठरी के दो अन्धेरे कोनो मे-से दो छायायें निकली

और उन सैनिकों पर झपट पड़ीं।

दूसरे ही क्षण वे दोनों सोरठी सैनिक हवा में उड़ते हुए गढ़ की ऊँची प्राचीर से बाहर जाने किस लोक की यात्रा के लिए चल पड़े।

उस पुराने गढ़ में चारों तरफ उड़ते हुए किसी चमगादड़ को भी खबर नहीं लगी कि उन दो सोरठी सैनिकों का क्या हुआ और रानी जयलता और वीरमदेव कहाँ गए।

राणा वीरधवल स्वप्नाविष्ट-से थे। उन्होंने देखा था केवल सिंहनी की तरह दर्प से ललकारता हुआ अपनी रानी का मुख और गौरव से गरजता हुआ उसका स्वर—तुम्हें भगवान् सोमनाथ की सौगन्ध! राजपूती आन की शपथ! महारथी राणा लवणप्रसाद का वंश कलंकित हो जायगा······आगे बढ़ो, मेरे राणा! आगे बढ़ो, मेरे बाघेला! आगे·········

—और बाघेला ने अपने अश्व को एड़ लगाई। उपरवट सिंह की तरह उछलकर वनथली दुर्ग के विशाल द्वार पर जा चढ़ा। उसके आगे के पैर की प्रचंड टाप से सारा दुर्ग गूँज उठा।

राणा को आगे बढ़ता देखकर दुर्निवार गुर्जर-सैन्य दुर्ग के फाटक को तोड़कर भीतर धँस जाने के लिए किसी उफ़नते हुए समुद्र की तरह गरजकर आगे बढ़ गया।

दुर्ग के द्वार पर घमासान मच गया। प्राचीर के ऊपर सन्नद्ध खड़े हुए सोरठी-सैनिकों ने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। आगे बढ़ते हुए गुर्जर-सैन्य के सैकड़ों योद्धा बाणों और बड़ी-बड़ी शिलाओं की मार से धराशायी होने लगे।

राणा वीरधवल ने ललकारते हुए कहा—

"जान हथेली पर लेकर चलने वाले वीर गुर्जर सूरमाओ! आगे बढ़ो!"

'गुजरात की जय' और 'राणा वीरधवल की जय' का प्रचण्ड घोष उठाता हुआ गुर्जर-सैन्य तीरों और शिलाओं की तनिक भी चिन्ता न

करते हुए गढ के द्वार से टकराने लगा। घडी भर के भीषण संघर्ष के बाद फाटक चरमराकर गिर गया और राणा वीरधवल ने अपनी सेना के साथ दुर्ग मे प्रवेश किया।

दुर्ग के मुख्य द्वार के भीतर विशाल मैदान था। उस मैदान मे सोरठी सैनिक—मोर्चा बाँधे हुए खडे थे। ज्योही राणा वीरधवल अपने सैन्य का नेतृत्व करते हुए दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुए, वहाँ एकत्र सोरठी सेना भी टूट पडी।

शस्त्रो की खडखडाहट और घायल सैनिको की चीत्कार से वनथली का आकाश गूँज उठा।

तेजपाल और कीर्तिदेव ने जब रानी जयलता को पालकी मे बैठकर दुर्ग मे जाते देखा था तब वे चौकन्ने होकर दुर्ग के पिछवाडे जा पहुँचे थे। अब उनके सामने समस्या थी किसी प्रकार दुर्ग मे प्रवेश करने की। दुर्ग की प्राचीर ऊँची थी और उस पर रक्षको का पहरा भी था। उस ऊँची प्राचीर पर चढकर रक्षको से बचकर दुर्ग मे घुस जाना टेढी खीर थी।

एक एकान्त और सघन ऊबडखावड स्थल पर पहुँचकर तेजपाल रुक गया और उसने कीर्तिदेव से कहा—

"कीर्तिदेव! आज तेरी परीक्षा है। गुरुदेव के आश्रम मे छात्रावस्था मे तो तूने बडी उछलकूद मचाई थी, लेकिन आज अपना जौहर बता तो जानूँ!"

कीर्तिदेव ने तेजपाल की बात का कोई उत्तर नही दिया। वह बडे ध्यान से उस स्थल पर दुर्ग की ऊँचाई का माप ले रहा था और किसी ऐसी चट्टान की खोज मे लगा था जिस पर चढकर वह अपनी कलाबाजी दिखा सकता। एक जगह पर उसे एक चट्टान अन्य चट्टानो से काफी ऊँची उठी हुई दिखाई पडी और वह आस-पास के वृक्षो का सहारा लेते हुए उस पर पहुँच गया। तेजपाल भी उसके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचा।

उस ऊँची चट्टान पर चढकर बडी कठिनाई से अपना सन्तुलन

और उन सैनिकों पर झपट पड़ीं।

दूसरे ही क्षण वे दोनों सोरठी सैनिक हवा में उड़ते हुए गढ़ की ऊँची प्राचीर से बाहर जाने किस लोक की यात्रा के लिए चल पड़े।

उस पुराने गढ़ में चारों तरफ उड़ते हुए किसी चमगादड़ को भी खबर नहीं लगी कि उन दो सोरठी सैनिकों का क्या हुआ और रानी जयलता और वीरमदेव कहाँ गए।

राणा वीरधवल स्वप्नाविष्ट-से थे। उन्होंने देखा था केवल सिंहनी की तरह दर्प से ललकारता हुआ अपनी रानी का मुख और गौरव से गरजता हुआ उसका स्वर—तुम्हें भगवान् सोमनाथ की सौगन्ध! राजपूती आन की शपथ! महारथी राणा लवणप्रसाद का वंश कलंकित हो जायगा······आगे बढ़ो, मेरे राणा! आगे बढ़ो, मेरे बाघेला! आगे·········

—और बाघेला ने अपने अश्व को एड़ लगाई। उपरवट सिंह की तरह उछलकर वनथली दुर्ग के विशाल द्वार पर जा चढ़ा। उसके आगे के पैर की प्रचंड टाप से सारा दुर्ग गूँज उठा।

राणा को आगे बढ़ता देखकर दुर्निवार गुर्जर-सैन्य दुर्ग के फाटक को तोड़कर भीतर धँस जाने के लिए किसी उफ़नते हुए समुद्र की तरह गरजकर आगे बढ़ गया।

दुर्ग के द्वार पर घमासान मच गया। प्राचीर के ऊपर सन्नद्ध खड़े हुए सोरठी-सैनिकों ने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। आगे बढ़ते हुए गुर्जर-सैन्य के सैकड़ों योद्धा बाणों और बड़ी-बड़ी शिलाओं की मार से धराशायी होने लगे।

राणा वीरधवल ने ललकारते हुए कहा—

"जान हथेली पर लेकर चलने वाले वीर गुर्जर सूरमाओ! आगे बढ़ो!"

'गुजरात की जय' और 'राणा वीरधवल की जय' का प्रचण्ड घोष उठाता हुआ गुर्जर-सैन्य तीरों और शिलाओं की तनिक भी चिन्ता न

करते हुए गढ के द्वार से टकराने लगा । घडी भर के भीषण संघर्ष के बाद फाटक चरमराकर गिर गया और राणा वीरधवल ने अपनी सेना के साथ दुर्ग मे प्रवेश किया ।

दुर्ग के मुख्य द्वार के भीतर विशाल मैदान था । उस मैदान मे सोरठी सैनिक—मोर्चा बाँधे हुए खडे थे । ज्योही राणा वीरधवल अपने सैन्य का नेतृत्व करते हुए दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुए, वहाँ एकत्र सोरठी सेना भी टूट पडी ।

शस्त्रो की खडखडाहट और घायल सैनिको की चीत्कार से वनथली का आकाश गूँज उठा ।

तेजपाल और कीर्तिदेव ने जब रानी जयलता को पालकी मे बैठकर दुर्ग मे जाते देखा था तब वे चौकन्ने होकर दुर्ग के पिछवाडे जा पहुँचे थे । अब उनके सामने समस्या थी किसी प्रकार दुर्ग म प्रवेश करने की । दुर्ग की प्राचीर ऊँची थी और उस पर रक्षको का पहरा भी था । उस ऊँची प्राचीर पर चढकर रक्षको से बचकर दुर्ग मे घुस जाना टेढी खीर थी ।

एक एकान्त और सघन ऊबडखाबड स्थल पर पहुँचकर तेजपाल रुक गया और उसने कीर्तिदेव से कहा—

"कीर्तिदेव ! आज तेरी परीक्षा है । गुरुदेव के आश्रम मे छात्रावस्था मे तो तूने बडी उछलकूद मचाई थी, लेकिन आज अपना जौहर बता तो जानूँ !"

कीर्तिदेव ने तेजपाल की बात का कोई उत्तर नही दिया । वह बडे ध्यान से उस स्थल पर दुर्ग की ऊँचाई का माप ले रहा था और किसी ऐसी चट्टान की खोज मे लगा था जिस पर चढकर वह अपनी कलाबाजी दिखा सकता । एक जगह पर उसे एक चट्टान अन्य चट्टानो से काफी ऊँची उठी हुई दिखाई पडी और वह आस-पास के वृक्षो का सहारा लेते हुए उस पर पहुँच गया । तेजपाल भी उसके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचा ।

उस ऊँची चट्टान पर चढकर बडी कठिनाई से अपना सन्तुलन

बनाए रखकर कीर्तिदेव ने एक बार ऊपर गढ़ की प्राचीर के कंगूरे को देखा और चुपचाप अपनी तलवार उसने तेजपाल को थमा दी। कटार उसकी छाती से लगी हुई ही थी। एक रस्सी भी उसकी कमर में लिपटी हुई थी।

कीर्तिदेव ने कहा—

"जाता हूँ, तेजपाल ! कंगूरे में बना हुआ वह छिद्र यदि मेरे हाथ की एक अँगुली में भी आ गया तो फिर चिन्ता नहीं, वरना विदा समझना !"

"सावधान, कीर्तिदेव ! नीचे गहरा खड्ड है, चूके तो हड्डी-पसली का भी पता नहीं लगेगा। भगवान् सोमनाथ तुम्हारी सहायता करें !"

अगले ही क्षण कीर्तिदेव सन्तुलन साधकर चीते की तरह उछला। तेजपाल दम साधे हुए हवा में उड़ते हुए कीर्तिदेव को देखता रह गया। लेकिन कीर्तिदेव तो यह उछला, वह उड़ा और पलभर में प्राचीर के कंगूरे से छिपकली की तरह जा चिपका। उसे दीवाल से चिपका हुआ देखकर तेजपाल की जान-में-जान आई और वह खुशी से चिल्ला पड़ा—

"शाबाश ! कीर्तिदेव ! शाबाश मेरे शेर ! मीर मार लिया। अब सावधान, प्राचीर पर रक्षक होगा। होशियारी से बढ़ना।"

कीर्तिदेव ने अपने आप को सम्हाला। हाथों और पंजों के बल धीरे-धीरे ऊपर खिसककर वह प्राचीर पर पूरी तरह जा चढ़ा। फिर उसने धीरे-से अपना सिर भीतर डालकर झाँका। एक सोरठी सैनिक प्राचीर पर चक्कर मारता हुआ उसी की तरफ आ रहा था। कीर्तिदेव फिर दुबक गया।

सैनिक के पैरों की चाप कीर्तिदेव की ओर बढ़ती आई। कीर्तिदेव साँस रोके हुए कंगूरे के पीछे चिपका हुआ था। सैनिक उसे देख नहीं पाया और पहरा लगाता हुआ आगे बढ़ गया।

सैनिक दो ही कदम आगे बढ़ा था कि कीर्तिदेव कंगूरे के पीछे से आहिस्ते-से निकलकर उस सैनिक पर पीछे की ओर से इस तरह झपट पड़ा

जैसे बिल्ली कबूतर पर झपटती है। एक हाथ से कीर्तिदेव ने उस सोरठी-सैनिक का गला दबोचा और दूसरे हाथ ने अपनी पैनी कटार उसके पेट में भोंक दी।

यह सारा कार्य इस तेज़ी के साथ हुआ कि उस बेचारे सैनिक को जीवन और मरण का कोई भेद समझ में नहीं आ सका। एक हलकी, बहुत हलकी आह निकालकर वह क्षण भर में वहीं ढेर हो गया।

कीर्तिदेव ने अब शीघ्रता से अपनी कमर से बँधी हुई रस्सी खोली और उस दुर्ग की प्राचीर के नीचे लटकाते हुए तेजपाल से कहा—

"जल्दी, तेजपाल! सावधानी से। और सोरठी सैनिक आ सकते हैं।"

तेजपाल फुर्ती से रस्सी के सहारे प्राचीर पर जा चढ़ा। ऊपर पहुँचकर उसने कीर्तिदेव से कहा—

"कमाल कर दिया तूने जंगली बन्दर? यह तेरे बस की ही बात थी। अब जल्दी कर, इस सैनिक के वस्त्र उतारकर तू पहन ले।"

"और तुम?"

"अभी दूसरा शिकार खोजे लेते हैं। अब क्या चिन्ता है? जल्दी कर, जल्दी।"

उस सैनिक के वस्त्र उतारकर कीर्तिदेव ने पहन लिए और वह सोरठी सैनिक बन गया। सैनिक के शव को दुर्ग के बाहर गहरे खड्ड में फेंक दिया गया।

उसके बाद तो सारा कार्य बहुत आसान हो गया। दुर्ग में कीर्तिदेव और तेजपाल की जोड़ी पहुँच चुकी थी। कुछ ही देर में एक दूसरे सोरठी सैनिक को खोजकर उसे अपने पहले वाले साथी की खोज-खबर लेने के लिए भेज दिया गया और अब तेजपाल भी सोरठी सैनिक बन गया।

सावधानी से आगे बढ़ते हुए तेजपाल और कीर्तिदेव दुर्ग के सिंह-

द्वार की उस अँधेरी कोठरी में जा पहुँचे थे जहाँ चामुण्ड और संग्राम रानी जयलता और वीरमदेव के साथ खड़े थे।

रानी जयलता और कुँवर वीरमदेव को सुरक्षित स्थान पर छोड़कर तेजपाल और कीर्तिदेव दुर्ग के उस विशाल मैदान में उतर गए जहाँ अभीं-अभी द्वार तोड़कर गुजरात का सैन्य भीतर धँस आया था। कोई जान न सके इतनी सावधानी के साथ वे दोनों राणा वीरधवल के दाएँ-बाएँ होकर अपनी तलवारें हवा में ही भाँजने लगे। उन्होंने युद्ध में एक भी सोरठी सैनिक को मारा नहीं, केवल अपना बचाव चतुराई के साथ गुर्जर-सैनिकों से करते रहे, क्योंकि वे सोरठी सैनिकों के वेश में थे और उन्हें कोई पहिचान नहीं सकता था।

राणा वीरधवल का पराक्रम आज देखने योग्य था। महारथी लवणप्रसाद का सारा शौर्य उनकी भुजाओं में उतर आया था और उन्हें देखने पर ऐसा लगता था जैसे स्वयं महामण्डलेश्वर फिर से युवा होकर समरभूमि में उतर आए हों। राणा वीरधवल शत्रु-सेना में जिस तरफ आगे बढ़ जाते वहाँ उनकी तलवार से सैकड़ों बिजलियाँ बरसकर लाशों के ढेर-पर-ढेर लगा देती।

रानी जयलता और वीरमदेव के जीवन से निराश वीर राणा उन्मत्त होकर युद्ध कर रहे थे। आज उनके खड्ग के अचूक प्रहारों से ध्वस्त होते जा रहे सोरठी-सैन्य का उनके सामने युद्ध में टिक पाना असम्भव था। युद्ध करते-करते राणा की आँखें चामुण्डराज और संग्रामसिंह को खोज रही थीं। अपनी रानी और कुँवर की जघन्य हत्या का बदला उन्हें उनसे लेना था।

सोरठी भी बाँके लड़ाके थे। उन्होंने भी गुर्जर-सैन्य से जमकर लोहा लिया। किन्तु राणा वीरधवल के पराक्रम और सत्य के पक्ष की ओर से लड़ते हुए गुर्जर-सैनिकों के सामने उनके पाँव धीरे-धीरे उखड़ रहे थे।

उसी समय सैकड़ों सोरठी-सैनिकों की भीड़ के साथ चामुण्डराज

और सग्रामसिंह राणा वीरधवल की ओर बढ़ते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखकर राणा की आंखों से अगार बरसने लगे। उन्होंने अपने अश्व को एड लगाई और वे उस भीड़ में घुस पड़े।

तेजपाल और कीर्तिदेव छाया की तरह राणा के आसपास लगे हुए थे। तेजपाल ने कीर्तिदेव को आंखों से संकेत करके सावधान रहने की सूचना दी।

चामुण्डराज और सग्रामसिंह ने अपने सैनिकों सहित एक साथ राणा पर आक्रमण किया। राणा उस सारी भीड़ से अकेले ही जूझ पड़े। पहले चामुण्डराज की बारी आई। राणा सोरठी-सैनिकों को काई की तरह काटते हुए चामुण्डराज के सामने पहुँच गए। उन्होंने कहा—

"ले, हत्यारे! अपने पाप का फल मेरे हाथों से प्राप्त करले। यदि ईश्वर के राज्य में कहीं न्याय है तो तुझे अनन्तकाल तक नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा।"

और यह कहने के साथ ही राणा ने अपने विशाल खड्ग से एक प्रचण्ड वार किया। वह प्रहार अचूक था, चामुण्डराज का मस्तक धड़ से अलग होकर धूल में जा गिरा।

जिस समय राणा वीरधवल चामुण्डराज के साथ द्वन्द्व में उलझे हुए थे, उस समय उनके पीछे की ओर जाकर सग्रामसिंह ने अपना भाला तानकर राणा की पीठ का लक्ष्य लेकर प्रहार किया। निशाना सीधा था, राणा बेखबर थे, रक्षा का कोई उपाय नहीं था।

किन्तु सग्रामसिंह का भाला राणा की पीठ को छेदकर आर-पार नहीं जा सका। अपने लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व ही एक तलवार ने बिजली की तेजी से लहराकर उस भाले को ठीक बीच में से काट दिया।

और दूसरे क्षण तो राणा वीरधवल चामुण्डराज का हिसाब निबटाकर पीछे की ओर पलटे और उन्होंने अपनी तलवार के एक

ही अचूक वार से संग्रामसिंह को सिर से लेकर कमर तक बीच में-से चीर डाला।

युद्धभूमि में किसी योद्धा पर पीछे से प्रहार करने वाले कायर संग्रामसिंह का शरीर दो हिस्सों में कटकर नीचे गिरा और धूल में ढेर हो गया।

इसी के साथ सोरठ की भूमि पर लड़ा गया वह भीषण युद्ध समाप्त हो गया। चामुण्डराज और संग्रामसिंह को समाप्त हुआ देखकर सोरठी-सैनिकों ने अपने शस्त्र नीचे रख दिए और अपने प्राणों की भिक्षा माँगते हुए वे पुकार उठे—'राणा वीरधवल की जय!' 'महाराज भीमदेव की जय!'

***

तेजपाल का भूत

वनथली के राज-प्रासाद मे राज-सभा-भवन में राणा वीरधवल सिंहासन पर आसीन थे। सोरठ के अनेक छोटे-मोटे सामन्त-सरदार उनके सामने सम्मान सहित सिर झुकाए हुए खडे थे। वनथली के पतन के साथ ही सोरठ के अन्य शासको ने भी राणा के पास संधि के संदेश भिजवा दिए थे और उन्होंने गुजरात के माडलिक राजाओ की तरह रहकर पाटन के स्वामी को अपना राजाधिराज स्वीकार कर लिया था। इन शासको के दूत अपने-अपने स्थान से वनथली की ओर राणा वीरधवल की सेवा मे पहुँचने के लिए चल पडे थे और इस समय मार्ग मे थे।

राणा वीरधवल अपने अद्वितीय पराक्रम से विजयी अवश्य हुए थे किन्तु रानी जयलता और वीरमदेव को खो देने के कारण इस समय उनके हृदय मे भीतर ही भीतर एक तूफान-सा उठ रहा था। इस तूफान को उन्होंने अपने हृदय मे ही शक्ति के साथ दबा रखा था और राजसभा

में सैकड़ों लोगों के सम्मुख वे अपने पूरे क्षत्रियोचित दर्प और साहस के साथ विराजमान थे।

राणा के मस्तिष्क में इस समय एक ही विचार था—राजा को अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख से ऊपर उठकर अपने राज-धर्म का निर्वाह करना चाहिए। और इस राज-धर्म का, इस क्षत्रिय-धर्म का उन्होंने पूरा-पूरा निर्वाह किया था। उनके स्थान यर यदि कोई और दुर्बल हृदय वाला व्यक्ति होता तो संभव था कि पत्नी और पुत्र के मोह में पड़कर वह पीछे लौट जाता। किन्तु राणा वीरधवल वाघेला राणा लवणप्रसाद के पुत्र थे। वे वड़े-से-वड़े मोह का भी त्याग कर सकते थे किन्तु पीछे नहीं हट सकते थे।

कुछ खोए-खोए से राणा वीरधवल राजसभा में वैठे थे कि महल के भीतरी भाग में-से एक द्वार से निकलकर तेजपाल रानी जयलता और कुँवर वीरमदेव के साथ सभा-भवन में प्रविष्ट हुए।

राणा वीरधवल ने उन्हें देखा और विस्मय से उनकी आँखें कुछ फैल गईं। एक क्षण के लिए तो उन्हें यह विश्वास ही नहीं हुआ कि वे जो कुछ देख रहे हैं वह, सत्य है। वे सोच रहे थे कि यह तेजपाल है या तेजपाल का भूत ? किन्तु जब तेजपाल ने मुस्कराते हुए राणा के समीप आकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'राणा वीरधवल की जय' तब उन्हें विश्वास हो गया कि वे कोई सपना नहीं देख रहे हैं।

किन्तु दृढ़ राणा ने कोई अधीरता प्रगट नहीं की। शान्त स्वर में उन्होंने तेजपाल से इतना ही पूछा—

"तेजपाल, तुम यहाँ ?"

तेजपाल ने सिर झुकाकर एक बार पुनः राणा को नमन किया और बहुत धीमे स्वर में उत्तर दिया—

"हाँ राजन् ! आपका सेवक कुछ समय से यहाँ वनथली में ही है। शेष फिर।"

राणा ने संकेत को समझा और सभा के सम्मुख तेजपाल से और

कोई प्रश्न नही किया।

मन्द-मन्द, रहस्यपूर्ण मुस्कराहट बिखेरती हुई रानी जयलता अपने कुँवर को गोद मे लेकर राणा के समीप ही एक रिक्त आसन पर बैठ गई। बीच-बीच मे वह तिरछी निगाह से राणा को ताक लेती थी। उस चपल चितवन मे अपने पराक्रमी पति के लिए जो प्रशसा, आदर और प्रेम का भाव था उसे देखकर राणा को अन्तत शान्ति और सन्तुष्टि का अनुभव हुआ।

रानी चाहती थी कि उसके पति का पराक्रम युद्ध मे प्रगट हो और उसे एक वीर क्षत्रिय की पत्नी होने का गौरव प्राप्त हो। वह हो चुका था।

अब केवल एक ही बात शेष रह गई थी कि राणा के वीरत्व का गान गुजरात के घर-घर मे हो। ऐसा तभी सभव हो सकता था जबकि किसी कवि के काव्य मे राणा अपने वीरत्व के बल पर विराजमान हो सकते।

रानी की इस शेष रह गई इच्छा की पूर्ति का समय भी आ गया—राजसभा मे उपस्थित एक अत्यन्त वयोवृद्ध सोरठी चारण ने उठकर अपने काव्य का पाठ किया—

'जीतउ छहिं जणेहिं, साभलि समरह वाजिए।'

(अरे लोगो सुनो! समरागण का अद्भुत खेल छह जनो ने जीता)

वृद्ध चारण ने अपने इस छन्द के इस पूर्वार्ध का पाठ बराबर गरज-गरजकर उस राजसभा म किया किन्तु उत्तरार्ध वह नही बोला। लोगो की उत्सुकता यह जानने के लिए सीमा पर पहुँच गई कि वे छह व्यक्ति कौन-कौन है जिन्होने युद्ध जीता?

किन्तु जीर्ण काया, दुहरी कमर और सफेद बालो वाले उस वृद्ध कवि ने छन्द के उत्तरार्ध का पाठ नही किया।

रानी जयलता ने अधीर होकर कहा—

"चारणराज! छन्द के उत्तरार्ध का पाठ करिए न!"

वृद्ध चारण ने अपना शीष फर्श तक झुकाते हुए कहा—

"रानी ! आज तो छन्द की यह एक ही पंक्ति बन पाई है। उत्तरार्ध कल राजसभा में सुनाऊँगा ।"

उस दिन की राजसभा भंग हुई।

एकांत मिलने पर राणा वीरधवल ने तेजपाल से कहा—

"क्यों तेजपाल, अब बोलो, तुम यहाँ कैसे पहुँचे ? तुम तो चन्द्रावती गए थे न ?"

"राणाजी ! रुष्ट न हों, मैं चन्द्रावती नहीं गया। चन्द्रावती के मार्ग पर कुछ दूर तक जाकर मैं तो सीधा वनथली चला आया था।"

"क्यों ? मैंने कहा था न कि मेरे साथ कोई वनथली नहीं आएगा?"

"किन्तु राजन् ! मैं तो पाटन में महाराज से मिला तो यह जान कर कि आप अकेले वनथली पर चढ़ रहे हैं वे तो आगबबूला हो गए और जब मैंने आपकी आज्ञा की बात उन्हें बताई तो इस वृद्ध और रुग्ण अवस्था में भी वे स्वयं वनथली आने के लिए प्रस्तुत हो गए। ऐसी स्थिति में मेरे लिए यहाँ आने के अतिरिक्त मार्ग ही क्या बचा था ?"

"हूँ ! मैं जानता था कि तुम दोनों भाई मुझसे ईर्ष्या करते हो। विजय का यश बँटाए बिना मानने वाले तुम हो ही नहीं।"

"नहीं राजन् ! इस यश में कोई हिस्सा मैंने नहीं बँटाया है। आपके चरणों की शपथ, मैंने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया। केवल एक कायर व्यक्ति एक वीर पुरुष की पीठ पर पीछे से वार कर रहा था, उसे मैंने काट दिया था। सोरठ-विजय की सारी कीर्ति आपकी है और इसे सारा गुजरात जान जायगा।"

"अच्छा-अच्छा अब बातें रहने दो। चलो, यह बताओ कि तुमने रानी और कुँवर की रक्षा कैसे की ? तुम गढ़ में कब और कैसे पहुँचे?"

तब तेजपाल ने आरम्भ से अन्त तक सारी घटनाएँ राणा वीरधवल को बताईं। सुनकर राणा ने एक प्रशंसा और कृतज्ञता की दृष्टि तेजपाल पर डालते हुए कहा—

"तेजपाल ! राणा लवणप्रसाद का वंश तुम दोनों भाइयों का सदा कृतज्ञ रहेगा।"

"ऐसी बात न कहे राजन् ! हम तो सेवक हैं। और आप गुजरात की आत्मा के प्रतीक हैं। आपकी सेवा हम अपने गुजरात की सेवा समझते है।"

दूसरे दिन राज-सभा फिर जुड़ी। सभी उपस्थित व्यक्ति यह जानने के लिए उत्सुक थे कि चारणराज समर मे विजय प्राप्त करने का यश किन छह व्यक्तियों को देते हैं ! वीरो की पंक्ति मे अपना अपना नाम गिनाए जाने की लालसा सभी को थी। बहुत से सामन्त-सूरमाओं ने तो रात्रि मे चारणराज से मिलकर उन्हें अनेक उपहार और भेंटें भी दी थी कि वे अपने काव्य मे उनका नाम जोड़ दें। चारणराज ने चुपचाप उन भेंटों को स्वीकार भी कर लिया था।

आखिर चारणराज आए। राणा की आज्ञा से उन्होंने अपना काव्य-भरी राज-सभा मे सुनाया—

"जीतउ छहिं जणेहिं, साभलि समरह वाजिए।"

दो-एक बार उन्होंने इसी पंक्ति को दुहराया। सब लोग सांस रोक-रोककर आगे की पंक्ति सुनने के लिए प्रस्तुत हो गए। वृद्ध चारणराज ने आगे कहा—

"तिहुँ भुजि वीरतणेहिं, चिहुँ पगी उपरवट तणे॥"

(अरे लोगो सुनो ! समरांगण का अद्भुत खेल छह जनों ने जीता। वीरधवल की दो भुजाओ ने, तथा उनके अश्व के उपरवट के चार पैरों ने)

सभा-भवन बार-बार राणा वीरधवल की जय के घोष से गूँज उठा। और वह जयघोष धीरे-धीरे, एक मुख से दूसरे मुख तक जाता हुआ सारे गुजरात मे फैल गया।

नहीं, रणबांकुरे गुर्जर सैनिकों के द्वारा वर्षा बाद उठाया गया अपने गुजरात की जय का यह प्रचण्ड घोष गुजरात की सीमा पार करके मारवाड़, मालवा, दिल्ली और महाराष्ट्र के आकाश मे भी गूँज उठा।

***

लहँगा और ओढ़नी

विचित्र थे वस्तुपाल। उनकी प्रतिभा किस-किस दिशा में कार्य करती थी इसका कोई अनुमान नहीं था। गिरे हुए गुजरात के अमात्य को राज्य की खटपट में दिन-रात उलझे रहना होता था। प्रत्येक घड़ी उन्हें चिन्ता रखनी होती थी कि गुजरात की सोई हुई शक्ति जागृत हो और गुजरात के शत्रु एक-एक करके अस्त होते चले जाएँ।

यह चिन्ता अमात्य ने पूरी तरह से रखी थी। किन्तु इतना होते हुए भी वे साहित्य-सृजन के लिए समय कहाँ से निकाल लेते थे यह कोई नहीं कह सकता। इन दिनों वे अपना प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'नरनारायणमहाकाव्य' लिख रहे थे और घंटों कवियों और पण्डितों के साथ व्यतीत करते थे। सारे भारतवर्ष से वस्तुपाल की कीर्ति को सुनकर विद्वान्-कवि धोलके आते रहते थे और उस मंडली में वस्तुपाल 'वसन्तपाल' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

लहँगा और ओढ़नी

विचित्र थे वस्तुपाल। उनकी प्रतिभा किस-किस दिशा में कार्य क
थी इसका कोई अनुमान नहीं था। गिरे हुए गुजरात के अमात्य
राज्य की खटपट में दिन-रात उलझे रहना होता था। प्रत्येक घड़ी
चिन्ता रखनी होती थी कि गुजरात की सोई हुई शक्ति जागृत हो
गुजरात के शत्रु एक-एक करके अस्त होते चले जाएँ।

यह चिन्ता अमात्य ने पूरी तरह से रखी थी। किन्तु इतना
हुए भी वे साहित्य-सृजन के लिए समय कहाँ से निकाल लेते थे
कोई नहीं कह सकता। इन दिनों वे अपना प्रसिद्ध काव्य-
'नरनारायणमहाकाव्य' लिख रहे थे और घंटों कवियों और पण्डित
साथ व्यतीत करते थे। सारे भारतवर्ष से वस्तुपाल की कीर्ति
सुनकर विद्वान्-कवि धोलके आते रहते थे और उस मंडली में वस्तु
'वसन्तपाल' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

सचमुच वस्तुपाल ने गुजरात के उजडे हुए उद्यान मे वसन्त ही तो ला दिया था !

राणा वीरधवल जब वनथली-विजय के लिए गए हुए थे तब वस्तुपाल धोलके मे बैठे हुए अपने काव्य-ग्रन्थ को पूरा करने मे लगे थे। किन्तु आठो प्रहर उनके गुप्तचर उन्हे राणा के आगे बढ़ने का समाचार ला-लाकर देते रहते थे। वस्तुपाल स्वय भी किसी सकट का सामना करने के लिए तैयार बैठे थे।

अन्त मे अमात्य के पास सोरठ-विजय का समाचार पहुँचा और उन्होने सन्तोष की सांस ली। कुछ दिन तक वनथली मे रहकर सोरठ के सभी शासको को गुजरात के अधीन करके जब राणा वीरधवल धोलके लौटे तब वस्तुपाल ने लेखनी रख दी और वे राणा के स्वागत के लिए चले।

विजयी राणा वीरधवल धोलके लौट रहे थे। सारा गुजरात उनके स्वागत के लिए उमड़ पडा था। पाटन, खम्भात और अन्य स्थानो से झुड के झुड लोग धोलके पहुँचे और इस विजय-महोत्सव मे सम्मिलित हुए। राणा लवणप्रसाद भी इस अवसर पर पाटन से धोलके आए।

हाथी पर बैठे हुए दोनो राणाओ ने जब धोलके मे प्रवेश किया तब जन-मेदिनी हर्ष से मानो पागल ही हो उठी। राणा की सवारी पर अट्टालिकाओ के छज्जो पर से कुंकुम, गुलाल और पुष्पो की वर्षा हो उठी।

चारो ओर उत्साह और आनन्द का वातावरण था। किन्तु राणा लवणप्रसाद कुछ गम्भीरता से इस उत्सव को देख रहे थे। वस्तुपाल की पैनी दृष्टि से राणा की यह गम्भीरता छिपी नही रह सकी। राजमहल मे पहुँच जाने पर वस्तुपाल ने आखिर पूछा—

"बापू ! आज तो छोटे राणा सोरठ-विजय करके लौटे हैं। आनन्द की घड़ी है। लेकिन आप तो गम्भीर बने बैठे हैं। क्या कारण है ?"

मण्डलेश्वर एक फीकी हँसी हँसे और बोले--

"वस्तुपाल ! मेरे लिए तो आनन्द की घड़ी तब आएगी जब गुजरात के सोलंकियों का कुक्कुटध्वज आसमुद्र पृथ्वी पर लहरायेगा। अभी तो गुजरात के सारे मण्डलेश्वरों पर ही पाटन का प्रभुत्व नहीं है।"

संकेत किधर था इसे वस्तुपाल समझ गए, फिर भी उन्होंने पूछा--

"किसकी बात कहते हैं बापू ?"

"गुजरात के अमात्य होकर क्या तुम नहीं जानते ?"

"धुधूलराज की बात कहते हैं न बापू ?"

"हाँ, वस्तुपाल ! तुम ठीक समझे। मैं कहूँ कि तुम्हारी निगाह से वह कैसे बचा रह गया !"

"नहीं बचा है, बापू ! और बचेगा भी नहीं। गुजरात का एक भी शत्रु बचकर कहीं नहीं जा पाएगा, आप खातिर-जमा रखें।"

"तब उसके लिए क्या सोचा है तुमने ?"

"उसमें सोचना क्या है बापू ? धुधूलराज को पाटन के ताबे ले आना है।"

"इतनी आसानी से तुम्हारे ताबे में आ जाए ऐसा नहीं है वह, वस्तुपाल !"

यह सुनकर वस्तुपाल हँस पड़े। बोले--

"वस्तुपाल को भोला न समझें, बापू ! घी यदि सीधी अँगुली से न निकले तो टेढ़ी से तो निकलेगा न ? आप तो यह कहो बापू, कि कितने दिन की मोहलत है ?"

"एक पखवाड़े की। या अधिक चाहिए ?"

"क्या करना है अधिक का ? एक पखवाड़ा तो बहुत है।"

गोध्रपुर का धुधूलराज दुर्दान्त व्यक्ति था। जैसा शरीर वैसा ही मन। दानव जैसी शक्ति रखने वाला उसका शरीर भैंसे के समान पुष्ट और बलिष्ठ था। आँखें अंगारों की तरह दहकती हुई लाल-लाल और गोल। किसी समय वह गुजरात का मण्डलेश्वर ही था किन्तु महाराज भीमदेव की रुग्णता और वृद्धत्व का लाभ लेकर वह स्वतन्त्र राजा बन

बैठा था। महेन्द्री नदी के तट पर बसी हुई उसकी राजधानी गोध्रपुर भौगोलिक दृष्टि से बडी सुरक्षित थी।

धुधूलराज राजा तो बन ही बैठा था किन्तु अवसर आने पर उसे डाका डालने मे भी कोई सकोच नही होता था। महेन्द्री नदी के किनारे-किनारे यात्रा करते हुए व्यक्तियो को वह जब मन चाहता तब लूट लिया करता था। प्रजा उसके उत्पीडन से बडी हैरान और दु खी थी।

वस्तुपाल ने उसी दिन अपना दूत धुधूलराज के पास भेज दिया। दूत को राजमुद्राकित पत्र देते हुए उन्होने कहा—

"निपुणक। धुधूलराज को मेरी ओर से कहना कि अपना भला-बुरा विचारकर पत्र मे लिखी हुई मेरी शर्तो को स्वीकार कर लें। वरना कह देना कि गुजरात म अब डाकुओ और विद्रोहियो के लिए जगह नही है।"

निपुणक वास्तव मे निपुण था। धुधूलराज के दरबार मे पहुँचकर उसने अमात्य का पत्र देते हुए कहा—

"धुधूलराज! आप वीर पुरुष हो। गुजरात का शृगार हो। गुजरात आपका है और आप गुजरात के हो। विचार करो। महामात्य ने कहलाया है कि ऐसे समय मे जबकि गुजरात पर बाहर से शत्रुओ का सकट घिरा हुआ है आपको यह शोभा नही देता कि आप अपने ही देश को कमजोर बनाएँ। गुजरात के सपूतो को तो मिलकर बाहरी शत्रुओ का मुकाबला करना चाहिए।"

धुधूलराज ने पत्र पढा और दूत की बात सुनकर एक विकट अट्टहास करते हुए कहा—

"तेरा नाम क्या है रे?"

"निपुणक।"

"ओहो, निपुणक तू मुझे उपदेश देने आया है क्या?"

"उपदेश आपको मैं क्या दूँगा धुधूलराज! मैं तो उचित है वह कहता हूँ।"

"अच्छा देख, जो उचित है वह मैं तुझे बताता हूँ। वस्तुपाल से

"वस्तुपाल ! मेरे लिए तो आनन्द की घड़ी तब आएगी जब गुजरात के सोलंकियों का कुक्कुटध्वज आसमुद्र पृथ्वी पर लहरायेगा। अभी तो गुजरात के सारे मण्डलेश्वरों पर ही पाटन का प्रभुत्व नही है।"

संकेत किधर था इसे वस्तुपाल समझ गए, फिर भी उन्होंने पूछा—

"किसकी बात कहते हैं बापू ?"

"गुजरात के अमात्य होकर क्या तुम नहीं जानते ?"

"धुधूलराज की बात कहते हैं न बापू ?"

"हाँ, वस्तुपाल ! तुम ठीक समझे। मैं कहूँ कि तुम्हारी निगाह से वह कैसे बचा रह गया !"

"नहीं बचा है, बापू ! और बचेगा भी नहीं। गुजरात का एक भी शत्रु बचकर कहीं नही जा पाएगा, आप खातिर-जमा रखें।"

"तब उसके लिए क्या सोचा है तुमने ?"

"उसमें सोचना क्या है बापू ? धुधूलराज को पाटन के तावे ले आना है।"

"इतनी आसानी से तुम्हारे तावे में आ जाए ऐसा नहीं है वह, वस्तुपाल !"

यह सुनकर वस्तुपाल हँस पड़े। बोले—

"वस्तुपाल को भोला न समझें, बापू ! घी यदि सीधी अँगुली से न निकले तो टेढ़ी से तो निकलेगा न ? आप तो यह कहो बापू, कि कितने दिन की मोहलत है ?"

"एक पखवाड़े की। या अधिक चाहिए ?"

"क्या करना है अधिक का ? एक पखवाड़ा तो बहुत है।"

गोध्रपुर का धुधूलराज दुर्दान्त व्यक्ति था। जैसा शरीर वैसा ही मन। दानव जैसी शक्ति रखने वाला उसका शरीर भैंसे के समान पुष्ट और बलिष्ठ था। आँखें अंगारों की तरह दहकती हुई लाल-लाल और गोल। किसी समय वह गुजरात का मण्डलेश्वर ही था किन्तु महाराज भीमदेव की रुग्णता और वृद्धत्व का लाभ लेकर वह स्वतन्त्र राजा बन

बैठा था। महेन्द्री नदी के तट पर बसी हुई उसकी राजधानी गोध्रपुर भौगोलिक दृष्टि से बड़ी सुरक्षित थी।

धुधूलराज राजा तो बन ही बैठा था किन्तु अवसर आने पर उसे डाका डालने में भी कोई सकोच नही होता था। महेन्द्री नदी के किनारे-किनारे यात्रा करते हुए व्यक्तियो को वह जब मन चाहता तब लूट लिया करता था। प्रजा उसके उत्पीडन से बडी हैरान और दु खी थी।

वस्तुपाल ने उसी दिन अपना दूत धुधूलराज के पास भेज दिया। दूत को राजमुद्राकित पत्र देते हुए उन्होने कहा—

"निपुणक। धुधूलराज को मेरी ओर से कहना कि अपना भला-बुरा विचारकर पत्र मे लिखी हुई मेरी शर्तों को स्वीकार कर लें। वरना कह देना कि गुजरात मे अब डाकुओ और विद्रोहियो के लिए जगह नही है।"

निपुणक वास्तव में निपुण था। धुधूलराज के दरबार में पहुँचकर उसने अमात्य का पत्र देते हुए कहा—

"धुधूलराज! आप वीर पुरुष हो। गुजरात का शृगार हो। गुजरात आपका है और आप गुजरात के हो। विचार करो। महामात्य ने कहलाया है कि ऐसे समय मे जबकि गुजरात पर बाहर से शत्रुओं का सकट घिरा हुआ है आपको यह शोभा नही देता कि आप अपने ही देश को कमजोर बनाएँ। गुजरात के सपूतो को तो मिलकर बाहरी शत्रुओं का मुकाबला करना चाहिए।"

धुधूलराज ने पत्र पढा और दूत की बात सुनकर एक विकट अट्टहास करते हुए कहा—

"तेरा नाम क्या है रे?"

"निपुणक।"

"ओहो, निपुणक तू मुझे उपदेश देने आया है क्या?"

"उपदेश आपको मैं क्या दूँगा धुधूलराज! मैं तो उचित है वह कहता हूँ।"

"अच्छा देख, जो उचित है वह मैं तुझे बताता हूँ। वस्तुपाल से

कहना कि अपने राणा वीरधवल को ओढ़नी-लँहगा पहनाकर मेरे अन्तः-पुर भेज दे समझा ? और धुधूलराज महेन्द्री प्रदेश का राजा है और रहेगा। गुजरात के किसी अमात्य ने अपनी माँ का दूध पिया हो तो वह आकर मुझसे दो-दो हाथ कर ले।"

यह कहकर धुधूलराज ने सचमुच एक ओढ़नी मँगवाई, एक काजल की डिबिया मँगवाई और निपुणक को वे वस्तुएँ देकर कहा—

"जा, ले जा ये वस्तुएँ अपने अमात्य के पास और राणा वीरधवल को जरा जल्दी भेजना भला ?"

निपुणक चुपचाप लौट आया। जब वह धोलके पहुँचा तो अमात्य राज-सभा में थे। वह राज-सभा में ही जा पहुँचा। उसने धुधूलराज की भेजी हुई वस्तुए अमात्य के हाथ में दीं और कहा—

"अमात्यवर ! धुधूलराज को सद्बुद्धि नहीं आई।"

ओढ़नी और काजल की डिबिया को देखकर धुधूराज ने जो मौखिक सन्देश दिया था उसे सुनकर राणा वीरधवल के तन-वदन में आग लग गई। वे बोले—

"आपने सुना वस्तुपालजी ! धुधूलराज ने हमें क्या कहलाया है ?"

वस्तुपाल गंभीर थे। उन्होंने उत्तर दिया—

"राजन् ! चींटी की मौत जब आती है तब उसके पर निकल आते हैं। धुधूलराज की मौत उसके सिर पर नाच रही है, यह मैं देख रहा हूँ।"

"तब आज ही सैन्य को सज्जित करो वस्तुपालजी ! मैं इस अहंकारी को पाठ पढ़ाऊँगा।"

"नहीं राजन् ! आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा। एक मामूली-से माण्डलिक सामन्त के विरुद्ध युद्ध में जाना आपको शोभा नहीं देता। अब तो धुधूलराज को धोलके के अन्तःपुर में लाना है, उसके बाद ही आप उससे भेंट करना।"

इतना कहकर अमात्य ने भरी हुई राज-सभा में चारों ओर एक

दृष्टि दौडाई और कहा—

"गुजरात के वीर सामन्तो और सरदारो ! धुधूलराज का सन्देश आप लोगो ने सुना ! यह ओढनी और काजल की डिबिया भी आप देख रहे हैं ! कहिए, आप मे कौन आगे आता है ? कौन धुधूलराज को जीवित पकडकर धोलके के अन्त पुर मे लाने का बीडा उठाता है ?"

राज-सभा सन्न रह गई। दैत्य जैसी शक्ति रखने वाले कुटिल धुधूलराज को जीवित पकडकर लाना कोई हँसी-खेल तो था नही। कौन आगे आता ? किसे अपना जीवन प्रिय नहीं था ?

तब उस सन्नाटे को चीरते हुए तेजपाल की आवाज आई—

"मुझे दीजिए यह बीडा। धुधूलराज को पकडकर पिंजरे मे बन्द करके धोलके लाऊँगा।"

पान का बीडा तेजपाल ने आगे बढकर अपने मुँह मे रख लिया।

वस्तुपाल ने कहा—

"सेनापति तेजपाल ! याद रहे, यह गुजरात की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। धुधूलराज भयानक है, उसकी राजधानी महेन्द्री नदी के वन्य कछारो से सुरक्षित है और उसे जीवित पकडकर लाना है।"

"गुजरात के सेनापति को यह याद रहेगा अमात्यवर !"

राणा वीरधवल ने एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि सभा मे उपस्थित अनेक सामन्तो और सरदारो की ओर डालते हुए तेजपाल से कहा—

"सेनापति ! इन बहादुर सामन्तो मे-से किसी को साथ ले जाना हो तो छाँट लेना। ये सब बडे-बडे महारथी है।"

सभा मे उपस्थित कतार की कतार के सिर लज्जा से नीचे झुक गए। तेजपाल ने उत्तर दिया—

"आवश्यकता नही होगी, राजन् ! मैं अकेला ही इतना तो कर डालूँगा।"

कहना कि अपने राणा वीरधवल को ओढ़नी-लँहगा पहनाकर मेरे अन्तःपुर भेज दे समझा ? और धुधूलराज महेन्द्री प्रदेश का राजा है और रहेगा। गुजरात के किसी अमात्य ने अपनी माँ का दूध पिया हो तो वह आकर मुझसे दो-दो हाथ कर ले।"

यह कहकर धुधूलराज ने सचमुच एक ओढ़नी मँगवाई, एक काजल की डिबिया मँगवाई और निपुणक को वे वस्तुएँ देकर कहा—

"जा, ले जा ये वस्तुएँ अपने अमात्य के पास और राणा वीरधवल को जरा जल्दी भेजना भला ?"

निपुणक चुपचाप लौट आया। जब वह धोलके पहुँचा तो अमात्य राज-सभा में थे। वह राज-सभा में ही जा पहुँचा। उसने धुधूलराज की भेजी हुई वस्तुएं अमात्य के हाथ में दीं और कहा—

"अमात्यवर ! धुधूलराज को सद्बुद्धि नहीं आई।"

ओढ़नी और काजल की डिबिया को देखकर धुधूराज ने जो मौखिक सन्देश दिया था उसे सुनकर राणा वीरधवल के तन-वदन में आग लग गई। वे बोले—

"आपने सुना वस्तुपालजी ! धुधूलराज ने हमें क्या कहलाया है ?"

वस्तुपाल गंभीर थे। उन्होंने उत्तर दिया—

"राजन् ! चींटी की मौत जब आती है तब उसके पर निकल आते हैं। धुधूलराज की मौत उसके सिर पर नाच रही है, यह मैं देख रहा हूँ।"

"तब आज ही सैन्य को सज्जित करो वस्तुपालजी ! मैं इस अहंकारी को पाठ पढ़ाऊँगा।"

"नहीं राजन् ! आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा। एक मामूली-से माण्डलिक सामन्त के विरुद्ध युद्ध में जाना आपको शोभा नहीं देता। अब तो धुधूलराज को धोलके के अन्तःपुर में लाना है, उसके बाद ही आप उससे भेंट करना।"

इतना कहकर अमात्य ने भरी हुई राज-सभा में चारों ओर एक

दृष्टि दौड़ाई और कहा—

"गुजरात के वीर सामन्तो और सरदारो ! धुधुलराज का सन्देश आप लोगों ने सुना ! यह ओढ़नी और काजल की डिबिया भी आप देख रहे हैं ! कहिए, आप में कौन आगे आता है ? कौन धुधुलराज को जीवित पकड़कर धोलके के अन्तःपुर में लाने का बीड़ा उठाता है ?"

राज-सभा सन्न रह गई। दैत्य जैसी शक्ति रखने वाले दुर्दान्त धुधुलराज को जीवित पकड़कर लाना कोई हँसी-खेल तो था नहीं। कौन आगे आता ? किसे अपना जीवन प्रिय नहीं था ?

तब उस सन्नाटे को चीरते हुए तेजपाल की आवाज आई—

"मुझे दीजिए यह बीड़ा। धुधुलराज को पकड़कर पिंजरे में बन्द करके धोलके लाऊँगा।"

पान का बीड़ा तेजपाल ने आगे बढ़कर अपने मुँह में रख लिया।

वस्तुपाल ने कहा—

"सेनापति तेजपाल ! याद रहे, यह गुजरात की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। धुधुलराज भयानक है, उसकी राजधानी महेन्द्री नदी के वन्य कछारों में सुरक्षित है और उसे जीवित पकड़कर लाना है।"

"गुजरात के सेनापति को यह याद रहेगा अमात्यवर !"

राणा वीरधवल ने एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि सभा में उपस्थित अनेक सामन्तों और सरदारों की ओर डालते हुए तेजपाल से कहा—

"सेनापति ! इन बहादुर सामन्तों में-से किसी को साथ ले जाना हो तो छाँट लेना। ये सब बड़े-बड़े महारथी हैं।"

सभा में उपस्थित कतार की कतार के सिर लज्जा से नीचे झुक गए। तेजपाल ने उत्तर दिया—

"आवश्यकता नहीं होगी, राजन् ! मैं अकेला ही इतना तो कर डालूँगा।"

राज-सभा भंग हुई।

घर आने पर वस्तुपाल ने तेजपाल से कहा—

"तेजू! कठिन काम है। लेकिन पूरा तो करना है। चतुराई से करेगा तो पूरा पड़ जायगा।"

"काम तो पूरा करना ही है बड़े-भैया! बीड़ा उठाया है तो पीछे हटने का सवाल ही नहीं उठता।"

"पीछे हटने का सवाल तो उठता ही नहीं लेकिन आगे कैसे बढ़ना है यह तो विचार का लेना है न?"

"कल ही धुधूलराज पर जा चढ़ता हूँ।"

"हूँ, तू तो ऐसे कहता है जैसे धुधूलराज पहले से ही चूड़ियाँ पहनकर बैठा हो।"

"नहीं बैठा है पहनकर तो मैं पहनाकर उसे लेने जा रहा हूँ।"

"हाँ, तू जा रहा है और उसे चूड़ियाँ पहनाकर, ओढ़नी ओढ़ाकर आँखों में काजल आँजकर ले आना है। लेकिन यह करेगा कैसे?"

"जैसे भी होगा।"

"देख तेजू, एक बात तुझे बताता हूँ। धुधूलराज में और सैकड़ों दुर्गुण भले ही हों, किन्तु उसमें एक गुण भी है। भारतवर्ष के अनेकों राजा अनेकों बार अपने किसी न किसी गुण के कारण ही शत्रु के सामने परास्त हुए हैं। उनके शत्रुओं ने उनके इन गुणों का लाभ उठाया है। हो सकता है कि धुधूलराज भी अपने एक ही गुण के कारण तेरे पंजे में आ जाय।"

"ऐसा क्या गुण है उस जंगली दैत्य में?"

"धुधूलराज बड़ा गो-भक्त है। तू गोध्रपुर जायगा तब परिस्थिति देखकर उसके इस गुण का लाभ उठा लेना। यदि तू ऐसा कर सका तो सम्भव है कि वह दानव तेरे हाथ पड़ जाय।"

तेजपाल ने बड़े भाई की बात सुनी और मन-ही-मन कुछ विचार किया। फिर वह बोला—

"ठीक है बड़े-भैया ! आपकी बात याद रहेगी। आज आधी रात के बाद मैं सेना लेकर गोध्रपुर जाऊँगा।"

"हाँ ठीक है। अपने जोडीदार को साथ लेते जाना।"

"किसे ? कीर्तिदेव को ?"

"और कौन ? खटपट के कामो मे वही तो है तेरा जोडीदार।"

तेजपाल ने हँसते हुए उत्तर दिया—

"हाँ, भैया ! वह तो मेरे साथ जाएगा ही वरना रास्ते मे मेरा मन नही लगेगा।"

दूसरे दिन पौ फटते-फटते तेजपाल कीर्तिदेव के साथ सेना लेकर गोध्रपुर की सीमा पर जा पहुँचा। महेन्द्री नदी गोध्रपुर का आधा चक्कर काटकर लहराती हुई बह रही थी। उसके कछारो के पार सघन वन था। उस वन मे झाड झखाड और बडे-बडे पुराने वृक्ष इतने घने थे कि दिन मे भी सूर्य का प्रकाश बडी कठिनाई से वहाँ पहुँच पाता था।

सूर्य उगा। धरती पर सोना बिखेरती हुई किरणें फूटी। रातभर अपने घोसलो म शाति से सोए हुए वनपाखी उल्लास के साथ ऊँचे आकाश में उडानें भरने लगे। गायों के गलों मे बँधी हुई छोटी-छोटी घटियो की मधुर रणनकार धीरे-धीरे गोध्रपुर की ओर से आती हुई वन मे फैलने लगी।

तेजपाल ने कीर्तिदेव से कहा—

"जोडीदार ! गोध्रपुर के ग्वाले अपनी गायो को चराने के लिए निकल पडे हैं। अब कोई तरकीब करनी चाहिए।"

"हाँ, कुछ तो करना चाहिए, लेकिन क्या और कैसे यह समझ मे आता नही।"

"देख कीर्तिदेव एक दाँव फेंकते हैं। सीधा पड गया तो ठीक, काम सरल हो जायगा। वरना फिर सीधा धुघूलराज के सिर पर तो चढना है ही।"

"कोई तरकीब आई है क्या तुम्हारे दिमाग में ?"

"हाँ, कुछ सोचा तो है।"—कहकर तेजपाल ने अपनी सेना को उस सघन वन में काफी दूरी तक अर्धचन्द्राकार स्थिति में फैला दिया और सैनिकों को आगाह कर दिया कि वे वृक्षों की आड़ लेकर खड़े रहें।

उसके बाद तेजपाल और कीर्तिदेव अपनी पगड़ियों से अपने मुँह को ढाँककर, डाकुओं जैसी सूरत बनाकर, अपने घोड़ों पर बैठकर अपनी सेना से कुछ आगे बढ़ गए। थोड़ी ही दूर पर गोध्रपुर के ग्वाले अपनी गाएँ चरा रहे थे। सुबह की धूप में गाएँ मस्ती के साथ हरे-भरे मैदान में नरम-नरम घास चर रही थीं। ग्वाले चिलम-तम्बाकू फूँक रहे थे।

तेजपाल और कीर्तिदेव ने आगे बढ़कर उन ग्वालों पर आक्रमण कर दिया। सभी ग्वालों को थोड़ा-थोड़ा घायल करके उन्होंने एक ग्वाले को छोड़ दिया और गायों को हलका-हलका दिखावटी रूप में पीट-पीटकर वे उन्हें घेरकर भगा ले जाने का अभिनय करने लगे।

ग्वालों ने सोचा कि डाकू आ गए और वे उनकी गायों को मार-मारकर हाँके लिए जा रहे हैं। एक ग्वाला जिसे तेजपाल ने जानबूझकर छोड़ दिया था अपनी जान बचाकर पुकार मचाता हुआ गोध्रपुर की ओर भाग खड़ा हुआ।

अभिनय चलता रहा। वह ग्वाला भागकर घुघूलराज के पास पहुँचा और रोता हुआ बोला—

"अन्नदाता! हत्यारे डाकू गायों को पीट-पीटकर भगाए लिए जाते हैं। दुहाई है महाराज! रक्षा कीजिए!"

गो-भक्त घुघूलराज ने यह पुकार सुनी। उन्होंने आव देखा न ताव, वे अपना अश्व लेकर गायों की रक्षा के लिए उसी क्षण दौड़ पड़े।

अपने राजा को इस प्रकार अकेला संकट का सामना करते जाते

हुए देखकर पाँच-दस सैनिक जो आस पास थे वे भी उनके पीछे-पीछे दौड पड़े। एक सैनिक ने कुछ चतुराई से कार्य किया और जल्दी से जल्दी सेना को पीछे-पीछे आने के लिए कहलाता गया। जाने कैसी परिस्थिति बन जाय! डाकू पता नही कितनी सख्या म हो!

धुधूलराज आँधी की तरह जगल मे जा पहुँचे। उन्होने दूर स ही देखा कि दो डाकू गायो को हाँके लिए जा रहे हैं। ललकार कर वे उनके पीछे पड गए।

तजपाल ने धुधूलराज को प्रचण्ड वेग म अपनी ओर झपटते हुए देखा और मुस्कराकर वह कीर्तिदव मे बोला—

"कीर्तिदेव, धुधूलराज को आज थोडा चक्कर देता हूँ। तू गाया को हाँकता हुआ अपनी सेना की ओर बढता जा।"

यह कहकर तेजपाल जानबूझकर कुछ पीछे रह गया। धुधूलराज ठीक उसके सिर पर आ पहुँचे।

अब तेजपाल ने घुडसवारी के कुछ करिश्मे दिखाने आरम्भ किये। ज्योही धुधूलराज उसके समीप पहुँचकर उस पर झपटने को हुए कि वह अपने अश्व को चक्कर देकर दूसरी दिशा म मुड गया। धुधूलराज अपने वार को खाली जाता देखकर चिढ गए। कीर्तिदेव को छोडकर वे तजपाल के ही पीछे पड गए।

आगे-आगे तेजपाल, पीछे-पीछे धुधूलराज। कभी तेजपाल जानबूझकर इतना धीमे पड जाता कि धुधूलराज ठीक उसके सिर पर जा चढते और ज्योही वे उस पर आक्रमण करने को होते कि तेजपाल बिजली की गति से पलटकर दूसरी दिशा म मुड जाता और अपने अश्व को सरपट भगा देता।

धुधूलराज के क्रोध और खीझ का कोई पार ही नही था। यह लुटेरा उन्हे बडा परेशान कर रहा था। पकड मे आ आकर बच निकलता था। लेकिन आखिर जायगा कहाँ? अभी इसे दबोचकर

"कोई तरकीब आई है क्या तुम्हारे दिमाग में ?"

"हाँ, कुछ सोचा तो है।"—कहकर तेजपाल ने अपनी सेना को उस सघन वन में काफी दूरी तक अर्धचन्द्राकार स्थिति में फैला दिया और सैनिकों को आगाह कर दिया कि वे वृक्षों की आड़ लेकर खड़े रहें।

उसके बाद तेजपाल और कीर्तिदेव अपनी पगड़ियों से अपने मुँह को ढाँककर, डाकुओं जैसी सूरत बनाकर, अपने घोड़ों पर बैठकर अपनी सेना से कुछ आगे बढ़ गए। थोड़ी ही दूर पर गोध्रपुर के ग्वाले अपनी गाएँ चरा रहे थे। सुबह की धूप में गाएँ मस्ती के साथ हरे-भरे मैदान में नरम-नरम घास चर रही थीं। ग्वाले चिलम-तम्बाकू फूँक रहे थे।

तेजपाल और कीर्तिदेव ने आगे बढ़कर उन ग्वालों पर आक्रमण कर दिया। सभी ग्वालों को थोड़ा-थोड़ा घायल करके उन्होंने एक ग्वाले को छोड़ दिया और गायों को हलका-हलका दिखावटी रूप में पीट-पीटकर वे उन्हें घेरकर भगा ले जाने का अभिनय करने लगे।

ग्वालों ने सोचा कि डाकू आ गए और वे उनकी गायों को मार-मारकर हाँके लिए जा रहे हैं। एक ग्वाला जिसे तेजपाल ने जानबूझकर छोड़ दिया था अपनी जान बचाकर पुकार मचाता हुआ गोध्रपुर की ओर भाग खड़ा हुआ।

अभिनय चलता रहा। वह ग्वाला भागकर घुघूलराज के पास पहुँचा और रोता हुआ बोला—

"अन्नदाता ! हत्यारे डाकू गायों को पीट-पीटकर भगाए लिए जाते हैं। दुहाई है महाराज ! रक्षा कीजिए !"

गो-भक्त घुघूलराज ने यह पुकार सुनी। उन्होंने आव देखा न ताव, वे अपना अश्व लेकर गायों की रक्षा के लिए उसी क्षण दौड़ पड़े।

अपने राजा को इस प्रकार अकेला संकट का सामना करते जाते

हुए देखकर पाँच दस सैनिक जो आस-पास थे वे भी उनके पीछे-पीछे दौड पडे। एक सैनिक ने कुछ चतुराई से कार्य किया और जल्दी से जल्दी सेना को पीछे-पीछे आने के लिए कहलाता गया। जाने कैसी परिस्थिति बन जाय! डाकू पता नही कितनी सख्या मे हो!

धुधूलराज आँधी की तरह जगल मे जा पहुँचे। उन्होने दूर से ही देखा कि दो डाकू गायो को हाँके लिए जा रहे हैं। ललकार कर वे उनके पीछे पड गए।

तेजपाल ने धुधूलराज को प्रचण्ड वेग से अपनी ओर झपटते हुए देखा और मुस्कराकर वह कीर्तिदेव से बोला—

"कीर्तिदेव, धुधूलराज को आज थोडा चक्कर देता हूँ। तू गायो को हाँकता हुआ अपनी सेना की ओर बढता जा।"

यह कहकर तेजपाल जानबूझकर कुछ पीछे रह गया। धुधूलराज ठीक उसके सिर पर आ पहुँचे।

अब तेजपाल ने घुडसवारी के कुछ करिश्मे दिखाने आरम्भ किये। ज्योही धुधूलराज उसके समीप पहुँचकर उस पर झपटने को हुए कि वह अपने अश्व को चक्कर देकर दूसरी दिशा मे मुड गया। धुधूलराज अपने वार को खाली जाता देखकर चिढ गए। कीर्तिदेव को छोडकर वे तेजपाल के ही पीछे पड गए।

आगे-आगे तेजपाल, पीछे-पीछे धुधूलराज। कभी तेजपाल जानबूझकर इतना धीमे पड जाता कि धुधूलराज ठीक उसके सिर पर जा चढते और ज्योही वे उस पर आक्रमण करने को होते कि तेजपाल बिजली की गति से पलटकर दूसरी दिशा मे मुड जाता और अपने अश्व को सरपट भगा देता।

धुधूलराज के क्रोध और खीझ का कोई पार ही नहीं था। यह लुटेरा उन्हे बडा परेशान कर रहा था। पकड मे आ-आकर बच निकलता था। लेकिन आखिर जायगा कहाँ? अभी इसे दबोचकर

जीवन भर की शिक्षा दिये देता हूँ !

आगे-आगे तेजपाल, पीछे-पीछे बुबूलराज। तेजपाल जरा मस्ती में आ गया। उसने उस दिन जीभरकर बुबूलराज को चक्कर-पर-चक्कर दिए। वह अद्भुत अश्वारोही था, जिस अश्व पर तेजपाल सवार हो उसके पंख निकल आते थे। फिर उससे पार पाना किसी के वश की बात नहीं होती थी। बेचारे बुबूलराज ने उस दिन एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया लेकिन अन्त तक स्थिति वैसी ही बनी रही—आगे-आगे तेजपाल, पीछे-पीछे बुबूलराज।

बहुत समय तक बुबूलराज को इसी प्रकार चक्कर-पर-चक्कर देते हुए तेजपाल उन्हें अपनी अर्धचन्द्राकार स्थिति में फैलकर छिपी हुई सेना के बीचोंबीच ले आया।

और तब तेजपाल ने अपने अश्व को बुबूलराज के सामने कर दिया। तलवार खींचकर, अपने मुँह पर से पगड़ी का छोर हटाकर वह गरजता हुआ बोला—

"बुबूलराज ! सावधान ! मैं तेजपाल, तुम्हें राणा वीरधवल के अन्तःपुर में ले जाने के लिए आया हूँ।"

बुबूलराज एक क्षण के लिए हक्के-बक्के रह गए। किन्तु दूसरे ही क्षण वे ललकारते और झपटते हुए बोले—

"ठहरजा, बनिए। पहले तुझे जहन्नुम का रास्ता बतादूँ तब मुझे बाँधके ले जाना।"

तेजपाल हँस पड़ा। बुबूलराज की तलवार से उसकी तलवार टकराई और उसमें से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। हँसते हुए ही तेजपाल ने कहा—

"क्षमा करना बुबूलराज ! मुझे आज्ञा मिली है कि मैं आपको सही-सलामत राणा के अन्तःपुर तक पहुँचा दूँ। इसलिए आज केवल घुड़सवारी के ही दो-चार करिश्मे दिखा सका हूँ। तलवार के हाथ फिर किसी दिन अवसर हुआ तो दिखाऊँगा।"

तेजपाल ने यह कहा ही था कि एक वृक्ष की ओट में-से रस्सी का एक फंदा हवा में उछलता हुआ आया और उसने धुधूलराज को जकड लिया। रस्सी का दूसरा सिरा थामे हुए कीर्तिदेव हँसता हुआ वृक्ष की ओट में-से बाहर निकल आया।

धुधूलराज जकडे और पकडे जा चुके थे। विवशता, ग्लानि, लज्जा, क्रोध और खीझ के कारण उनके मुख से झाग निकलने लगे।

धुधूलराज की सेना भी उसी समय वहाँ आ पहुँची। किन्तु अर्ध-चन्द्राकार स्थिति में मोर्चा बाँधकर खडे गुर्जर-सैन्य ने उसे घडी भर में ही पीट-पीटकर भगा दिया।

एक बहुत बडा लकडी का पिंजरा तेजपाल अपने साथ ही धोलके से लेता आया था। धुधूलराज को बडे करीने से ओढनी और लँहगा पहनाया गया। आँखों में गहरा काजल आँजा गया। रंग-बिरंगी झन-झन करती चूडियाँ पहनाई गईं और काजल की डिबिया उनके गले में माला की तरह लटकाकर, उन्हें उस काष्ठपिंजरे में बन्द कर दिया गया।

तेजपाल ने कहा—

"क्षमा करना धुधूलराज! आपने जो कुछ किया और कहा उसके बदले में हमारे लिए और कुछ करने का नहीं था। हाँ, किसी दिन अवसर मिला तो मैदान में उतर कर आपका स्वागत भी करूँगा।"

धुधूलराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सिर लटकाकर जमीन देख रहे थे।

धुधूलराज की यह विचित्र सवारी जब धोलके पहुँची तब सारा शहर उसे देखने के लिए उमड पडा। लोगों ने सुन रखा था कि गोध्रपुर का धुधूलराज बडा पराक्रमी और क्रूर है। उसकी शक्ति दैत्यों जैसी है। किन्तु जब उसे किसी गुरिल्ला बन्दर की तरह काठ के पिंजरे में बन्द होकर आता देखा गया तो एक तरफ तो लोगों ने तेजपाल के शौर्य के गुण गाए, दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग जो जरा गम्भीर और

वृद्ध थे कहने लगे कि घमण्डी का सिर हमेशा नीचा रहता है।

बच्चों के लिए तो एक विचित्र तमाशा ही खड़ा हो गया। सारे शहर में धुधूलराज को घुमाया गया और सारे शहर के बच्चे उनके पिंजरे के आस-पास हो-हल्ला मचाते और कभी-कभी लकड़ियों से उन्हें कुरेदते घूमते रहे।

आखिर राजमहल तक पहुँचने पर धुधूलराज के लिए और अधिक सहन करना अशक्य हो गया। राणा वीरधवल, वस्तुपाल, राजगुरु सोमेश्वर तथा रानी जयलता आदि महल के ऊँचे झरोखे से उस काष्ठ-पिंजर और उसमें बन्द धुधूलराज को देख रहे थे। वस्तुपाल ने ऊँचे स्वर में वहीं से कहा—

"धुधूलराज! हमें दुःख है कि आपको हमें इस हालत में धोलके लाना पड़ा। हम चाहते थे कि आप हमारे मित्र के रूप में यहाँ आते, हम आपके मित्र के रूप में गोध्रपुर जाते। किन्तु आपने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया, हमारी सलाह की उपेक्षा की। हमने कहा था कि गुजरात के सपूतों को अपने राष्ट्र की एकता के लिए मिलकर आगे बढ़ना चाहिए। लेकिन आपने हमारी बात का जो उत्तर दिया उसका परिणाम आप भोग रहे हैं। किन्तु धुधूलराज! कुछ भी हो, आप एक वीर पुरुष तो हैं ही। आपके दुर्गुणों को भुलाकर हम आपकी वीरता की अब भी इज्जत करते हैं। आपको अपनी उद्दंडता और गर्व की काफी सजा मिल चुकी। अब हम आपको पुनः स्वतन्त्र करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में आप अपनी वीरता का उपयोग आपस में लड़ने-झगड़ने में नहीं, बल्कि गुजरात के शत्रुओं को पाठ पढ़ाने में लगाएँगे!

धुधूलराज से इतनी बातें कहकर अमात्य ने सैनिकों को आदेश दिया—

"धुधूलराज को मुक्त करो और इन्हें सम्मान के साथ महल में ले आओ।"

आदेश का तत्क्षण अनुपालन हुआ। पिंजरे के द्वार मुक्त कर दिए गए। सैनिकों ने आदर सहित कहा—

"पधारिए धुधूलराज !"

किन्तु अभिमानी धुधूलराज पिंजरे से बाहर नहीं निकले। उनका शरीर पिंजरे के अन्दर ही एक ओर लुढक गया।

धुधूलराज ने अपनी जीभ काटकर आत्म हत्या कर ली थी। उन्होंने इस अपमान के बाद और अधिक जीवित रहना श्रेयस्कर नहीं माना था।

***

वृद्ध थे कहने लगे कि घमण्डी का सिर हमेशा नीचा रहता है।

वच्चों के लिए तो एक विचित्र तमाशा ही खड़ा हो गया। सारे शहर में घुधूलराज को घुमाया गया और सारे शहर के वच्चे उनके पिंजरे के आस-पास हो-हल्ला मचाते और कभी-कभी लकड़ियों से उन्हें कुरेदते घूमते रहे।

आखिर राजमहल तक पहुँचने पर घुधूलराज के लिए और अधिक सहन करना अशक्य हो गया। राणा वीरधवल, वस्तुपाल, राजगुरु सोमेश्वर तथा रानी जयलता आदि महल के ऊँचे झरोखे से उस काष्ठ-पिंजर और उसमें वन्द घुधूलराज को देख रहे थे। वस्तुपाल ने ऊँचे स्वर में वहीं से कहा—

"घुधूलराज ! हमें दुःख है कि आपको हमें इस हालत में धोलके लाना पड़ा। हम चाहते थे कि आप हमारे मित्र के रूप में यहाँ आते, हम आपके मित्र के रूप में गोध्रपुर जाते। किन्तु आपने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया, हमारी सलाह की उपेक्षा की। हमने कहा था कि गुजरात के सपूतों को अपने राष्ट्र की एकता के लिए मिलकर आगे वढ़ना चाहिए। लेकिन आपने हमारी वात का जो उत्तर दिया उसका परिणाम आप भोग रहे हैं। किन्तु घुधूलराज ! कुछ भी हो, आप एक वीर पुरुप तो हैं ही। आपके दुर्गुणों को भुलाकर हम आपकी वीरता की अव भी इज्जत करते हैं। आपको अपनी उद्दंडता और गर्व की काफी सजा मिल चुकी। अव हम आपको पुनः स्वतन्त्र करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में आप अपनी वीरता का उपयोग आपस में लड़ने-झगड़ने में नहीं, वल्कि गुजरात के शत्रुओं को पाठ पढ़ाने में लगाएंगे !

घुधूलराज से इतनी वातें कहकर अमात्य ने सैनिकों को आदेश दिया—

"घुधूलराज को मुक्त करो और इन्हें सम्मान के साथ महल में ले आओ।"

की आज्ञा से किया जा रहा था। इस पुनर्निर्माण के कार्य को देखने के लिये वस्तुपाल खम्भात गए हुए थे।

खम्भात साहित्य और सस्कृति का प्राचीन केन्द्र था। वहाँ अनेक विद्वान् एव कवि भी बसते थे। उन लोगो ने जब वस्तुपाल के खम्भात आगमन का समाचार सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन वस्तुपाल भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर मे पूजा करने के बाद मन्दिर के आँगन मे बैठे हुए विद्वानो और कवियो से काव्यचर्चा कर रहे थे। अनेक कवियो ने अपने उत्कृष्ट काव्य अमात्य को सुनाए। कुछ ने अपने काव्य मे कहा—

'हे वस्तुपाल! तुम्हारे मस्तक पर प्रभु की आज्ञा, मुख मे सरस्वती, अन्तर मे कृपा, कर-कमल मे लक्ष्मी और देह मे शौर्य तथा कान्ति विलास करती है। यह देखकर तुम्हारी कीर्ति को इतनी ईर्ष्या हुई है कि वह स्वर्ग तक चली गई है।

'हे मन्त्रीश्वर! शत्रुओ की कीर्ति अपने घर म-से ही कभी बाहर नही निकलती, किन्तु फिर भी कविगण उसे असती (अकीर्ति) कहते हैं। किन्तु हे अमृतपुत्र! तुम्हारी कीर्ति तो सारे ससार मे स्वेच्छा-पूर्वक भ्रमण करती फिर रही है फिर भी कविगण उसे सती (श्रेष्ठ) कहते हैं।'

'हे वज्रपुरुष! तुम विरोधियो के काल हो। तुमने पुरुषोत्तम प्रभु का पद प्राप्त किया है। मत्स्य का रूप धारण किये बिना ही तुमने शख (शखासुर) को पराजित कर दिया है।'

उस सभा मे एक जैन यति श्री मल्लवादिन सूरि भी उपस्थित थे। वे भी उत्तम कवि थे। जब उनसे अपना काव्य सुनाने के लिए कहा गया, तब वे बोले—

'अस्मिनसारे ससारे, सार सारगलोचना।'

(इस असार ससार मे केवल एक मृगनयनी ही सार है)

भगवान् पार्श्वनाथ का पवित्र मन्दिर, सभा मे उपस्थित विद्वान्,

और यह शृंगार रस में डूबी हुई पंक्ति ? और वह भी एक जैन यति के मुख से ?

इस पंक्ति को सुनते ही वस्तुपाल ने घृणा से मुँह फेर लिया और वे यतिजी को वन्दन करके चुपचाप मन्दिर में-से उठकर चले गए। एक निराशा के वातावरण में उस दिन की सभा भंग हो गई।

दूसरे दिन जब वस्तुपाल मन्दिर में पूजा करके अपने आवास की ओर लौट रहे थे तब मार्ग में ही वे यति उन्हें मिल गए। वस्तुपाल को देखकर उन्होंने एक काव्य पंक्ति उन्हें सुनाकर कही—

'दूरे कर्णरसायनं निकटतस्तृणापि नो ज्ञाम्यति।'

(यह तो दूर से ही कानों को प्रिय लगने वाला है। समीप जाने पर तो उससे प्यास भी नहीं बुझ सकती।)

वस्तुपाल ने यह पंक्ति सुनी। उन्होंने अनुभव किया कि यतिजी ने जानबूझकर उनपर व्यंग किया है। वे चलते-चलते रुक गए। उन्हें ठहरा हुआ देखकर यति ने रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराते हुए कहा—

"जाइये-जाइये, अमृतपुत्र! आपके दर्शनों के सुधा-रस की एक बूँद प्राप्त करने के लिए सैकड़ों व्यक्ति अधीर बैठे होंगे।"

अमात्य को बड़ी विचित्रता का अनुभव हुआ। उनका कुतूहल जागा कि आखिर सूरिजी कहना क्या चाहते हैं? उन्होंने पूछा—

"सूरिजी! स्पष्ट कहिए, आपके कथन का उद्देश्य क्या है?"

"अरे कुछ नहीं, अमात्यवर! आप तो पधारिए, विजय पर विजय प्राप्त कीजिए, तीर्थों का उद्धार कीजिए। मुझे तो अब आपसे कुछ नहीं कहना है।"

"नही सूरिजी! अब ऐसे कैसे चलेगा? जो कहना हो कह ही डालिए।"

तब यति ने हँसते हुए कहा—

"मरुप्रदेश में एक भोलाभाला मारवाड़ी रहता था। एक दिन उसके गाँव में एक अतिथि आया। लोगों ने उससे पूछा—'कहाँ से आए

हो ?' उसने उत्तर दिया—'समुद्रतीर का वासी हूँ।' उस मरुग्राम म किसी ने कभी समुद्र देखा नही था। अत सबने बडे आग्रह से उससे पूछा—'समुद्र कैसा होता है ? उसे किसने खोदा ?' तब उस परदेशी ने कहा—'अरे भाई, समुद्र की महिमा का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? वह तो अगाध है, अनन्त है, स्वयसिद्ध है।' तब उस ग्राम के वासियो ने दूसरा प्रश्न किया—'उस समुद्र म क्या है ?' परदेशी ने उत्तर दिया—'भाई, समुद्र की निधिया का वर्णन तो किया ही नही जा सकता। वह तो अक्षय निधिया का भडार है। उसम मणियाँ हैं, मोती हैं, प्रवाल हैं, अमृत है। उसके किनारे पर कल्पवृक्ष हैं। अरे भाई मैं अधिक क्या कहूँ, उस का तो नाम ही रत्नाकर है।'

यह सुनकर सब विस्मय म डूब रह गए। किन्तु उन ग्रामवासियो म एक व्यक्ति वडा जिज्ञासु था। वह चुपचाप अपना ग्राम छोडकर समुद्र की ओर चल पडा। दिन-रात चलते चलते वह आखिर भूखा-प्यासा किसी प्रकार समुद्र के तीर पर आ ही पहुँचा। समुद्र को दूर से देखकर वह बडा प्रसन्न हुआ और दौडकर अँजलि भर-भरकर उसने समुद्र का जल पी लिया।

"किन्तु जानते हैं मन्त्रीश्वर उसका क्या हुआ ? वह बेचारा मरुप्रदेश का वासी समुद्र का खारा जल पीकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार हे अमात्य ! हमने आपकी वडी-वडी प्रशसाएँ सुनी थी। आपकी गुण-ग्राहकता की अनेक कथाएँ हमने सुनी थी। किन्तु आपने तो मेरे काव्य की एक ही पक्ति सुनकर मुँह फेर लिया। आगे का भाग तो आपने सुना नही। हम आपके पास अपनी काव्यरस की प्यास बुझाने आए थे, हमारी प्यास बुझ नहीं सकी।"

वस्तुपाल ने यति की बात ध्यान से सुनी। उन्हे लगा कि अवश्य उनसे चूक हुई है। वे बोले—

"क्षमा करें सूरिजी ! मैंने आपके काव्य की पक्ति सुनकर जो अनुमान लगाया था वह सभवत ठीक नही किया। कृपया आगे की

पंक्ति भी सुनाइये।"

तब सूरिजी ने अपना काव्य फिर से सुनाया—

"अस्मिनसारे संसारे, सारं सारंगलोचना।

यत्कुक्षिप्रभवा एते वस्तुपाल ! तवादृशाः ॥'

(इस असार संसार में केवल वह मृगनयनी ही सार है, जिसकी कोख ने वस्तुपाल जैसे अमृतपुत्र को जन्म दिया।)

"हे मंत्रीश्वर ! मैं तो आपकी पवित्रात्मा माता कुमारदेवी का गुणगान कर रहा था, किन्तु आपने मुझे बीच में ही रोक दिया।"

काव्य की ये पंक्तियाँ सुनकर वस्तुपाल अभिभूत से होकर अतीत की स्मृति में खो गए। सूरिजी से अपनी भूल के लिए क्षमा माँगकर वे विचारों में डूबे हुए अपने आवास की ओर चल पड़े।

एकान्त में अकेले वस्तुपाल। आज उन्हें अपनी माता की याद आई थी। सारे गुजरात को अकेले शौर्य और बुद्धि के बल पर उठाकर खड़ा कर देने वाले पुरुषार्थी महामात्य को वर्षों से इतना समय ही नहीं मिल पाया था कि वे कभी अपनी उस माता की याद कर लेते जिसने जीवन-भर दर-दर की खाक छानकर उन्हें जन्म दिया था और कष्टों के पहाड़ को झेलकर उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था।

सूरिजी ने उनकी माता को सारंगलोचना कहा था ! हाँ सचमुच माँ इतनी ही सुन्दर थी। उसके नयन मृगी के समान थे और चेहरा कमलपुष्प के समान कोमल। उसका हृदय प्रेम और वात्सल्य से भरा हुआ था। और अपने हृदय का सारा प्रेम, सारा वात्सल्य, सारी ममता उसने पुत्रों पर उँडेल दी थी। किस आशा में ?

पिता का प्रेम, माता का दुलार, कुल की प्रतिष्ठा, अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर वह उसके पिता के साथ अकेली निकल पड़ी थी एक सुनसान रात्रि में ! किस दिशा में ?

इतना बड़ा साहस, इतना बड़ा त्याग, इतनी कठिन तपस्या करने वाली उसकी माता का स्वप्न क्या साकार हो सका था ? यदि हुआ

था तो वह आज अपनी आशा को फलीभूत हुआ देखने के लिए, अपने स्वप्न को साकार देखने के लिए जीवित क्यों नहीं है ?

माँ ! ओ मेरी माँ ! तुझे जीवनभर मिले केवल कष्ट, अभाव और भटकन। लेकिन आज तू जहाँ भी हो वहाँ से देख कि तेरी तपस्या बिलकुल अकारथ नहीं गई है। माँ ! तेरे पुत्रों ने तेरे नाम को लजाया नहीं है।

जिसका नाम सुनकर ही शत्रु अपने सुरक्षित दुर्गों में बैठे काँपने लगते थे वह गुजरात का दुर्धर्ष महामात्य आज एकान्त में बालकों की तरह भावाकुल होकर रो पड़ा था।

आज उसे अपनी माँ की याद आई थी न !

***

गुजरात का अतिथि

गौड़ प्रदेश के पंडित हरिहर श्रेष्ठ कवि थे। वे अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ सारे भारतवर्ष में घूमते हुए काव्य के क्षेत्र में दिग्विजय करते फिरते थे। हाथी-घोड़ों और सुख-सुविधा के अन्य प्रसाधनों के साथ अपना लाव-लश्कर लेकर वे चला करते थे। शान-शौकत ऐसी जैसे कोई छोटा-मोटा राजा ही हो।

एक बार वे दल-बल सहित उज्जयिनी पहुँचे। मालवा नरेश देवपाल ने उनका अच्छा खासा सम्मान किया। वे उनके काव्य से बड़े प्रभावित थे। एक दिन मालवा नरेश पंडित हरिहर से बोले—

"कविवर ? आजकल गुजरात की राज-सभा के विषय में बड़ी-बड़ी बातें सुनता हूँ। प्रतिदिन ही कोई न कोई विद्वान् या कवि वहाँ से आता है और अमात्य वस्तुपाल और उनके कवि-मण्डल के गुणगान करता है।"

"हाँ, मनु ! सुनता तो मैं भी हूँ, किन्तु विश्वास नहीं होता।"

"क्यों पंडित ! विश्वास क्यों नहीं होता ! काव्य रचना के अतिरिक्त कोई मालवा या काशी की बपौती तो है नहीं। और फिर सब कहते हैं तो कुछ न कुछ बात तो होनी ही चाहिए।"

"लेकिन मनु ! भाटों ने तो वस्तुपाल को 'लघुभोजराज' कहना प्रारम्भ कर दिया है। कहते हैं कि वह अद्वितीय कविता भी करते हैं। राजनीति, साहित्य, कला इत्यादि अनेक क्षेत्र में वह निपुण हैं, या उनका यश फैल रहा है। किन्तु सच पूछो तो मैं तो कुछ भी कहने में असमर्थ हूँ।"

मालवा नरेश मन ही मन गुजरात की चारों तरफ फैलती हुई कीर्ति से कुछ ईर्ष्या करने लगे थे और पंडित मदन बाल सरस्वती को सर्वश्रेष्ठ कवि समझते थे। इसलिए कुछ उदास थे। अस्तु, राजा देवपाल ने कहा—

"अब जैसा कहा न कविवर कि एक बार गुजरात का भी चक्कर लगाओ। सम्भव भाग्य तेज हो जाय, भगवान् सोमनाथ के दर्शन भी करते आना और उस वस्तुपाल और उसके कवित्व की परीक्षा भी लेते आना।"

"विचार तो मैं करता हूँ। अब आपकी आज्ञा है तो कल ही जाता हूँ। वैसे ठाट-बाट वालों के मुँह बात का मैं प्रायः मजाक ही करता आया हूँ।"

"सो तो ठीक ही है। लेकिन मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि वस्तुपाल को तुम तुच्छ मत समझ लेना।

"क्या मनु ! आप भी उसका गुणगान करने लगे ?"

"हाँ पंडित ! यह तो तुम जानते ही हो कि [illegible] होता है तो किसी का भी [illegible] नहीं रहता। मैं मालवा [illegible] हूँ। [illegible] और भी हो रहा है उसके [illegible]

तो भला काम चले ? सो मैं बड़ी सावधानी से गुजरात के अभ्युदय को देख रहा हूँ। गजनी के सुलतान ने जिस गुजरात को रोंदकर मटियामेट कर दिया था, वह गुजरात आज उठकर खड़ा हो गया है और उसकी ललकार मेरी क्षिप्रा के तटों पर गूँजने लगी है। क्या मैं इस सत्य की ओर से आँख मूँदकर बैठ सकता हूँ ? और इस सारी महाक्रांति के पीछे जिस मनुष्य का विचित्र मस्तिष्क और चरित्र है उसका नाम है वस्तुपाल। इसीलिये कहता हूँ कविवर, कि तुम अवश्य गुजरात जाओ और लौटकर मुझे बताओ कि क्या वस्तुपाल एक विलक्षण अमात्य होने के साथ ही साथ एक ऐसा विद्वान् और कलामर्मज्ञ भी है कि लोग उसे 'भोजराज' के नाम से संबोधित करने लगें ?"

"तब ठीक है महाराज ! आपका ऐसा ही विचार है तो मैं एक चक्कर उधर का लगाए लेता हूँ।"—पंडित हरिहर ने उत्तर दिया। उनके स्वर में गर्व की अस्पष्ट ध्वनि थी।

"और लौटते में मुझे तथ्य से अवगत अवश्य कराना। भूलना नहीं कविवर ! इस विषय में मुझे आपसे अधिक प्रामाणिक व्यक्ति दूसरा नहीं मिलेगा।"

मालवा-नरेश द्वारा की गई अपनी इस प्रशंसा से पंडित हरिहर बड़े प्रसन्न हुए और दूसरे ही दिन गुजरात की ओर चल दिये।

हाथी पर सवार और गर्व के गजराज पर आसीन पंडित हरिहर एक दिन धोलके पहुँच ही गए। वस्तुपाल तो उस समय खम्भात और भृगुकच्छ की ओर गए हुए थे, राणा वीरधवल ने ही उनका स्वागत किया। राज-सभा में वे बड़ी शान से अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ बैठे।

राणा वीरधवल वीर थे, किन्तु जहाँ साहित्य और कला का प्रसंग हो वहाँ वे बड़े आकुल हो जाते थे। इस क्षेत्र में उनकी कोई गति न थी। वस्तुपाल होते थे, राजगुरु सोमेश्वर होते थे तो उन्हें चिन्ता नहीं रहती थी। किन्तु इस समय वस्तुपाल नहीं थे। सोमेश्वर भी उन दिनों राणा द्वारा बनवाए गए वीरनारायण के मन्दिर में अंकित किये जाने

के लिये एक सौ आठ श्लोकों का प्रशस्तिकाव्य लिखने में व्यस्त थे। वे दिनरात उसी में डूबे रहते थे और अपने ही रचे गए नवीन, उत्तम छन्दों पर झूमते रहते थे।

पंडित हरिहर जब राजसभा में आए तो राणा ने तुरन्त समाचार भेजकर पंडित सोमेश्वर को बुलवाया। सोमेश्वर कुछ विलंब से अपने एक सौ आठ छन्द पूर्ण करके ही राज-सभा में पहुँचे—

राणा वीरधवल ने राजगुरु से कहा—

"कविवर! अतिथि आए हैं। पंडित हरिहर का नाम तो आपने सुना ही होगा।"

"अतिथि का स्वागत है। हाँ, पंडित हरिहर का नाम किसने नहीं सुना? मैंने भी सुना है। अहोभाग्य कि वे आज धोलके पधारे।"

"सोमेश्वरजी, अतिथि कवि की इच्छा कुछ काव्य सुनने-सुनाने की है।"

"पंडित हरिहर के योग्य काव्य तो राजन् वस्तुपालजी होते तो सुनाते।"

"ऐसी क्या बात है सोमेश्वरजी", पंडित हरिहर मुस्कराते हुए बोले, "मैंने तो वस्तुपालजी के समस्त कवि-मंडल की प्रशंसा बड़ी दूर से सुनी है। आपकी तो बहुत प्रशंसा सुनी है। कुछ सुनाइए।"

"मैं किस योग्य हूँ कविवर! किन्तु आप पधारे हैं तो आपके स्वागत में कुछ तो सुनाऊँगा।"

"हाँ, हाँ, अवश्य।"

इसके बाद राजगुरु सोमेश्वर ने अपने नवीनतम काव्य के एक सौ आठ श्लोक जिन्हें उन्होंने अभी-अभी रचकर समाप्त किया था राजसभा में सुनाने आरम्भ किए।

काव्य उत्तम था। एक-एक छन्द ऐसा जैसे मोतियों की लड़ी में एक-एक मोती पिरोया गया। छन्दों में रस और भावों का माधुर्य था, जैसे मोतियों में आब होती है। उन्हें सुन-सुनकर पंडित हरिहर का

कवि-हृदय झूम उठा। उनकी आँखें अधमुँदी हो गईं और वे एक-एक पंक्ति का आनन्द लेने लगे।

कुछ ही समय इस प्रकार व्यतीत हुआ था कि पंडित हरिहर का अभिमान जागा उन्हें याद आया कि वे तो दिग्विजय करने निकले हैं। उन्हें तो भारतवर्ष के समस्त कवियों को अपने से हीन ठहराना है। यह वात याद आने पर वे सचेत हो गए। सोमेश्वर के काव्य में कोई दोष, कोई अभाव खोजने का उन्होंने प्रयत्न किया, किन्तु वह उन्हें नहीं मिला। वे चुपचाप काव्य सुनते रहे।

जब सोमेश्वर अपना काव्य सुना चुके तब राणा वीरधवल ने प्रसन्न और संतुष्ट होते हुए और अपने राजगुरु पर गौरव का अनुभव करते हुए पंडित हरिहर से कहा—

"कहिये कविवर! पसन्द आया आपको हमारे सोमेश्वरजी का काव्य?"

"हाँ राजन्! सुन्दर, बहुत सुन्दर काव्य है।"

पंडित सोमेश्वर ने तुष्टि का अनुभव करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा—

"यह आपका वड़प्पन है हरिहरजी! मैं तो आपके सामने वालक के समान ही हूँ। हाँ, श्रेष्ठ काव्य तो आपको तब सुनने को मिलेगा जब हमारे अमात्य यहाँ आएँगे। किन्तु फिर भी यह तो कहिये कि आपको मेरे काव्य में कोई दोप दिखाई देता है?"

"नहीं नहीं, विलकुल नहीं। एकदम खरा काव्य है। किन्तु······।"

"किन्तु क्या कविवर?"

"अ······कुछ नहीं सोमेश्वरजी, काव्य तो उत्तम है।"

"लेकिन आप कुछ कहने जा रहे थे। कृपा करके कह डालिये।"

"अरे जाने दीजिए कविवर! कोई लाभ नहीं। सुनकर आपको व्यर्थ ही दुःख होगा और······।"

राणा वीरधवल का भी कुतूहल जागृत हुआ कि आखिर पण्डित हरिहर कहना क्या चाहते हैं, उसमें कोई दोष नहीं हैं तब और क्या

बात है ? उन्होंने कहा—

"पंडित हरिहरजी ! आपके मन में जो कुछ बात आई है वह कह दीजिए। आरम्भ करके इस प्रकार चुप रह जाना तो उचित नहीं लगता।"

तब पंडित हरिहर एक कुटिल मुस्कान बिखेरते हुए बोले—

"राजन् ! काव्य तो उत्तम है। किन्तु यह सोमेश्वरजी द्वारा रचित नहीं है।"

सोमेश्वर चौंके, राणा चौंके, सारी राजसभा चौंक पड़ी—यह क्या कह रहे हैं पंडित हरिहरजी ? अभी-अभी तो राजगुरु ने अपना काव्य लिखकर समाप्त किया है, बल्कि उसे पूर्ण करके आने के कारण उन्हें राज-सभा में पहुँचने में भी विलम्ब हो गया था। तब यह कैसे कह रहे हैं कि यह काव्य सोमेश्वर द्वारा रचित नहीं है ?

विस्मय में डूबे हुए सोमेश्वर बोले—

"आपकी बात को मैं तो समझ नहीं सका कविवर ! यह काव्य तो मैंने अभी-अभी रचकर पूर्ण किया है।"

"असत्य ! यह काव्य तो चोरी किया हुआ है।"

इस स्पष्ट और कटु उक्ति पर तो राज-सभा स्तब्ध रह गई। सोमेश्वर विस्मयविमूढ हो गए। उनके मुख से एक शब्द भी निकल नहीं सका।

अन्त में राणा वीरधवल ने ही कहा—

"पंडित हरिहरजी ! आपको इस बात का इस सभा में प्रमाण देना चाहिए कि यह काव्य चोरी का है, सोमेश्वरजी का नहीं।"

"इसमें प्रमाण क्या देने का है ? यह काव्य तो उज्जयिनी में महाकाल के मंदिर में अंकित है। मैं वहाँ गया हूँ। उत्तम काव्य होने के कारण मुझे सहज ही याद रह गया है। कहें तो मैं सारा काव्य इस सभा में शब्दशः सुना दूँ ?"

"हाँ, सुनाइये।"—राणा ने चिन्तित होते हुए कहा।

कवि-हृदय झूम उठा। उनकी आँखें अधमुँदी हो गईं और वे एक-एक पंक्ति का आनन्द लेने लगे।

कुछ ही समय इस प्रकार व्यतीत हुआ था कि पंडित हरिहर का अभिमान जागा उन्हें याद आया कि वे तो दिग्विजय करने निकले हैं। उन्हें तो भारतवर्ष के समस्त कवियों को अपने से हीन ठहराना है। यह वात याद आने पर वे सचेत हो गए। सोमेश्वर के काव्य में कोई दोप, कोई अभाव खोजने का उन्होंने प्रयत्न किया, किन्तु वह उन्हें नहीं मिला। वे चुपचाप काव्य सुनते रहे।

जव सोमेश्वर अपना काव्य सुना चुके तव राणा वीरधवल ने प्रसन्न और संतुप्ट होते हुए और अपने राजगुरु पर गौरव का अनुभव करते हुए पंडित हरिहर से कहा—

"कहिये कविवर ! पसन्द आया आपको हमारे सोमेश्वरजी का काव्य ?"

"हाँ राजन् ! सुन्दर, वहुत सुन्दर काव्य है।"

पंडित सोमेश्वर ने तुष्टि का अनुभव करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा—

"यह आपका वड़प्पन है हरिहरजी ! मैं तो आपके सामने वालक के समान ही हूँ। हाँ, श्रेष्ठ काव्य तो आपको तव सुनने को मिलेगा जव हमारे अमात्य यहाँ आएँगे। किन्तु फिर भी यह तो कहिये कि आपको मेरे काव्य में कोई दोप दिखाई देता है ?"

"नहीं नहीं, विलकुल नहीं। एकदम खरा काव्य है। किन्तु……।"

"किन्तु क्या कविवर ?"

"अ……कुछ नहीं सोमेश्वरजी, काव्य तो उत्तम है।"

"लेकिन आप कुछ कहने जा रहे थे। कृपा करके कह डालिये।"

"अरे जाने दीजिए कविवर ! कोई लाभ नहीं। सुनकर आपको व्यर्थ ही दुःख होगा और……।"

राणा वीरधवल का भी कुतूहल जागृत हुआ कि आखिर पण्डित हरिहर कहना क्या चाहते हैं, उसमें कोई दोप नहीं हैं तव और क्या

पंडित हरिहर ने वे पूरे एक सौ आठ श्लोक धाराप्रवाह, जैसे के तैसे, भरी सभा में सुना दिये। उनके पीछे बैठे हुए उनके पाँच सौ शिष्य अपने गुरु की इस विजय पर प्रसन्न होकर हँसने लगे।

गुजरात की राज-सभा स्तब्ध।

राजगुरु सोमेश्वर के काटो तो खून नहीं। अपमान की अनुभूति से वे जमीन में गड़ जाने को हो गए। उनके मस्तक से पसीने की धारा छूटकर उनके वस्त्र भिगोने लगी।

राणा वीरधवल हैरान, दुखी और किंकर्तव्यविमूढ़। किसी प्रकार वे राजगुरु को सम्बोधित करते हुए बोले—

"सोमेश्वरजी ! आपसे हमें ऐसी आशा तो नहीं थी। आज आपने गुजरात के माथे पर कलंक का टीका लगवा दिया। आखिर आपने ऐसा किया क्यों ?"

बेचारे सोमेश्वरजी की आँखों के सामने तो पृथ्वी और आकाश ताण्डव करने लगे थे। उन्हें लग रहा था कि जैसे वे मूर्छित होकर गिर जायेंगे। उन्होंने फटी-सी आँखों से एक बार पंडित हरिहर की ओर देखा और फिर 'यह झूठ है'……'यह झूठ है'……'यह झूठ है' चिल्लाते हुए वे राज-सभा से चले गए।

घर आकर भोले सोमेश्वरजी घण्टों तक पत्थर का बुत बनकर बैठे रहे। उनके सामने ताड़पत्र पर लिखा हुआ उनका काव्य बिखरा पड़ा था। बहुत समय तक वे न हिले न डुले, न किसी से बोले न चाले। रात होने को आई। सारे कक्ष में अँधेरा छाने लगा। तब सोमेश्वर उठे। उन्होंने अपने आजतक लिखे हुए सभी काव्यों की एक गठरी बनाई और चुपचाप किसी से बिना कुछ कहे-सुने वे जंगल के रास्ते पर चल पड़े।

जंगल में एक बावड़ी पर पहुँचकर पंडित सोमेश्वर पानी में छलांग लगाने से पहले एक बार अपनी जीवनभर की कमाई को बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखते रह गए—रात-रात भर जागकर उन्होंने कितने

परिश्रम और उमग से इतने सारे श्रेष्ठ काव्य का सृजन किया था ! उनका वह सारा परिश्रम तो आज धूल में मिल ही गया था, ऊपर से उनके माथे पर कलक और लग गया था, चोरी का। अब इस कलक को लेकर क्या वे जीवित रह सकते थे ?

कुछ देर तक वे यही सब सोचते हुए अपनी रचनाओ को देखते रहे और फिर वह गठरी उठाकर उन्होंने पानी में कूदने की तैयारी की।

उसी समय उन्हे भृगुकच्छ के मार्ग पर दूर से मशालो का प्रकाश झिलमिलाता हुआ दिखाई दिया और घोडो की टाप उनके कानो से टकराने लगी। इस समय इस मार्ग से धोलके की ओर कौन बढा चला आ रहा है यह जानने की उत्कठा में पडित सोमेश्वर ठहर गए। प्रकाश आगे बढता गया और कुछ ही देर में दस-बीस सैनिको के आगे-आगे घोडे पर सवार वस्तुपाल को उन्होंने पहिचान लिया। तबतक वस्तुपाल उस बावडी के बिलकुल समीप पहुँच चुके थे। बावडी उस वन-पथ के बिलकुल किनारे ही थी। वस्तुपाल ने मशालो की झिलमिल रोशनी में एक व्यक्ति को बावडी के चबूतरे पर खडा देखा और पुकारकर पूछा—

'कौन है वहाँ ?"

कोई उत्तर नहीं आया। पडित सोमेश्वर की हालत बडी विचित्र हो रही थी। अन्तिम समय मे अपने बालपन के मित्र से मिलकर उन्हे प्रसन्नता भी थी और सीमातीत हैरानी भी कि वे वस्तुपाल को अपना कौन-सा मुँह दिखाएँगे, उनसे क्या कहेगे ?

अपने प्रश्न का उत्तर न मिलने पर वस्तुपाल को कुछ खीझ हुई। वे अपना घोडा आगे बढाकर बावडी के किनारे पहुँच गए। जाकर उन्होंने उस सकोच से घबराते हुए व्यक्ति को देखा तो राजगुरु पडित सोमेश्वर ! जगल मे बावडी के किनारे सोमेश्वरजी ? और उनके हाथ मे बँधी हुई एक गठरी ? तुरन्त घोडे से नीचे उतरकर वे सोमेश्वरजी के पास गए और बोले—

"सोमेश्वरजी ! आप यहाँ ? इस समय ? क्या कर रहे हो इस

सुनसान जंगल में इस समय ? इस गठरी में क्या लिये हो ?"

पंडित सोमेश्वर की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। इतनी देर वाद पहली वार उनके कंठ से अव आवाज़ निकली—

मैं लुट गया मित्र ! मैं वरवाद हो गया। गुजरात के राजगुरु कुमारदेव का पुत्र कलंकित हो गया। मेरा सव कुछ समाप्त हो गया। अच्छा हुआ जो इस अन्तिम समय में आप आ गए, अन्यथा यह इच्छा भी शेष रह जाती।"

इतना कहकर सोमेश्वर फूट-फूट कर रो पड़े। वस्तुपाल को कुछ समझ में नहीं आया कि माजरा क्या है ? वड़ी कठिनाई से अपने मित्र को आश्वस्त करते हुए वे वोले—

"अरे पंडित, इतना घवरा क्यों रहे हो ? मुझे कुछ कहो तो सही कि आखिर हुआ क्या है ? मेरे रहते कोई तुम्हें लूट ले यह हो सकता है क्या ? और तुम्हें कलंक लगाने वाला कौन माई का लाल गुजरात में पैदा हो गया, यह भी तो सुनूँ ?"

वहुत देर वाद पण्डित सोमेश्वर ने सारी घटना वस्तुपालजी को वताई और कहा—

"अव मेरा जीवन व्यर्थ है, मित्र ! मैं किसी को अपना मुँह भी नहीं दिखा सकता। तुम न आते तो अवतक मैं अपने इस जीवन को समाप्त कर देता।"

सारी घटना को सुनकर कुछ क्षण तो वस्तुपाल गम्भीर हो कर विचार करते रह गए और फिर एकाएक वे जोर से हँस पड़े। हँसते-हँसते ही वोले—

"वड़े भोले हो तुम भी सोमेश्वर ! इतनी मामूली-सी वात पर इस तरह घवरा गए। चलो-चलो मेरे साथ, कल उस पंडित हरिहर को वताता हूँ कि कौन चोर है और कौन साहूकार।"

"किन्तु मैं अपमानित हो गया हूँ वस्तुपाल·······।"

"चिन्ता न करो। तुम्हारे अपमान का पूरा वदला लूँगा। पागलपन

मत करो। चलो यहाँ से।"

आश्वस्त होकर पण्डित सोमेश्वर आखिर वस्तुपाल के साथ धोलके लौटे। मार्ग मे हँसी करते हुए वस्तुपाल ने कहा—

"लेकिन पण्डित! मुझे तो सच-सच बता ही दो, यह काव्य रचा तो तुम्ही ने है न?"

"क्या कहते हो मित्र! अब तुम ही मुझ पर सदेह करने लगे? तब मुझे वापिस ही क्यो लिए चले जा रहे हो?"

वस्तुपाल यह सुनकर एक मुक्त हँसी हँस पडे। उन्होंने उत्तर मे इतना ही कहा—

"कल गुजरात की राज-सभा मे फैसला होगा।"

× × × ×

घर आकर गुजरात के अमात्य ने तुरन्त एक मालवी योद्धा का वेश धारण किया। अपनी वेशभूषा और चालढाल सब हूबहू मालवी बनाकर वे घर से बाहर निकल पडे।

दूर-दूर तक जिसकी ख्याति फैल रही थी, ऐसी गुजरात की राज-सभा म अपनी विजय का डका बजाकर पडित हरिहर ने आज गहरी छानी थी। छनती तो खैर प्रतिदिन थी, किन्तु आज कुछ विशेष इन्तजाम के साथ छनी थी। बादाम, पिस्ते, केशर इत्यादि आनन्दप्रद और पौष्टिक पदार्थों के साथ घुटी पिसी विजया भवानी का मज़ा आज पडित हरिहर ने दुगनी मात्रा मे प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया था और मस्ती म डूबे हुए वे अपनी राजसी शैया पर लेटे हुए थे। उनके दो-एक विश्वस्त शिष्य उनकी पगचपी कर रहे थे और विजया भवानी की कृपा से आसमान में चढ़े हुए अपने गुरुदेव को उनकी प्रशसा के पुल बाँध-बाँधकर आसमान म ही लटकाए हुए थे।

उसी समय पडित हरिहर की सेवा मे एक मालवी योद्धा उपस्थित

सुनसान जंगल में इस समय ? इस गठरी में क्या लिये हो ?"

पंडित सोमेश्वर की आँखों से झर-झर आँसू वहने लगे। इतनी देर वाद पहली वार उनके कंठ से अव आवाज़ निकली—

मैं लुट गया मित्र ! मैं वरवाद हो गया। गुजरात के राजगुरु कुमारदेव का पुत्र कलंकित हो गया। मेरा सव कुछ समाप्त हो गया। अच्छा हुआ जो इस अन्तिम समय में आप आ गए, अन्यथा यह इच्छा भी शेप रह जाती।"

इतना कहकर सोमेश्वर फूट-फूट कर रो पड़े। वस्तुपाल को कुछ समझ में नहीं आया कि माजरा क्या है ? वड़ी कठिनाई से अपने मित्र को आश्वस्त करते हुए वे वोले—

"अरे पंडित, इतना घवरा क्यों रहे हो ? मुझे कुछ कहो तो सही कि आखिर हुआ क्या है ? मेरे रहते कोई तुम्हें लूट ले यह हो सकता है क्या ? और तुम्हें कलंक लगाने वाला कौन माई का लाल गुजरात में पैदा हो गया, यह भी तो सुनूँ ?"

वहुत देर वाद पण्डित सोमेश्वर ने सारी घटना वस्तुपालजी को वताई और कहा—

"अव मेरा जीवन व्यर्थ है, मित्र ! मैं किसी को अपना मुँह भी नहीं दिखा सकता। तुम न आते तो अवतक मैं अपने इस जीवन को समाप्त कर देता।"

सारी घटना को सुनकर कुछ क्षण तो वस्तुपाल गम्भीर हो कर विचार करते रह गए और फिर एकाएक वे जोर से हँस पड़े। हँसते-हँसते ही वोले—

"वड़े भोले हो तुम भी सोमेश्वर ! इतनी मामूली-सी वात पर इस तरह घवरा गए। चलो-चलो मेरे साथ, कल उस पंडित हरिहर को वताता हूँ कि कौन चोर है और कौन साहूकार।"

"किन्तु मैं अपमानित हो गया हूँ वस्तुपाल.........।"

"चिन्ता न करो। तुम्हारे अपमान का पूरा वदला लूँगा। पागलपन

मत करो। चलो यहाँ से।"

आश्वस्त होकर पण्डित सोमेश्वर आख़िर वस्तुपाल के साथ धोलके लौटे। मार्ग मे हँसी करते हुए वस्तुपाल ने कहा—

"लेकिन पण्डित ! मुझे तो सच-सच बता ही दो, यह काव्य रचा तो तुम्ही ने है न ?"

"क्या कहते हो मित्र ! अब तुम ही मुझ पर सदेह करने लगे ? तब मुझे वापिस ही क्यों लिये चले जा रहे हो ?"

वस्तुपाल यह सुनकर एक मुक्त हँसी हँस पड़े। उन्होंने उत्तर मे इतना ही कहा—

"कल गुजरात की राज-सभा मे फैसला होगा।"

× × × ×

घर आकर गुजरात के अमात्य ने तुरन्त एक मालवी योद्धा का वेश धारण किया। अपनी वेशभूषा और चालढाल सब हूबहू मालवी बनाकर वे घर से बाहर निकल पडे।

दूर-दूर तक जिसकी ख्याति फैल रही थी, ऐसी गुजरात की राज-सभा मे अपनी विजय का डका बजाकर पडित हरिहर ने आज गहरी छानी थी। छनती तो खैर प्रतिदिन थी, किन्तु आज कुछ विशेप इन्तजाम के साथ छनी थी। बादाम, पिस्ते, केशर इत्यादि आनन्दप्रद और पौष्टिक पदार्थों के साथ घुटी-पिसी विजया भवानी का घटा आज पडित हरिहर ने दुगनी मात्रा मे प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया था और मस्ती मे डूबे हुए वे अपनी राजसी शैया पर लेटे हुए थे। उनके दो-एक विश्वस्त शिष्य उनकी पगचंपी कर रहे थे और विजया भवानी की कृपा से आसमान में चढ़े हुए अपने गुरुदेव को उनकी प्रशसा के पुल बाँध-बाँधकर आसमान मे ही लटकाए हुए थे।

उसी समय पडित हरिहर की सेवा में एक मालवी योद्धा उपस्थित

सुनसान जंगल में इस समय ? इस गठरी में क्या लिये हो ?"

पंडित सोमेश्वर की आँखों से झर-झर आँसू वहने लगे। इतनी देर वाद पहली वार उनके कंठ से अव आवाज़ निकली—

मैं लुट गया मित्र ! मैं वरवाद हो गया। गुजरात के राजगुरु कुमारदेव का पुत्र कलंकित हो गया। मेरा सव कुछ समाप्त हो गया। अच्छा हुआ जो इस अन्तिम समय में आप आ गए, अन्यथा यह इच्छा भी शेष रह जाती।"

इतना कहकर सोमेश्वर फूट-फूट कर रो पड़े। वस्तुपाल को कुछ समझ में नहीं आया कि माजरा क्या है ? वड़ी कठिनाई से अपने मित्र को आश्वस्त करते हुए वे वोले—

"अरे पंडित, इतना घवरा क्यों रहे हो ? मुझे कुछ कहो तो सही कि आखिर हुआ क्या है ? मेरे रहते कोई तुम्हें लूट ले यह हो सकता है क्या ? और तुम्हें कलंक लगाने वाला कौन माई का लाल गुजरात में पैदा हो गया, यह भी तो सुनूँ ?"

वहुत देर वाद पण्डित सोमेश्वर ने सारी घटना वस्तुपालजी को वताई और कहा—

"अव मेरा जीवन व्यर्थ है, मित्र ! मैं किसी को अपना मुँह भी नहीं दिखा सकता। तुम न आते तो अवतक मैं अपने इस जीवन को समाप्त कर देता।"

सारी घटना को सुनकर कुछ क्षण तो वस्तुपाल गम्भीर हो कर विचार करते रह गए और फिर एकाएक वे जोर से हँस पड़े। हँसते-हँसते ही वोले—

"वड़े भोले हो तुम भी सोमेश्वर ! इतनी मामूली-सी वात पर इस तरह घवरा गए। चलो-चलो मेरे साथ, कल उस पंडित हरिहर को वताता हूँ कि कौन चोर है और कौन साहूकार।"

"किन्तु मैं अपमानित हो गया हूँ वस्तुपाल.......।"

"चिन्ता न करो। तुम्हारे अपमान का पूरा वदला लूँगा। पागलपन

मत करो। चलो यहाँ से।"

आश्वस्त होकर पण्डित सोमेश्वर आखिर वस्तुपाल के साथ घोलके लौटे। मार्ग में हँसी करते हुए वस्तुपाल ने कहा—

"लेकिन पण्डित! मुझे तो सच-सच बता ही दो, यह काव्य रचा तो तुम्ही ने है न?"

"क्या कहते हो मित्र! अब तुम ही मुझ पर संदेह करने लगे? तब मुझे वापिस ही क्यों लिये चले जा रहे हो?"

वस्तुपाल यह सुनकर एक मुक्त हँसी हँस पड़े। उन्होंने उत्तर में इतना ही कहा—

"कल गुजरात की राज-सभा में फैसला होगा।"

× × × ×

घर आकर गुजरात के अमात्य ने तुरन्त एक मालवी योद्धा का वेश धारण किया। अपनी वेशभूषा और चालढाल सब हूबहू मालवी बनाकर वे घर से बाहर निकल पड़े।

दूर-दूर तक जिसकी ख्याति फैल रही थी, ऐसी गुजरात की राज-सभा में अपनी विजय का डंका बजाकर पंडित हरिहर ने आज गहरी छानी थी। छनती तो खैर प्रतिदिन थी, किन्तु आज कुछ विशेष इन्तजाम के साथ छनी थी। बादाम, पिस्ते, केशर इत्यादि आनन्दप्रद और पौष्टिक पदार्थों के साथ घुटी-पिसी विजया भवानी का भटा आज पंडित हरिहर ने दुगनी मात्रा में प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया था और मस्ती में डूबे हुए वे अपनी राजसी शैया पर लेटे हुए थे। उनके दो-एक विश्वस्त शिष्य उनकी पगचपी कर रहे थे और विजया भवानी की कृपा से आसमान में चढ़े हुए अपने गुरुदेव को उनकी प्रशंसा के पुल बाँध-बाँधकर आसमान में ही लटकाए हुए थे।

उसी समय पंडित हरिहर की सेवा में एक मालवी योद्धा उपस्थित

हुआ। आदरपूर्वक उसने कविवर को प्रणाम किया और विनीत भाव से एक ओर बैठ गया। कविवर ने अपनी झपकती हुई लाल-लाल आँखों से उस व्यक्ति को देखा और कहा—

"मालवी भटराज दिखाई देते हो ?"

"जी प्रभु ! आपको तो सरस्वती के वरदान के साथ-साथ दिव्य दृष्टि भी प्राप्त है। आपने ठीक ही जाना उज्जयिनी का वासी हूँ।"

'प्रभु' मग्न थे, अब और-भी प्रसन्न हो गए। बोले—

"योद्धा होकर भी विनीत हो। यह बड़ी अच्छी बात है। इधर कैसे आए ?"

"प्रभास पाटन में भगवान् सोमनाथ के दर्शन करने निकला था। उधर से लौटते हुए सोचा कि गुजरात की राज-सभा और अमात्य वस्तुपाल के कवि-मंडल की बड़ी कीर्ति सुनी है तो जरा देखता चलूँ। किन्तु प्रभु, आज आपने भरी-सभा में उस कवि-मंडल के सिरमौर सोमेश्वर पंडित की जो गत बनाई उसे देखकर बड़ी आत्मतृप्ति हुई। अपने मालवा की इज्जत रह गई।"

तरंग पर तरंग चढ़ गई। पंडित हरिहर आनन्दातिरेक में उठकर कुछ सीधे बैठ गए और बोले—

"अरे भटराज ! ऐसी-ऐसी तो कितनी राजसभाएँ देख चुका हूँ। सोमेश्वर जैसे कितने ही कवियों को पछाड़ चुका हूँ। वह तो आज वस्तुपालजी नहीं थे वरना उन्हें भी कविता लिखना सिखा देता।"

मालवी भटराज के ओठों पर एक रहस्यपूर्ण मुस्कान फैल गई। उसे दबाते हुए उसने कहा—

"आप जैसे कविशिरोमणि के सामने क्या सोमेश्वर और क्या वस्तुपाल ? किन्तु प्रभु आप तो अपने ही हैं, इसीलिये कहता हूँ कि यह अच्छा ही हुआ कि उस समय वस्तुपाल उपस्थित नहीं थे।"

"क्यों ? वह होता तो क्या कर लेता ?"

अत्यंत विनय प्रदर्शित करते हुए मालवी भटराज ने उत्तर दिया—

"कर तो वे क्या लेंगे आपका ? किन्तु सुना है कि वे थोड़ी उखाड़-पछाड़ भी कर लेते हैं।"

"क्या मतलब तुम्हारा उखाड़-पछाड़ से ?"

"कुछ विशेष नहीं, प्रभु ! किन्तु देखिये न राणा वीरधवल की बुद्धि पर तो जैसे पत्थर पड गए हैं। अब यदि वस्तुपाल होते तो क्या वे इतना पता भी न लगाते कि उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर में किस स्थान पर वह काव्य अंकित किया हुआ है ?"

पंडित हरिहर एकदम चौक उठे। कुछ क्षण उन्होंने गौर से मालवी भटराज के चेहरे की ओर देखा और फिर अपने शिष्यों को छुट्टी देकर कुछ फुसफुसाते हुए स्वर में भटराज से कहा—

"देखो भटराज ! तुम तो अपने मालवा के ही हो न ?"

"बिल्कुल उज्जयिनी का वासी हूँ, प्रभु। प्रतिदिन महाकाल के दर्शन करने जाता हूँ। उस विशाल मंदिर के एक-एक कोने से परिचित हूँ। बचपन में तो घण्टों छोकरों के साथ वहीं आँख-मिचौनी खेलता रहता था। आप निश्चिन्त रहें।"

पंडित हरिहर का नशा खट्टा-सा होने लगा था। उन्होंने कहा—

"तुम मालवा की तरफ कब जा रहे हो भटराज ?"

"बस, बड़े सवेरे ही चल दूँगा। जाने से पहले आपके दर्शन एक बार और कर लेने का मोह छोड़ नहीं सका तो कष्ट देने चला आया था कविवर !"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। हाँ तुम प्रातःकाल ही उज्जयिनी के लिये प्रस्थान कर जाओ। महाराज देवपाल के नाम मुझे कुछ संदेश देना है वह तुम उन्हें शीघ्र दे देना। मेरे माध्यम से तुम्हें महाराज के समीप पहुँचने का अवसर मिल जायगा। राज-कृपा जैसे भी हो प्राप्त करनी चाहिये।"

मालवी भटराज इस छिपी हुई रिश्वत की बात सुनकर फिर मन-ही-मन मुस्कराया। प्रगट में वह बोला—

"आपकी कृपा से इतना हो जाय तो फिर क्या चाहिये प्रभु ! अवन्ति-नरेश से कह दूँगा कि आपने बड़े कौशल से गुजरात के राजकवि का मान-मर्दन कर दिया है"।

"अब इस प्रसंग को रहने दो भटराज !"

"मैं तो यह प्रातःकाल ही चला प्रभु ! किन्तु मेरी यह जिज्ञासा बनी हुई है कि आपने सोमेश्वरजी के काव्य को शब्दशः कैसे दुहरा दिया ?"

यह कहकर मालवी भटराज ने शीघ्रता से इधर-उधर एक दृष्टि फेंकी मानो वह इस रहस्य को बड़ा गुप्त रखना चाहता हो। पंडित हरिहर उसके जाल में फँस ही चुके थे। धीरे से उन्होंने कहा—

"तुम तो अपने ही आदमी हो भटराज ! तुमसे क्या छिपाना ? वस्तुतः मुझे सरस्वती का वरदान प्राप्त है कि एक बार सुनकर मुझे किसी भी काव्य के एक सौ आठ श्लोक तक कंठस्थ हो जाते हैं।"

"धन्य है, धन्य है, प्रभु ! यह भी बड़ी तपस्या की बात है।"

"सो तो है ही भटराज ! अच्छा, तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं है ?"

"नहीं, नहीं प्रभु ! आपके दर्शन हुए, कृपा प्राप्त हुई, बस यही पर्याप्त है। अच्छा तो चलूँ, सुबह जल्दी ही प्रस्थान करना है न ?"

अपराधी का हृदय सरलता से आश्वस्त नहीं होता। पंडित हरिहर के मन में भी चोर बैठा था और उन्हें कुरेद-कुरेदकर कह रहा था—कहीं इस मालवी भटराज ने पोल खोल दी तो ?

अस्तु, अपने गले में पड़ी हुई एक बहुमूल्य मोतीयों की माला निकाल कर पंडित हरिहर ने बड़े प्रेमपूर्वक मालवी भटराज को देते हुए कहा—

"भटराज ! यह तो लेते ही जाओ। इतनी दूर आए हो और खाली हाथ घर लौटोगे तो भटराजिन रूठ जायगी। मेरी ओर से यह प्रेमोपहार तो लेते ही जाओ।"

मालवी नटराज ने मूछों ही मूछों में मुस्कराते हुए वह मोतियों की माला ले ली और कवीश्वर को प्रणाम करके वह अंधकार में विलीन हो गया।

× × × ×

दूसरे दिन राज सभा में तिल रखने के लिये भी ठौर नहीं था। वस्तुपाल लौट आए थे और धोलके की प्रजा यह देखने के लिये बड़ी उत्सुक थी अब वे क्या करते हैं? पंडित सोमेश्वर के अपमान के बाद अब पंडित हरिहर और वस्तुपाल में कैसी ठनती है। गुजरात का अमात्य गुजरात के गौरव की रक्षा किस प्रकार करता है यह देखने के लिये उत्कंठित होना लोगों के लिये स्वाभाविक ही था।

राज सभा में पंडित हरिहर उसी स्थान पर साथ विराज हुए थे। वस्तुपाल कुछ देर से पहुँचे। जब वे आए तब उनके अद्भुत व्यक्तित्व को देखकर पंडित हरिहर मन ही मन कुछ हिल गए। वस्तुपाल का ऊँचा भरा-पूरा बलिष्ठ शरीर, गहुआँ रंग, सपनीली और चमकती हुई आँखें उन्हें अन्य व्यक्तियों से सहज ही अलग और विशिष्ट कर देती थीं।

अपने आसन पर बैठने के बाद अमात्य ने पंडित हरिहर को संबोधित करते हुए कहा—

कवीश्वर! गुजरात की राज-सभा में एक बार आपका स्वागत फिर से करता हूँ। खेद है मैं कल उपस्थित नहीं हो सका था।

'कोई बात नहीं अमात्यवर! आज आपके दर्शन हो सके यही बहुत है। आपकी कीर्ति बहुत दूर तक फैली है। सुनकर यहाँ तक चला आया हूँ। कुछ काव्य सुनाइये।

पंडित हरिहर ने यह कहा और वस्तुपाल ठठाकर हँस पड़े। बोले—

रहने दीजिए कवीश्वर! आप जैसे दिग्गज कवि के समक्ष अपना काव्य सुनाकर मुझे सोमेश्वरजी जैसी हालत नहीं बनवानी।

वस्तुपालजी की तीव्र मर्मभेदी दृष्टि से दृष्टि मिलाना पंडित

हरिहर के लिए कठिन हो रहा था। उन्होंने जैसे-तैसे कहा—

"वस्तुपालजी ! वह तो विवशता थी, मैं क्या करता ? उन्होंने चोरी का काव्य सुनाया ही क्यों ?"

"कवीश्वर ! एक वात आपको कहता हूँ, यह गुजरात की राज-सभा है। यहाँ सच और भूठ का फैसला बड़ी शीघ्रता से होता है।"

इन शब्दों के पीछे जो कठोर निश्चय था उसने पंडित हरिहर को हिला दिया। रात को मालवी भटराज ने भी कहा था कि वस्तुपाल होते तो विना कुछ उखाड़-पछाड़ किए रहते नहीं। तो क्या काव्य और कला में आकण्ठ डूवा रहने वाला गुजरात का यह अमात्य वास्तव में उनकी कलई खोलकर रहेगा ? भीतर डरते-डरते, किन्तु ऊपर से हिम्मत बाँधे हुए पंडित हरिहर ने कहा—

"सत्यता का प्रमाण तो मैं कल भरी सभा में दे चुका हूँ अमात्यवर।"

"नहीं कविराज ! एक तो कल सभा भरी नहीं थी, विना अमात्य के कोई राज-सभा पूरी होती है भला ? और दूसरा आपने अपने कथन की सत्यता का कोई प्रमाण दिया भी नहीं था। सत्य तो आपको आज कहना पड़ेगा।"

सभा में उपस्थित जनता स्तब्ध होकर सुन रही थी। पंडित हरिहर का कंठ सूखा-सा जा रहा था। वे वोले—

"आप मेरा अपमान करना चाह रहे हैं, वस्तुपालजी !"

"अपना मान तो आपने स्वयं ही खो दिया है कवीश्वर ! राजगुरु सोमेश्वरजी के श्रेष्ठ काव्य को चोरी का वताते हुए आपको कुछ लज्जा तो आनी चाहिए थी।"

अव पंडित हरिहर की काया भी काँपने लगी। वे क्रोध करने का नाटक करते हुए अपने आसन से उठ खड़े हुए और सभा छोड़कर जाने लगे। यह देखकर वस्तुपाल ने कहा—

"इतनी शीघ्र विदा ले लेंगे क्या कवीश्वर ! जैसी आपकी मर्जी। किन्तु आप यदि ऐसे ही यहाँ से जाएँगे तो लोग हमें क्या कहेंगे ! कुछ भेंट

तो हमारी ओर से भी लेते जाइये ।"

"यह कहते हुए वस्तुपाल ने अपनी जेब से एक मोतियों की माला निकालकर पंडित हरिहर की ओर बढ़ा दी । उस माला को देखकर पंडित हरिहर भय से सिहर उठे, मानो वह कोई विषधर हो। चोरी पकड़ ली गई थी । चोर के पाँव ही कितने ! घबराते हुए उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा—

"क्षमा कीजिए वस्तुपालजी !"

वस्तुपाल हँसे । बोले—"क्षमा तो आप गुजरात की इस राज-सभा से माँगिए और हमारे सोमेश्वरजी से माँगिए । और आपने जिस सत्य का स्वीकार रात्रि को किसी मालवी भटराज के सामने किया था उसे इस भरी सभा के सामने भी कीजिए। इससे पहले आपकी छुट्टी नहीं है।"

राजगुरु सोमेश्वर को ससम्मान राज-सभा में बुलाया गया । जब वे पहुँचे तब पंडित हरिहर उनके पैरों में गिर पड़े और बोले—

"क्षमा करें, सोमेश्वरजी ! मैंने आपको धोखा दिया, आपका अपमान किया । मैंने सरस्वती का भी अपमान किया है कि उसके वरदान का अनुचित लाभ उठाकर आपके सारे काव्य को शब्दशः दुहरा दिया और कहा कि यह उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर में अंकित है । मैंने झूठ कहा था कवीश्वर !"

सोमेश्वरजी ने स्नेहपूर्वं पंडित हरिहर को उठाकर अपने गले से लगा लिया और कहा—

"छोड़िए, छोड़िए, कवीश्वर ! जो बीत गई सो बात गई । भूल मनुष्य से हो ही जाया करती है । आप अपने मन में कोई संताप न कीजिए ।"

ठसाठस भरी हुई राज-सभा में राजगुरु सोमेश्वर, अमात्य वस्तुपाल तथा राणा वीरधवल की जय का एक गगनभेदी घोष उठा और आनन्द के उस घोष में बीती हुई बात की सारी मलीनता और कटुता डूब गई ।

कुछ दिन तक वस्तुपाल ने पंडित हरिहर को प्रेम और आदरपूर्वक

हरिहर के लिए कठिन हो रहा था। उन्होंने जैसे-तैसे कहा—

"वस्तुपालजी! वह तो विवशता थी, मैं क्या करता? उन्होंने चोरी का काव्य सुनाया ही क्यों?"

"कवीश्वर! एक बात आपको कहता हूँ, यह गुजरात की राज-सभा है। यहाँ सच और झूठ का फैसला बड़ी शीघ्रता से होता है।"

इन शब्दों के पीछे जो कठोर निश्चय था उसने पंडित हरिहर को हिला दिया। रात को मालवी भटराज ने भी कहा था कि वस्तुपाल होते तो बिना कुछ उखाड़-पछाड़ किए रहते नहीं। तो क्या काव्य और कला में आकण्ठ डूबा रहने वाला गुजरात का यह अमात्य वास्तव में उनकी कलई खोलकर रहेगा? भीतर डरते-डरते, किन्तु ऊपर से हिम्मत बाँधे हुए पंडित हरिहर ने कहा—

"सत्यता का प्रमाण तो मैं कल भरी सभा में दे चुका हूँ अमात्यवर।"

"नहीं कविराज! एक तो कल सभा भरी नहीं थी, बिना अमात्य के कोई राज-सभा पूरी होती है भला? और दूसरा आपने अपने कथन की सत्यता का कोई प्रमाण दिया भी नहीं था। सत्य तो आपको आज कहना पड़ेगा।"

सभा में उपस्थित जनता स्तब्ध होकर सुन रही थी। पंडित हरिहर का कंठ सूखा-सा जा रहा था। वे बोले—

"आप मेरा अपमान करना चाह रहे हैं, वस्तुपालजी!"

"अपना मान तो आपने स्वयं ही खो दिया है कवीश्वर! राजगुरु सोमेश्वरजी के श्रेष्ठ काव्य को चोरी का बताते हुए आपको कुछ लज्जा तो आनी चाहिए थी।"

अब पंडित हरिहर की काया भी काँपने लगी। वे क्रोध करने का नाटक करते हुए अपने आसन से उठ खड़े हुए और सभा छोड़कर जाने लगे। यह देखकर वस्तुपाल ने कहा—

"इतनी शीघ्र विदा ले लेंगे क्या कवीश्वर! जैसी आपकी मर्ज़ी। किन्तु आप यदि ऐसे ही यहाँ से जाएँगे तो लोग हमें क्या कहेंगे! कुछ भेंट

तो हमारी ओर से भी लेते जाइये।"

"यह कहते हुए वस्तुपाल ने अपनी जेब से एक मोतियों की माला निकालकर पंडित हरिहर की ओर बढ़ा दी। उस माला को देखकर पंडित हरिहर भय से सिहर उठे, मानो वह कोई विषधर हो। चोरी पकड़ ली गई थी। चोर के पाँव ही कितने! घबराते हुए उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा—

"क्षमा कीजिए वस्तुपालजी!"

वस्तुपाल हँसे। बोले—"क्षमा तो आप गुजरात की इस राज-सभा में माँगिए और हमारे सोमेश्वरजी से माँगिए। और आपने जिस सत्य का स्वीकार रात्रि को किसी मालवी भटराज के सामने किया था उसे इस भरी सभा के सामने भी कीजिए। इससे पहले आपकी छुट्टी नहीं है।"

राजगुरु सोमेश्वर को ससम्मान राज-सभा में बुलाया गया। जब वे पहुँचे तब पंडित हरिहर उनके पैरों में गिर पड़े और बोले—

"क्षमा करें, सोमेश्वरजी! मैंने आपको धोखा दिया, आपका अपमान किया। मैंने सरस्वती का भी अपमान किया है कि उसके वरदान का अनुचित लाभ उठाकर आपके सारे काव्य को शब्दश: दुहरा दिया और कहा कि यह उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर में अंकित है। मैंने झूठ कहा था कवीश्वर!"

सोमेश्वरजी ने स्नेहपूर्वं पंडित हरिहर को उठाकर अपने गले से लगा लिया और कहा—

"छोड़िए, छोड़िए, कवीश्वर! जो बीत गई सो बात गई। भूल मनुष्य से हो ही जाया करती है। आप अपने मन में कोई संताप न कीजिए।"

ठसाठस भरी हुई राज-सभा में राजगुरु सोमेश्वर, अमात्य वस्तुपाल तथा राणा वीरधवल की जय का एक गगनभेदी घोष उठा और आनन्द के उस घोष में बीती हुई बात की सारी मलीनता और कटुता डूब गई।

कुछ दिन तक वस्तुपाल ने पंडित हरिहर को प्रेम और आदरपूर्वक

अपना ही अतिथि बनाकर रखा और जी भरकर उनका काव्य सुना तथा अपना और अपने कवि-मंडल का काव्य उन्हें सुनाया। अन्त में पंडित हरिहर अपनी गुजरात-यात्रा की एक मधुर स्मृति लेकर विदा हुए।

जाने से पूर्व उन्होंने कहा—

वस्तुपालजी ! आपके विषय में जैसा सुना था वैसा ही आपको पाया। 'कुसुमादपि मृदूनि, वज्रादपि कठोराणि' वाली उक्ति आप पर चरितार्थ होती है। आप कुसुम से भी कोमल है, वज्र से भी अधिक दृढ़ हैं। आपके कर्म में वज्र की कठोरता और हृदय में अमृत का निवास है। अस्तु, हे अमृतपुत्र ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।"

वस्तुपाल ने प्रेमपूर्वक पंडित हरिहर के कन्धे पर हाथ रखा और मुस्करा दिए।

वह मुस्कान कितनी सरल, कितनी मोहक, कितनी अमृतमय थी !

***

आँधी और तूफान

चन्द्रावती के परमार धारावर्षदेव का संदेश लेकर एक दूत आया था। उसने बताया—

'दिल्ली के सुल्तान मोजुद्दीन की सेनायें सिन्धु-प्रदेश में प्रविष्ट हो चुकी हैं और उनका इरादा गुजरात की ओर बढ़ने का है। स्वामी ने कहलवाया है कि जबतक एक भी परमार जीवित है सुल्तान की सेनाओं को आबू के मार्ग से गुजरात में नहीं घुसने दिया जायगा। किन्तु सुल्तान की सेना विशाल संख्या में है, इसलिए आपको सावधान रहने की आवश्यकता है।

संदेश सुनकर राणा वीरधवल कुछ चिन्तित हुए। पता नहीं क्यों बचपन से ही यवनों की ओर से एक भय उनके हृदय में समा गया था। शायद वे सोचते थे कि यवन अजेय होते हैं। उन्होंने अमात्य वस्तुपाल से कहा—

"वस्तुपालजी ! यवन आ रहे हैं। अब क्या होगा ?"

"यह भी एक दिन होना ही था राजन् ! चलिए, गुजरात के मार्ग में एक जो अन्तिम बाधा थी वह भी उखाड़ कर फेंक दी जायगी। आप चिन्ता न करें।" राणा वीरधवल से यह कहकर वस्तुपाल ने दूत से कहा—

"आबू के बूढ़े सिंह धारावर्षदेवजी से कहना कि चट्टान बनकर अड़ जाँय। गुजरात का सैन्य लेकर मैं आता हूँ। सुल्तान की सेनाओं को वे मार्ग में बिल्कुल न छेड़ें। ठेठ आबू की गहरी घाटियों में सारी सेना को घुस जाने दें। फिर वे पीछे से उनका मार्ग रोक लें। मैं सामने से आऊँगा। इस बार आबू की घाटियों में सोलंकियों और सुल्तान के भाग्य का अंतिम फैसला कर ही डालना है।"

ऊँचे आबू पर्वत के बूढ़े शेर धारावर्षदेव का दूत गुजरात के अमात्य का संदेश लेकर विदा हुआ।

आबू पर्वत पर अनुपमा की देखरेख में एक अद्वितीय जिनमंदिर का निर्माण हो रहा था। संगमरमर के शुभ्र और चिकने पत्थरों में भारतवर्ष के श्रेष्ठतम शिल्पी अपनी छैनी और हथौड़ियों से कला को जीवन्त स्वरूप प्रदान कर रहे थे। बड़े भाई मल्लदेव की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति का दायित्व तेजपाल ने लिया था और अनुपमा दिनरात पागल-सी होकर इस सारे कार्य की देखभाल कर रही थी। कलतक जो निर्जीव पत्थर थे, आज वे नाना प्रकार के आकार ग्रहण करके बोलने-से लगे थे।

ठीक उसी समय यवनों की आँधी आई।

संयोग की बात कि आँधी अकेली ही नहीं आई, अपने साथ तूफ़ान भी लेकर आई। दक्षिण के देवगिरि के नरेश सिंघणदेव ने भी गुजरात को मटियामेट कर देने की अपनी पुरानी अभिलाषा की पूर्ति करने का यही अवसर चुना। वह तूफ़ान की तरह आगे बढ़ता हुआ ताप्ती के किनारे तक आ पहुँचा।

वस्तुपाल को जब सिंघणदेव के आगे बढ़ने का समाचार मिला तब वे दिल्ली के सुल्तान का सामना करने जा रहे थे। उन्होंने परिस्थिति

पर गंभीरता से विचार किया और तेजपाल से कहा—

"तेजू ! देवगिरि के यादव को भी यही अवसर मिला है। लेकिन चिन्ता नहीं, तू सिंघणदेव को केवल पन्द्रह दिन तक ताप्ती के उस किनारे पर रोक ले, तब तक मैं आता हूँ। याद रखना उसे इस किनारे पर नहीं उतरने देना है। यादव भयानक लड़ाके हैं और सिंघणदेव की तैयारी जबरदस्त है। यदि वह इस किनारे पर उतर गया तो फिर उसे रोकना कठिन होगा। मुझे दिल्ली के सुल्तान को दिल्ली का रास्ता दिखाने में पन्द्रह दिन लग जायेंगे, तब तक तू सिंघणदेव को रोक लेगा न ?"

"रोक लूँगा, बड़ेभैया !"

जनम का सिपाही था तेजपाल। अधिक बात करना उसे आता नहीं था। छोटा-सा उत्तर देकर चुप हो गया। किन्तु 'रोक लूँगा' इन दो ही शब्दों में फौलाद की दृढ़ता थी। वस्तुपाल ने प्यार से तेजपाल की पीठ ठोकी और कहा—

"तेजू ! यह अंतिम परीक्षा है। सुल्तान और सिंघणदेव को ठिकाने लगा देने के बाद गुजरात अजेय हो जायगा। ताप्ती के इस किनारे अपने बहादुर सैनिकों को फैला देना और कह देना कि एक यादव ताप्ती पार करके गुजरात की धरती पर कदम नहीं रखेगा।"

वस्तुपाल आबू की ओर तथा तेजपाल ताप्ती की दिशा में चल पड़े। आँधी और तूफान का सामना करने के लिये गुर्जरधरा के दो मृत्युञ्जय सपूत व्रत-सङ्कल्प थे।

सिन्धु-प्रदेश को ध्वस्त करके विशाल म्लेच्छवाहिनी टिड्डीदल की तरह चन्द्रावती की ओर बढ़ रही थी। वस्तुपाल की योजना के अनुसार धारावर्षदेव ने उस टिड्डीदल को बिना किसी अवरोध के आगे बढ़ने दिया। यवन-सेना के मार्ग में आने वाले गाँव के गाँव सूने पड़े थे। कहीं कोई इक्का-दुक्का किसान मार्ग में मिल जाता तो वह सूचना दे देता कि धारावर्षदेव तो यवन आक्रमण के भय से आबू के जंगलों में

जा छिपे हैं। रास्ता साफ है।

इतनी आसानी से परमार मार्ग दे देगा इसकी कल्पना यवन सेनापति को नहीं थी। वह मन-ही-मन अपनी विजय पर ,गर्व करता हुआ आबू की घाटियों में घुस पड़ा। ऊँचे आबू पर्वत के शिखरों पर प्रेम और शान्ति का संदेश चारों दिशाओं में फैलाते हुए पवित्र देवमंदिरों को ध्वस्त करने की उसकी लालसा तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। वह सोच रहा था कि यह चन्द्रावती को गिराया और वह गुजरात लिया।

जब सारी यवन सेना आबू-पर्वत की घाटी में पहुँच गई तब घने जंगलों में-से निकल कर आबू का बूढ़ा शेर आया। उसने यवनों के पीछे लौटने का मार्ग बन्द कर दिया।

यवन सेनापति ने जब देखा कि वह पीछे से घिर गया है तो वह तेजी से आगे बढ़ने लगा। उस गहरी घाटी को वह पार कर लेना चाहता था। परन्तु यदि पीछे परमार धारावर्षदेव फौलाद बनकर अड़ गए थे तो सामने गुर्जर-सैन्य को लेकर गुजरात का अमात्य वज्र की दीवार बनकर आ खड़ा हुआ था। अब यवन सेना न आगे बढ़ सकती थी और न पीछे हट सकती थी। शेष दोनों दिशाओं में अगम्य आबू पर्वत था।

भयानक संग्राम छिड़ा। दोनों ओर से घिरी हुई यवन सेना वस्तुपाल और धारावर्षदेव की तलवार से काई की तरह कट-कटकर आबू की इस घाटी में बिछने लगी। वस्तुपाल कृत-संकल्प थे कि सुल्तान मोजुद्दीन को इस बार ऐसा पाठ पढ़ा देना है कि फिर वह जीवनभर गुजरात की ओर मुँह न कर सके।

यवन सेना संख्या में बहुत बड़ी थी। इस सारी सेना को काट गिराने में सुबह से शाम पड़ गई। और जब भगवान् भास्कर ने अपनी किरणें समेटीं तबतक उस टिड्डीदल का कहीं नामोनिशान भी नहीं रहा था। आबू-पर्वत की उस गहरी घाटी में उस दिन खून की नदी बह गई।

युद्ध की समाप्ति पर वस्तुपाल ने अपने मस्तक का रक्त पोंछते हुए धारावर्षदेव से कहा—

"झगडा मिट गया, देव ! आपने इस युद्ध में आज जिस शौर्य का प्रदर्शन किया है वह इतिहास में अमर रहेगा।"

अस्सी वर्ष के धारावर्षदेव की सफेद दाढी पर लाल-लाल रक्त के छींटे वडे सुन्दर लग रहे थे। मुस्कराते हुए उन्होंने उत्तर दिया—

"क्या कहने हो वस्तुपाल ! मैं तो बूढा हो गया। हाथ-पाँव अब चलते ही कहाँ हैं ?"

वस्तुपाल भी हँस पडे बोले—

"देव ! जब हाथ-पाँव नहीं चलते हैं तब तो आपने यवन-सेना का यह हाल किया है कि एक भी यवन सैनिक राणा वीरधवल के पास जीवित पकडकर ले जाने के लिये नही बचा ? यदि हाथ-पाँव चलते होते तब आप क्या करते ?"

"छोडो इस बात को। लेकिन अब धोलके क्या ले जाओगे ?"

दूसरे दिन सैकडा गाडियो मे भरकर यवनो के कटे हुए मुण्ड वस्तुपाल ने धोलके के लिये रवाना कर दिये। उन अनगिनत मुण्डो को देखकर राणा वीरधवल और गुजरात की प्रजा को बडा विस्मय हुआ। राणा ने रानी जयलता से कहा—

"गजब करता है यह वस्तुपाल ! मैं तो समझता था कि यवन बडे भयानक होते हैं। सोचता था उनके सिर पर सींग होते होंगे, उनके चार-चार हाथ और चार-चार पैर होते होंगे। उन पर विजय पाना असभव है। लेकिन तुम्हारे अमात्य ने तो जैसे इन मुण्डो की खेती काटकर ही यहाँ भिजवादी है।"

रानी जयलता तो विस्मय-विमुग्ध थी। वह केवल देखती ही रह गई।

उसी समय राणा वीरधवल को एक पत्र मिला। वह पत्र कच्छ-प्रदेश की राजधानी भद्रेश्वर से वहाँ के राजा भीमसिंह ने भिजवाया

था। राणा ने पत्र खोलकर पढ़ा—

"राणा वीरधवलजी,

कुछ समय पूर्व हम तीनों भाई आपकी सेवा में उपस्थित हुए थे। हमने प्रार्थना की थी कि आप हमें अपनी सेवा करने का अवसर दें। किन्तु हमने जो वार्षिक वृत्ति आपसे माँगी थी वह आपको अधिक प्रतीत हुई थी और आपने कहा था कि इतनी धनराशि में तो आप हजारों सैनिक रख सकते हैं।

आपके यहाँ से निराश होकर हम भद्रेश्वर चले आए थे। यहाँ के राजा भीमसिंहजी ने हमें अपनी माँग से दुगुनी राशि देना स्वीकार करके हमें अपनी सेवा में रख लिया था। हम अब तक उन्हीं की सेवा में हैं।

अब हम आपको निमंत्रित करते हैं कि आप अपने उन हजारों सैनिकों को लेकर पंचग्राम के मैदान में आएँ जिन्हें आपने हम तीनों भाइयों के बदले में रखा है। आशा है आप हमें निराश नहीं करेंगे और अपने सैनिकों की वीरता देखने का अवसर हमें अवश्य देंगे।

आपके—
चौहान सामन्तपाल
चौहान अनंगपाल
चौहान त्रिलोकसिंह।"

यह एक विचित्र पत्र था। वीर-क्षत्रिय अपने आन-सम्मान का मूल्य माँग रहे थे। राणा वीरधवल का क्षत्रिय रक्त भी इस चुनौती को पाकर फड़क उठा। उन्होंने वह पत्र रानी जयलता को पढ़ाकर कहा—

"अब क्या करना चाहिये जया! इस समय न वस्तुपालजी यहाँ हैं, न तेजपाल।"

रानी जयलता ने अभिमान के साथ तुरन्त उत्तर दिया—

"वे नहीं हैं तो क्या हुआ, तुम तो हो। क्या सारे जीवनभर उन्हीं

दोनो को मौत के मुँह मे धकेलते रहोगे ? और यह चुनौती तो तुम्हारी ही वीरता को है। इसका उत्तर तो तुम्हे ही देना चाहिये।"

"हाँ ठीक है। तब मैं ही जाता हूँ। लेकिन धोलके का क्या होगा ?"

"चिन्ता न करो। मैं जो यहाँ हूँ।"

राणा ने कुछ देर विचार किया और कहा--

"ठीक है जया ! तब तुम सावधान रहना। मैं भद्रेश्वर जाता हूँ।"

पत्रवाहक के साथ राणा वीरधवल ने उत्तर भेज दिया कि वे पचग्राम के मैदान मे पहुँच रहे है। उन्हे मारवाड के तीनो वीर राजपूतो की चुनौती स्वीकार है।

धोलके में उस समय जो थोडी-सी सेना थी उसी को लेकर राणा वीरधवल भद्रेश्वर जा पहुँचे। राजा भीमसिह तीनो चौहान भाइयो तथा अपनी सेना के साथ वहाँ पहले से ही आ चुका था। राणा वीरधवल के वहाँ पहुंचने पर सामन्तपाल आगे बढकर राणा के पास आया और उसने कहा—

"राणाजी ! आपका सैन्य तो बहुत थोडा है। इसके मुकाबले मे हमारा सैन्य बहुत अधिक है।"

"चिता नही सामन्तपालजी, इस समय गुजरात का सैन्य दो बडे-बडे मोर्चों पर लड रहा है। आपको भी विदित ही होगा। एक तरफ दिल्ली का सुल्तान है और दूसरी तरफ देवगिरि का सिंघणदेव। सुल्तान का हिसाब तो चुकाया जा चुका है। अब सिंघणदेव की वारी है। यह तो तीसरा मोर्चा है। इस समय धोलके मे इतना ही सैन्य उपलब्ध था। लेकिन आपके निमन्त्रण को मैं अस्वीकार कैसे कर सकता था ? युद्ध के लिये मैं प्रस्तुत हूँ।"

"नही राणाजी ! हम अधिक सख्या मे सेना लेकर युद्ध नही करेंगे। मैं राजा भीमसिहजी से कहता हूँ कि वे उतनी ही सेना लेकर

आगे बढ़ें जितनी आपके पास है। शेष सैन्य अलग खड़ा रहेगा।"

"यह आपकी इच्छा है। मुझसे तो आपने युद्ध माँगा है सो देने आया हूँ।"

रणभेरी बज उठी। दोनों ओर के सैनिक जी-जान से लड़े। राणा वीरधवल का शौर्य उस दिन देखने योग्य ही था। उन्होंने विकट संग्राम किया। किन्तु धीरे-धीरे उनके सैनिकों की संख्या कम होने लगी। मारवाड़ के वीर चौहान अत्यन्त पराक्रमी योद्धा थे। वे राणा वीरधवल के सैनिकों को घास-पात की तरह काटते हुए राणा के सामने आ पहुँचे और तीनों ने तीन दिशाओं से अपने भाले राणा पर तान दिये। सामन्तपाल ने तब कहा—

"राणाजी, निस्संदेह आप वीर पुरुष हैं। किन्तु इस समय आप हम तीनों के सामने विवश हैं। यदि हम चाहें तो आपका सिर काटकर फेंक सकते हैं।"

"अपने मन-की-मन में न रखना चौहान! तुम्हें सोमनाथ की शपथ है। क्षत्रिय जब युद्ध के मैदान में उतरता है तो उसे प्राणों का मोह नहीं होता।"

राणा के इस उत्तर को सुनकर सामन्तपाल ने कहा—

"आपके वीरत्व को सौ बार धन्य है राणाजी! किन्तु हमने आपके यहाँ प्रेमपूर्वक पान का बीड़ा खाया है। हम उससे बँधे हैं। और हम भी क्षत्रिय हैं, कसाई नहीं हैं। हम तीनों भाई मिलकर आपके प्राण लें यह हमारी वीरता को भी शोभा नहीं देता। इसके अतिरिक्त, राणाजी! हमारा आपसे कोई वैर भी नहीं है। हम तो केवल आपको यह बताना चाहते थे कि मूल्य धन का नहीं, मनुष्य का होता है। आपकी सारी सेना को हमने गाजर-मूली की तरह काटकर फेंक दिया है। इससे आपको हमारी बात का प्रमाण तो मिल ही गया होगा।"

"आप तीनों भाई अद्वितीय योद्धा हैं, यह मैं स्वीकार करता हूँ

सामन्तपालजी ।"

"बस, इतना ही पर्याप्त है राणाजी ! हम भी आपकी वीरता और साहस की एक बार फिर प्रशंसा करते है । राजा भीमसिंह तो गुजरात के माण्डलिक राजा ही है । हम आपको उनकी ओर से यह आश्वासन देते हैं कि वे गुजरात के साथ है और रहेंगे । इसके बदले में हम उनकी ओर से एक माँग आपसे भी अवश्य करेंगे ।"

"कहिए सामन्तपालजी ! यदि आपकी माँग से गुजरात की एकता खंडित नहीं होती होगी तो मैं उसे स्वीकार करूँगा ।"

"राजा भीमसिंहजी को आप छत्र-चँवर रखने की आज्ञा दें ।"

"स्वीकार है । वे पाटन आएँ तब भी अपना छत्र-चँवर रखकर आ सकते हैं ।"

"तब वे भी गुजरात का सामन्तपद स्वीकार करते है । नियमित रूप से वे वार्षिक कर पाटन पहुँचाते रहेंगे ।"

युद्ध समाप्ति का तूर्य बज उठा । गुजरात का एक और वीर नरेश गुर्जरधरा के ऐक्य के सूत्र में बँध गया ।

× × × ×

आबू-पर्वत की सुरम्य घाटी में एक विचित्र प्रकार की खेती काट कर जब गुजरात के अमात्य ने उसे गाडियों में भरकर धोलके भिजवा दिया तब वे तेजी से तेजपाल की सहायता के लिये चल पड़े । किन्तु मार्ग में ही गुप्तचरों ने उन्हें सूचना दी कि भद्रेश्वर से चौहान भाइयों का निमंत्रण पाकर राणा वीरधवल अकेले ही चल पड़े हैं। यह समाचार सुनकर वस्तुपाल बहुत चिन्तित हो गए । वे जानते थे कि मारवाड़ के ये तीनों राजपूत किस मिट्टी के बने हुए है । उनके सामने युद्ध में उतरने पर राणा वीरधवल के प्राणों पर संकट ही संकट था ।

अतः वस्तुपाल थोड़े से सैनिक अपने साथ लेकर तुरन्त भद्रेश्वर

की ओर मुड़ गए। शेष सैन्य को उन्होंने सिंघणदेव का सामना करने के लिये भेज दिया।

वस्तुपाल तेज़ी से भद्रेश्वर की ओर चले जा रहे थे कि उन्हें राणा वीरधवल मार्ग में ही लौटते हुए मिल गए। राणा को सही-सलामत देखकर वस्तुपाल के जी-में-जी आया। उन्होंने कहा—

"यह आपको क्या सूझ पड़ी थी राणा! अकेले ही मृत्यु के मुँह में कूद पड़े आप? मुझे तो समाचार पाकर बड़ी चिंता हो गई थी।"

राणा वीरधवल हँसे और बोले--

"निमंत्रण आया था तो जाता कैसे नहीं वस्तुपालजी?"

"किन्तु थोड़ा धीरज तो रखते आप। मैं पहुँचा जाता था।"

"ऐसे अवसर पर क्षत्रिय धीरज रख नहीं पाते वस्तुपालजी! लेकिन चलो छोड़ो यह बात। मुझे तो आप अपनी कहानी सुनाओ। दिल्ली के सुल्तान की सेना का आपने तो कचूमर ही निकाल दिया।"

अब वस्तुपाल भी हँस पड़े। अपनी-अपनी कहानी सुनाते हुए राजा और अमात्य धोलके की ओर लौट चले।

× × × ×

ताप्ती के किनारे तक देवगिरि का सिंघणदेव बड़ी गरज के साथ आया था। किन्तु तेजपाल और कीर्तिदेव की जोड़ी ने उसे घाट-घाट का ऐसा पानी पिलाया कि वह किसी घाट उतर नहीं सका। नदी पार करने की सिंघणदेव ने बहुत कोशिश की, बहुत तरकीबें लड़ाई, किन्तु तेजपाल और कीर्तिदेव गरुड़ की तरह झपट्टा मारकर उसके सैनिकों को नदी की धारा में डुबो देते और गायब हो जाते। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता था सिंघणदेव की खीझ भी उसी अनुपात में बढ़ती और उसके सैनिकों की संख्या घटती जाती थी। उसने बहुत चाहा कि

गुजरात की विजयी समरवाहिनियाँ जव धोलके लौटीं तो गुजरात की प्रजा ने आनन्द से पागल होकर उनका स्वागत किया और गुर्जर-धरा की जय जयकार से गगन को गुँजा दिया।

प्रभास-पाटन से अर्बुद-गिरि तक और कच्छ की खाड़ी से ताप्ती के तीर तक सोलंकियों का कुक्कुटध्वज शान के साथ लहरा उठा।

गिरा हुआ, मिटा हुआ, ध्वस्त, निर्बल, छिन्न-विछिन्न गुर्जरराष्ट्र उठकर खड़ा हो गया था और ऐक्य के दृढ़ वंधन में वँधकर आने वाले युगों तक के लिये अजेय वन गया था।

***

महारथी की महायात्रा

दिवस और रात्रि का अविराम चक्र घूमता रहा और समय का पंछी अपनी अगाध गति से उड़ता चला गया।

महाराज भीमदेव अपने जीवन की अन्तिम साँसें ले रहे थे। राणा लवणप्रसाद अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे और वस्तुपाल प्रौढ़ वय को पार करके वृद्धत्व की ओर बढ़ चुके थे।

राणा वीरधवल अचानक रोगग्रस्त होकर अपनी इहलीला समेटकर चले जा चुके थे। उनकी असामयिक मृत्यु में गुजरात की प्रजा हाहाकार कर उठी थी। एक उज्ज्वल, निर्दोष निष्कलंक जीवन समाप्त हो गया था। राणा लवणप्रसाद अपने योग्य पुत्र की मृत्यु से जड़ित हो गए थे।

राणा वीरधवल की मृत्यु से गुजरात के सिंहासन के उत्तराधिकारी की समस्या उठ खड़ी हुई। बड़े राजकुमार वीरमदेव इस सिंहासन के अधिकारी थे, किन्तु वे अयोग्य थे। लाड़-प्यार में पले हुए वीरमदेव में

दुनियाँ भर के दुर्गुणों ने अपनी शरण पाई थी, अतः वस्तुपाल उनके स्थान पर छोटे राजकुमार वीसलदेव को राजतिलक करना चाहते थे। राणा वीरधवल ने भी अपने इस कपूत के लक्षण देखकर मरने से पहले वस्तुपाल और तेजपाल से कहा था—

"वस्तुपालजी ! मैं तो चला, किन्तु मुझे शांति नहीं है……।"

"कोई अभिलाषा शेष रह गई हो तो कहें राणा ! हम उसे अवश्य पूर्ण करेंगे।" वस्तुपाल ने उत्तर दिया।

"वस्तुपालजी ! आप दोनों भाइयों ने गुजरात के लिये जो कुछ किया है वह अन्य कोई नहीं कर सकता था। अब एक काम और कर दीजियेगा। वीरम अयोग्य है, दुर्गुणी है। उसके हाथ में गुजरात सुरक्षित नहीं रहेगा। वह गुजरात को कलंक लगा देगा। मेरे मरने के बाद जैसे भी हो वीसलदेव को सिंहासन दिलाइयेगा।"

वस्तुपाल वीरमदेव की प्रकृति को जानते थे। उन्हें भी निश्चय था कि वह इस योग्य नहीं है कि उसके हाथ में गुजरात सौंप दिया जाय। अतः उन्होंने उत्तर दिया—

"राणाजी ! आप सर्वथा निश्चिन्त रहें। हमारे जीते-जी गुजरात का अहित नहीं होगा। गुजरात के सिंहासन पर वीसलदेव ही बैठेंगे।"

उसके बाद आश्वस्त होकर राणा वीरधवल ने आँखें मूँद लीं थीं।

किन्तु राणा लवणप्रसाद को वीरमदेव बहुत प्रिय था। वह उनका लाड़ला पोता था। वे चाहते थे कि राणा वीरधवल के बाद वीरमदेव ही सिंहासन का अधिकारी हो। वस्तुपाल को यह समस्या सुलझानी थी। उन्होंने कीर्तिदेव को बुलाकर कहा—

"कीर्तिदेव ! एक काम करना है। वीरमदेव को राजतिलक के बहाने पाटन की ओर ले जा। लेकिन पाटन पहुँचना नहीं। मार्ग में ही दिशा बदलकर मारवाड़ की सीमा पर जा पहुँचना और सीमा पर पहुँच कर वीरमदेव से कहना कि अब वह गुजरात में पैर न रखे। यदि वह इधर आया और बखेड़ा करने की उसने कोशिश की तो फिर मेरा नाम

लेकर उससे कहना कि उसका भला नहीं होगा। कर डालेगा न इतना काम ?"

"एक बार वीरमदेव को गुजरात के बाहर निकाल दूँगा।"

"हाँ, शीघ्रता कर। तब तक मैं वीसलदेव के राजतिलक की व्यवस्था करता हूँ।"

कीर्तिदेव वीरमदेव को बहकाकर ले गया।

वस्तुपाल राणा लवणप्रसाद के पास पहुँचे और उनसे कहा—

"बापू! सिंहासन सूना है। वीरमदेवजी का राजतिलक जल्दी कर देना है।"

"वीसलदेव का राजतिलक? क्या कहते हो वस्तुपाल, वीरमदेव बड़ा है। तिलक तो उसी का होगा न?"

"नहीं बापू! वीरमदेवजी बड़े अवश्य हैं, किन्तु वे गुजरात के स्वामी होने के योग्य नहीं हैं। उनके दुर्गुण और उनका स्वभाव सभी जानते हैं।"

"नहीं, नहीं वस्तुपाल! ऐसा नहीं हो सकता। मेरा बेटा भोला है, कुछ दिनों में सुधर जायगा। तिलक तो उसी का करना है।"

"बापू आपने जीवन भर भगवान् शंकर की तरह विषपान किया है। यह विष का एक प्याला और पी डालना होगा।"

"लेकिन क्यों?"

"अपने गुजरात के लिए बापू! वरना आपके जीवन भर की कमाई लुट जाएगी, यह कहे देता हूँ। वर्षों तक खून और पसीना एक करके जिस गुजरात को आपने और मैंने खड़ा किया है वह देखते देखते टूट कर गिर जायगा। आप ऐसा होने देंगे? बोलो! मैं तो यह होने नहीं दूँगा।"

राणा लवणप्रसाद वीरमदेव के मोह में बुरी तरह जकड़े हुए थे। बिना कुछ उत्तर दिये वे चुपचाप वस्तुपाल के चेहरे की ओर देखते रह गए। वस्तुपाल के चेहरे पर दृढ़ संकल्प और अटल निश्चय की

थी। उसे देखकर बाघेला राणा भीतर ही भीतर हिल गए। वस्तुपाल ने ही फिर कहा—

"बापू! आपके लिये जैसे वीरमदेव वैसे ही वीसलदेव। किन्तु किसी थोड़े से मोह में पड़कर सारा किया-कराया मटियामेट कर देना क्या शोभा देगा! और फिर मैंने राणा वीरधवल को वचन भी दिया है कि गुजरात के सिंहासन पर वीरमदेव नहीं वीसलदेव ही बैठेंगे। यह उनकी अन्तिम इच्छा थी।"

महारथी बाघेला राणा लवणप्रसाद की आँखें भीग आईं। उन्होंने भरे कंठ से कहा—

"जो कुछ तुम्हें ठीक लगे वह करो वस्तुपाल! लेकिन वीरम क्या बखेड़ा खड़ा नहीं करेगा?"

"उसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है बापू! उन्हें मारवाड़ की तरफ भेज दिया है।"

"अरे! तब मुझसे पूछने क्या आए हो वस्तुपाल?"

"आपकी आज्ञा के बिना मुझे कुछ करना नहीं है बापू! आपकी आज्ञा से ही मैं आया था और अब यह अन्तिम कार्य करके छुट्टी लूँगा। बूढ़ा हो गया मैं भी बापू!"

बड़ी कठिनाई से अपनी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध राणा लवणप्रसाद ने स्वीकार किया। उनके इस स्वीकार के पीछे दो बातें थीं—एक तो गुजरात के प्रति उनका प्रेम और दूसरा वस्तुपाल के अटल निश्चय के प्रति भय।

वीसलदेव का राजतिलक हो जाने के बाद वस्तुपाल ने गुजरात के अमात्य-पद के भार से मुक्ति ले ली। वे अपने जीवन का शेष समय साहित्य और धर्म की आराधना में लगाने लगे।

एक दिन वे अपने अध्ययन-कक्ष में बैठे काव्य-रचना कर रहे थे। लेखनी हाथ में थामे हुए वे किसी अधूरे छन्द को पूर्ण करके ताड़पत्र पर लिख ही रहे थे कि उनका एक निजी रक्षपाल दौड़ता हुआ आया

और बोला—

"स्वामी ! राणा वीसलदेव के मामा सिंह ने बड़ा अत्याचार कर दिया है। वे उपाश्रय के समीप से गुजर रहे थे कि ऊपर से किसी क्षुल्लक मुनि द्वारा सफाई करते हुए कुछ धूल उन पर गिर गई। सिंह कुपित होकर उपाश्रय में गए और अपने चाबुक से क्षुल्लक मुनि को बहुत पीटा।"

लेखनी हाथ से छूटकर गिर गई। भयंकर क्रोध में भरकर वस्तुपाल उठे और कक्ष से बाहर आकर उन्होंने अपने रक्षपालों को एकत्र करके कहा—

"कोई है तुममें से जो जाकर सिंह का वह हाथ काटकर मुझे लादे?"

भुवनपाल भट से आगे बढ़ा और बोला—

"मैं लाता हूँ स्वामी ! एक ही हाथ पर्याप्त होगा या दोनों काट कर लाने होंगे?"

"अभी एक ही पर्याप्त होगा। वही हाथ जो उसने क्षुल्लक मुनि पर उठाया है। जाओ।"

भुवनपाल गया और राणा के मामा का हाथ काट लाया। वस्तुपाल ने कहा—

"इस हाथ को बाँस से बाँधकर घर के बाहर लटका दो ताकि गुजरात की प्रजा देख सके कि पवित्र मुनियों पर हाथ उठाने का क्या परिणाम होता है। द्वार बन्द कर दो। युद्ध के लिए तैयार रहो। यदि किसी को अपने प्राणों का मोह हो तो वह जा सकता है।"

एक भी रक्षपाल अपने स्वामी को छोड़कर नहीं गया। [illegible] और खिड़कियाँ बन्द कर दी गई। वस्तुपाल ने लेखनी [illegible] उठा ली।

इस घटना से धोलका में भूकम्प सा आ गया। [illegible] हाथ काटकर उसे अपने घर के बाहर लटका [illegible] कोई [illegible] तो था नहीं। सिंह अपने हजारों साथियों [illegible] वस्तुपाल [illegible]

ओर क्रोध और पीड़ा से फुफकारता हुआ चल पड़ा।

राणा वीसलदेव को जव इस घटना का पता चला तव वे वहुत घवरा गए। उन्होंने तुरन्त राजगुरु सोमेश्वर को वुलाया और कहा—

"कुछ करिये, राजगुरु ! शीघ्रता कीजिये।"

सोमेश्वर दौड़े-दौड़े वस्तुपाल के पास पहुँचे। उन्हें शान्त करने का प्रयास करते हुए वे वोले—

"यह क्या कर रहे हो वस्तुपालजी ! छोटी-सी वात पर इतना वखेड़ा क्यों खड़ा कर दिया ? राणा वीसलदेव वड़े चिन्तित हैं।"

"विवशता है सोमेश्वरजी ! मेरे जीते-जी कोई मुनियों और सन्तों पर हाथ उठाए और वह हाथ देह से अलग न कर दिया जाय ? क्षमा करें, ऐसे अपराधियों को वस्तुपाल छोड़ा नहीं करता।"

सोमेश्वर फिर भागे-भागे राणा वीसलदेव के पास पहुँचे। हाँफते हुए वोले—

"प्रभु ! वस्तुपालजी तो अड़े हुए हैं। वे महाकाल की तरह भयानक हो रहे हैं। अव तो आप ही सम्हालिये।"

राणा वीसलदेव ने शीघ्र ही सैनिकों को भेजकर अपने मामा सिंह को अपने पास वुला लिया और कहा—

"चुपचाप यहाँ वैठिये आप और जो कुछ मैं कहता हूँ वह करिये। क्या आप वस्तुपाल और तेजपाल को जानते नहीं हैं ? गुजरात के सिंहासन को उखाड़कर फेंक दें ऐसे हैं ये दोनों।"

इसके वाद राणा ने सोमेश्वरजी को किसी भी प्रकार वस्तुपाल को मनाकर राज-सभा में लाने के लिए फिर भेजा। सोमेश्वर गए और वस्तुपाल को मना लाए। पूरे सैनिक वेश में सजे हुए वृद्ध वस्तुपाल के भव्य व्यक्तित्व को देखकर राणा वीसलदेव को ऐसा लगा जैसे समस्त गुजरात की आत्मा स्वयं ही देह धारण करके उतर आई हो। उन्होंने आगे वढ़कर वस्तुपाल के चरण छू लिये और कहा—

"आप तो हमारे पिता के तुल्य हैं अमात्यवर ! वालकों पर इतना

क्रोध न कीजिये। आपने मामाजी को जो दण्ड दिया है वह उचित ही किया। किन्तु अब इतना पर्याप्त है। गुजरात को आपका कोप नहीं, आशीर्वाद चाहिये।"

इतना कहकर राणा ने अपने मामा को वस्तुपाल के पैरों में पड़कर क्षमा माँगने के लिये कहा। सिंह ने लज्जित होते हुए वस्तुपाल से क्षमा-याचना की तब वस्तुपाल ने कहा—

"आगे से ऐसी भूल न हो। राणा वीसलदेव! हमारे दिन तो अब पूरे हुए, किन्तु हम आपके हाथों में गुर्जरराष्ट्र का भाग्य दे कर जा रहे है, उसे सहेजकर रखियेगा।—विदा।"

यह कहकर शान्त, गौरवपूर्ण चाल से वस्तुपाल लौट आए।

इस घटना के बाद वस्तुपाल फिर अधिक दिन धोलके में नहीं रहे। था कोई अरूप, अदृश्य, अनन्त जो उन्हें संकेत कर रहा था और अपनी ओर खींच रहा था! थी कोई अजानी, आकाशी रहस्य-ध्वनि जो उनकी आत्मा में झंकृत होकर कह रही थी—अब लौट चलो, कर्मरथ के पथिक राही! यात्रा के एक पड़ाव की अवधि समाप्त हुई, किन्तु यात्रा और भी है, यात्रा आगे भी है, दिशाएँ और भी हैं लोक और भी है!

अनन्त के इस रहस्य-संकेत को समझकर वस्तुपाल चल पड़े। शत्रुञ्जय तीर्थ की ओर बढ़ते हुए कापालिकपुर नामक ग्राम में पहुँच कर उन्होंने अनशन धारण कर लिया। अन्न और जल इस देह के लिये है और वह देह अपना धर्म निभा चुकी थी।

शत्रुञ्जय गिरि के ऊँचे गगनचुम्बी शिखर मन्दिरों की घंटियों की पवित्र ध्वनि से गूँज रहे थे। देव दर्शन के उपरान्त वस्तुपाल शान्तिपूर्वक एक साधारण शय्या पर लेटे हुए थे। घंटियाँ बज रही थीं और उनकी रणनकार हवा में तैरती हुई सारे आकाश में फैलकर एक अद्भुत संगीत की सृष्टि कर रही थी। वह संगीत वस्तुपाल की आत्मा में ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न कर रहा था।

थी। उसे देखकर वाघेला राणा भीतर ही भीतर हिल गए। वस्तुपाल ने ही फिर कहा--

"वापू ! आपके लिये जैसे वीरमदेव वैसे ही वीसलदेव। किन्तु किसी थोड़े से मोह में पड़कर सारा किया-कराया मटियामेट कर देना क्या शोभा देगा ! और फिर मैंने राणा वीरधवल को वचन भी दिया है कि गुजरात के सिंहासन पर वीरमदेव नहीं वीसलदेव ही बैठेंगे। यह उनकी अन्तिम इच्छा थी।"

महारथी वाघेला राणा लवणप्रसाद की आँखें भीग आईं। उन्होंने भरे कंठ से कहा—

"जो कुछ तुम्हें ठीक लगे वह करो वस्तुपाल ! लेकिन वीरम क्या वखेड़ा खड़ा नहीं करेगा ?"

"उसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है वापू ! उन्हें मारवाड़ की तरफ भेज दिया है।"

"अरे ! तव मुझसे पूछने क्या आए हो वस्तुपाल ?"

"आपकी आज्ञा के विना मुझे कुछ करना नहीं है वापू ! आपकी आज्ञा से ही मैं आया था और अव यह अन्तिम कार्य करके छुट्टी लूंगा। वूढ़ा हो गया मैं भी वापू !"

वड़ी कठिनाई से अपनी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध राणा लवणप्रसाद ने स्वीकार किया। उनके इस स्वीकार के पीछे दो वातें थीं—एक तो गुजरात के प्रति उनका प्रेम और दूसरा वस्तुपाल के अटल निश्चय के प्रति भय।

वीसलदेव का राजतिलक हो जाने के वाद वस्तुपाल ने गुजरात के अमात्य-पद के भार से मुक्ति ले ली। वे अपने जीवन का शेष समय साहित्य और धर्म की आराधना में लगाने लगे।

एक दिन वे अपने अध्ययन-कक्ष में वैठे काव्य-रचना कर रहे थे। लेखनी हाथ में थामे हुए वे किसी अधूरे छन्द को पूर्ण करके ताड़पत्र पर लिख ही रहे थे कि उनका एक निजी रक्षपाल दौड़ता हुआ आया

और बोला—

"स्वामी ! राणा वीसलदेव के मामा सिंह ने बडा अत्याचार कर दिया है। वे उपाश्रय के समीप से गुजर रहे थे कि ऊपर से किसी क्षुल्लक मुनि द्वारा सफाई करते हुए कुछ धूल उन पर गिर गई। सिंह कुपित होकर उपाश्रय मे गए और अपने चाबुक से क्षुल्लक मुनि को बहुत पीटा।"

लेखनी हाथ से छूटकर गिर गई। भयकर क्रोध मे भरकर वस्तुपाल उठे और कक्ष मे बाहर आकर उन्होंने अपने रक्षपालो को एकत्र करके कहा—

"कोई है तुममे से जो जाकर सिंह का वह हाथ काटकर मुझे लादे?"

भुवनपाल झट से आगे बढा और बोला—

"मैं लाता हूँ स्वामी ! एक ही हाथ पर्याप्त होगा या दोनः काट कर लाने होगे ?"

"अभी एक ही पर्याप्त होगा। वही हाथ जो उसने क्षुल्लक मुनि पर उठाया है। जाओ।"

भुवनपाल गया और राणा के मामा का हाथ काट लाया। वस्तुपाल ने कहा—

"इस हाथ को बांस से बांधकर घर के बाहर लटका दो ताकि गुजरात की प्रजा देख सके कि पवित्र मुनियों पर हाथ उठाने का क्या परिणाम होता है। द्वार बन्द कर दो। युद्ध के लिये तैयार रहो। यदि किसी को अपने प्राणों का मोह हो तो वह जा सकता है।"

एक भी रक्षपाल अपने स्वामी को छोडकर नही गया। सभी द्वार और खिडकियाँ बन्द कर दी गई। वस्तुपाल ने लेखनी रखकर तलवार उठा ली।

इस घटना से धोलके मे भूकम्प-सा आ गया। राणा के मामा का हाथ काटकर उसे अपने घर के बाहर लटका देना कोई बच्चों का खेल तो था नही। सिंह अपने हजारों साथियो को लेकर वस्तुपाल के घर की

ओर क्रोध और पीड़ा से फुफकारता हुआ चल पड़ा।

राणा वीसलदेव को जब इस घटना का पता चला तब वे बहुत घबरा गए। उन्होंने तुरन्त राजगुरु सोमेश्वर को बुलाया और कहा—

"कुछ करिये, राजगुरु ! शीघ्रता कीजिये।"

सोमेश्वर दौड़े-दौड़े वस्तुपाल के पास पहुँचे। उन्हें शान्त करने का प्रयास करते हुए वे बोले—

"यह क्या कर रहे हो वस्तुपालजी ! छोटी-सी बात पर इतना बखेड़ा क्यों खड़ा कर दिया ? राणा वीसलदेव बड़े चिन्तित हैं।"

"विवशता है सोमेश्वरजी ! मेरे जीते-जी कोई मुनियों और सन्तों पर हाथ उठाए और वह हाथ देह से अलग न कर दिया जाय ? क्षमा करें, ऐसे अपराधियों को वस्तुपाल छोड़ा नहीं करता।"

सोमेश्वर फिर भागे-भागे राणा वीसलदेव के पास पहुँचे। हाँफते हुए बोले—

"प्रभु ! वस्तुपालजी तो अड़े हुए हैं। वे महाकाल की तरह भयानक हो रहे हैं। अब तो आप ही सम्हालिये।"

राणा वीसलदेव ने शीघ्र ही सैनिकों को भेजकर अपने मामा सिंह को अपने पास बुला लिया और कहा—

"चुपचाप यहाँ बैठिये आप और जो कुछ मैं कहता हूँ वह करिये। क्या आप वस्तुपाल और तेजपाल को जानते नहीं हैं ? गुजरात के सिंहासन को उखाड़कर फेंक दें ऐसे हैं ये दोनों।"

इसके बाद राणा ने सोमेश्वरजी को किसी भी प्रकार वस्तुपाल को मनाकर राज-सभा में लाने के लिए फिर भेजा। सोमेश्वर गए और वस्तुपाल को मना लाए। पूरे सैनिक वेश में सजे हुए वृद्ध वस्तुपाल के भव्य व्यक्तित्व को देखकर राणा वीसलदेव को ऐसा लगा जैसे समस्त गुजरात की आत्मा स्वयं ही देह धारण करके उतर आई हो। उन्होंने आगे बढ़कर वस्तुपाल के चरण छू लिये और कहा—

"आप तो हमारे पिता के तुल्य हैं अमात्यवर ! बालकों पर इतना

क्रोध न कीजिये । आपने मामाजी को जो दण्ड दिया है वह उचित ही किया । किन्तु अब इतना पर्याप्त है । गुजरात को आपका कोप नहीं, आशीर्वाद चाहिये ।"

इतना कहकर राणा ने अपने मामा को वस्तुपाल के पैरों में पड़कर क्षमा माँगने के लिये कहा । सिंह ने लज्जित होते हुए वस्तुपाल से क्षमा-याचना की तब वस्तुपाल ने कहा—

"आगे से ऐसी भूल न हो । राणा वीसलदेव ! हमारे दिन तो अब पूरे हुए, किन्तु हम आपके हाथों में गुर्जरराष्ट्र का भाग्य दे कर जा रहे हैं, उसे सहेजकर रखियेगा ।—बिदा ।"

यह कहकर शान्त, गौरवपूर्ण चाल से वस्तुपाल लौट आए ।

इस घटना के बाद वस्तुपाल फिर अधिक दिन धोलके में नहीं रहे । था कोई अरूप, अदृश्य, अनन्त जो उन्हें संकेत कर रहा था और अपनी ओर खींच रहा था ! थी कोई अजानी, आकाशी रहस्य-ध्वनि जो उनकी आत्मा में झंकृत होकर कह रही थी—अब लौट चलो, कर्मपथ के अडिग राही ! यात्रा के एक पड़ाव की अवधि समाप्त हुई, किन्तु यात्रा और भी है, यात्रा आगे भी है, दिशाएँ और भी हैं, लोक और भी है !

अनन्त के इस रहस्य-संकेत को समझकर वस्तुपाल चल पड़े । शत्रुञ्जय तीर्थ की ओर बढ़ते हुए कापालिकपुर नामक ग्राम में पहुँच कर उन्होंने अनशन धारण कर लिया । अन्न और जल इस देह के लिये हैं और वह देह अपना धर्म निभा चुकी थी ।

शत्रुञ्जय गिरि के ऊँचे गगनचुम्बी शिखर मन्दिरों की घंटियों की पवित्र ध्वनि से गूँज रहे थे । देव-दर्शन के उपरान्त वस्तुपाल शान्तिपूर्वक एक साधारण शय्या पर लेटे हुए थे । घंटियाँ बज रही थीं और उनकी रणनकार हवा में तैरती हुई सारे आकाश में फैलकर एक अद्भुत संगीत की सृष्टि कर रही थी । वह संगीत वस्तुपाल की आत्मा में ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न कर रहा था ।

तेजपाल को संकेत से अपने पास बुलाकर वस्तुपाल ने स्नेह से अपना दाहिना हाथ उसके कन्धे पर रखा और कहा—

"समय हो गया, तेजू ! अब विदा लेता हूँ। मेरे पीछे सब कुछ तू हिम्मत से देखना, भला।"

और फिर भारतभूमि के उस एक नर-रत्न ने अपनी आँखें मूँद लीं। अनन्त के पथ का वह महायात्री किसी अजाने अमृत के लोक की ओर चल पड़ा था।

जीवनभर जिसकी आँख में कभी एक आँसू भी नहीं आया था वह तेजपाल फूट-फूटकर रो पड़ा। उसे लग रहा था कि जैसे वह आज असहाय, अनाथ हो गया है।